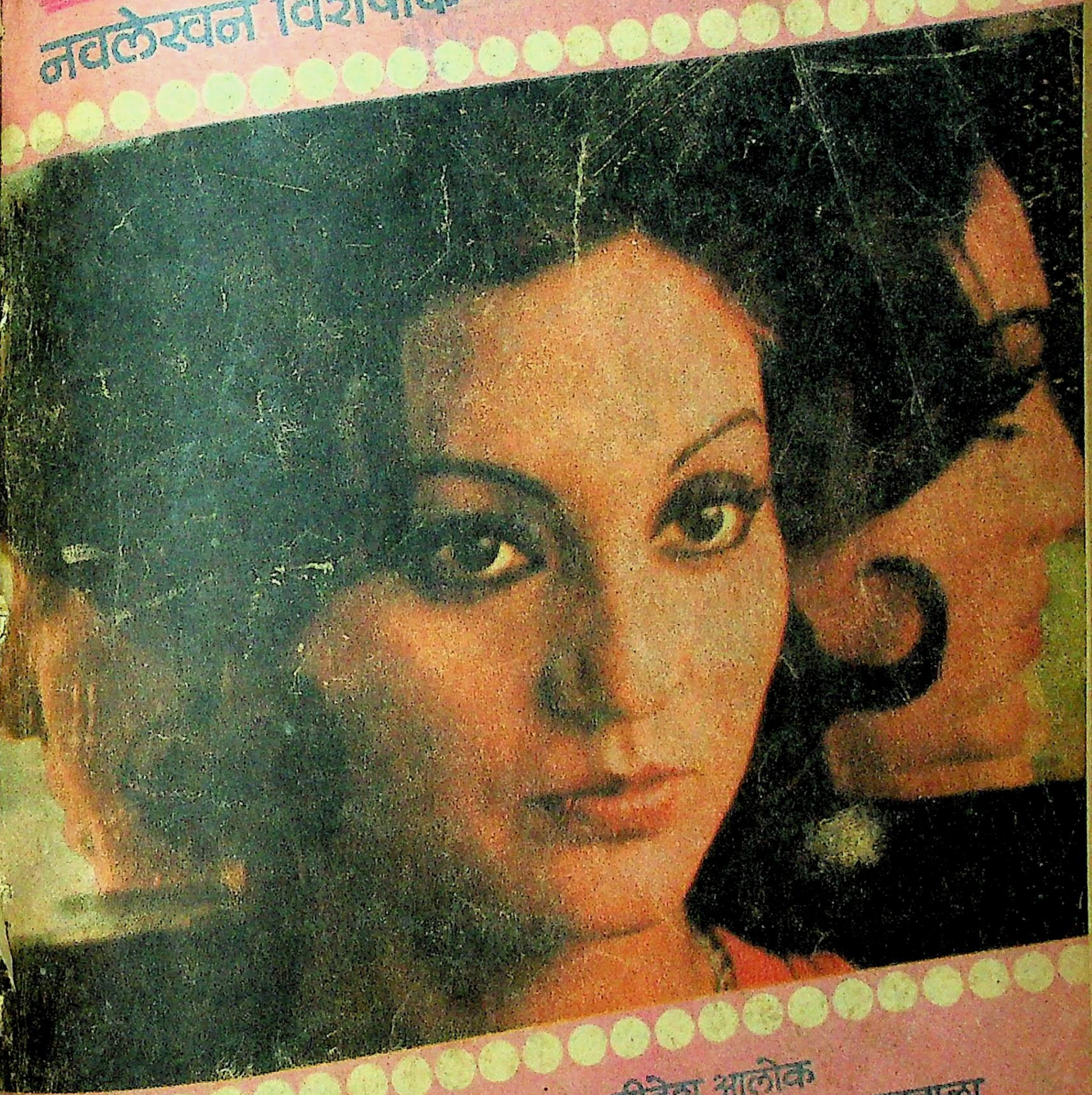
सारिका

अप्रैल १९७६

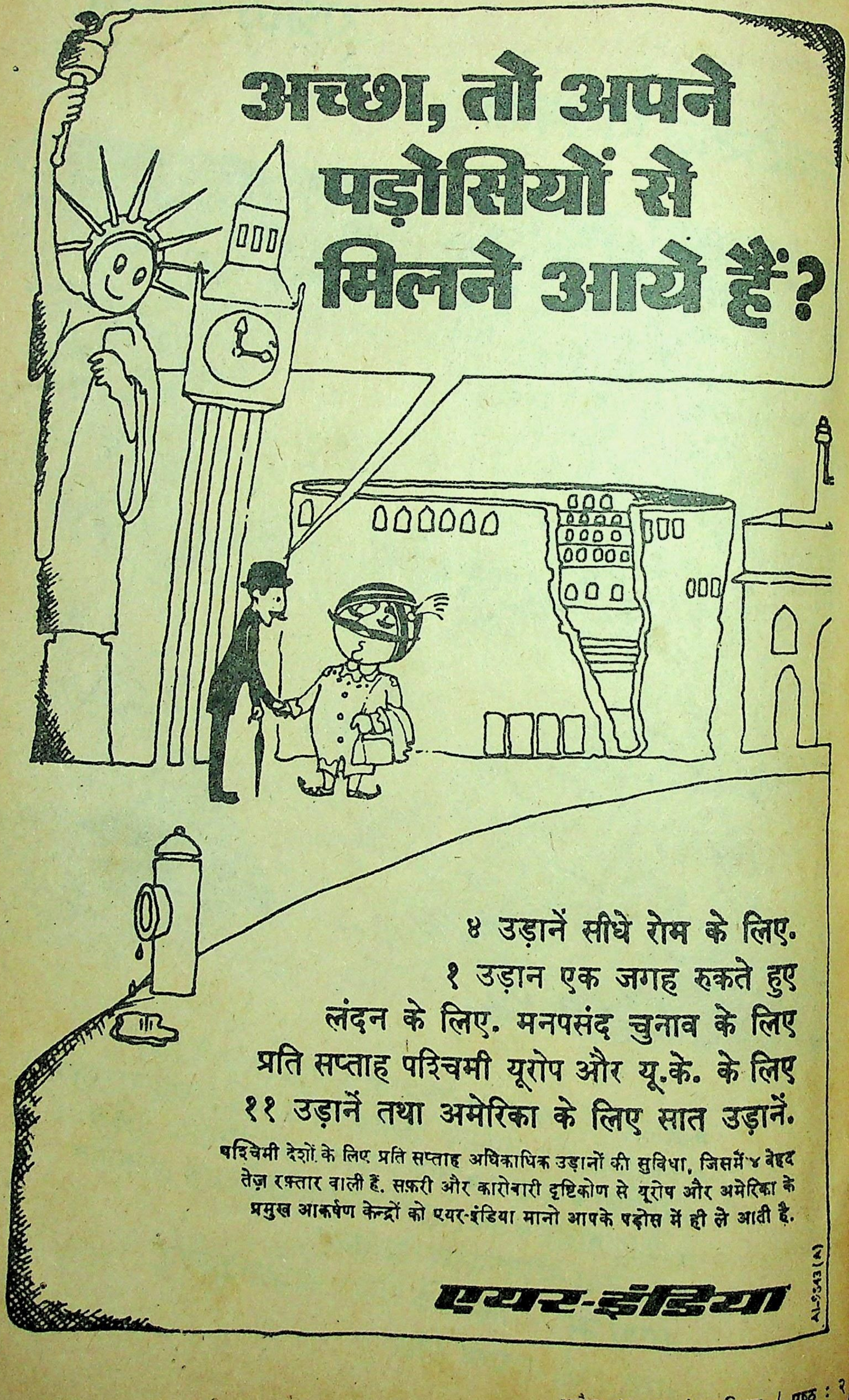
नवलेखन विशेषांक



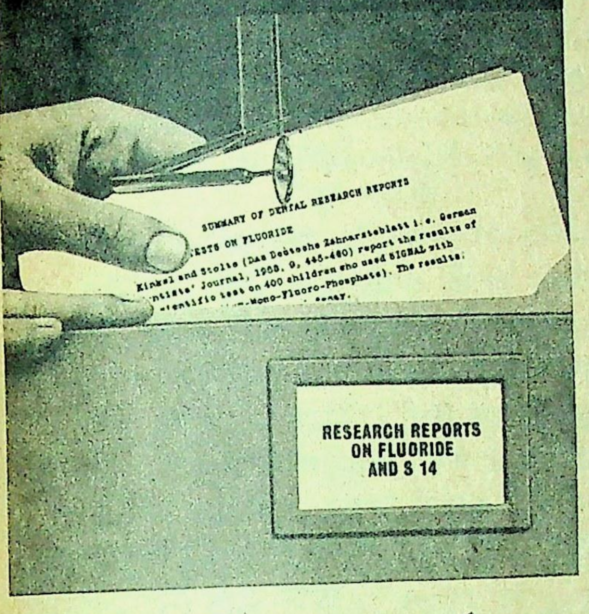
• मोहर सिंह यादव • बलराम • सीतेश आलोक
• प्रेमचंद सहजवाला
• शांता वर्मा • नासिरा शर्मा • अजित • मनीषराय यादव
• संजीव • केशव • योगेंद्र दत्त • मनजीत
• कैलाशचंद्र • मधु शर्मा • सुधा चंदोला
• योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन'

साथ में – गर्दिश के दिन : श्रवणकुमार

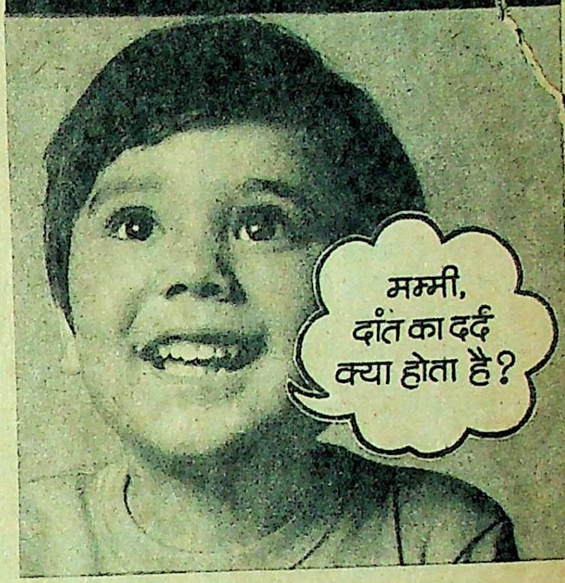
तथा सभी स्थायी स्तंभ


अच्छा, तो अपने पड़ोसियों से मिलने आये हैं?
४ उड़ानें सीधे रोम के लिए. १ उड़ान एक जगह रुकते हुए लंदन के लिए. मनपसंद चुनाव के लिए प्रति सप्ताह पश्चिमी यूरोप और यू.के. के लिए ११ उड़ानें तथा अमेरिका के लिए सात उड़ानें.
पश्चिमी देशों के लिए प्रति सप्ताह अधिकाधिक उड़ानों की सुविधा, जिसमें ४ बेहद तेज़ रफ़्तार वाली हैं. सफ़री और कारोबारी दृष्टिकोण से यूरोप और अमेरिका के प्रमुख आकर्षण केन्द्रों को एयर-इंडिया मानो आपके पड़ोस में ही ले आती है.
एयर-इंडिया
AI-5343 (A)

यह है हमारा सबूत :



यह है आपका सबूत :



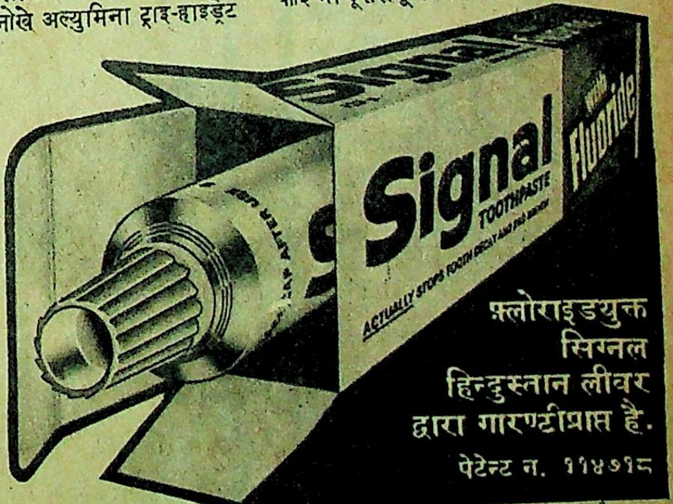
केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है,

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :
दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :
डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ६५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :
सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों—दांतों के एनामेल को बिना नुकसान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.
कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर सकती.



केवल सिग्नल फ़्लोराइड के पास है सबूत–
अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.

लिंटास-SGF.63-140 HI

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
अप्रैल, १९७६
वर्ष : १६ : पूर्णांक : १८०

कहानियां

● ●

लघु कथाएं

लोककथा

● ●

गर्दिश के दिन

● ●

स्थायी स्तंभ

● ●

आमुख : वंसल
इस अंक के सज्जाकार : नाफड़े ('सारिका' कला विभाग)

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

दिसंबर अंक

● रत्नेश कुमार, द्वितीय वर्ष विज्ञान, सेंट जेवियर कालेज, रांची, बिहार से लिखते हैं :

सारिका का मैं नया-नया पाठक हूं. सिर्फ पिछली दो-तीन प्रतियां ही पढ़ चुका हूं. पर अब नियमित रूप से पाठक बन गया हूं. काफी तलाश के बाद यह पत्रिका मिली जो मेरे लिए उपयुक्त सिद्ध हुई. कहानियों के शौक ने ही मुझे **सारिका** का प्रेमी बना दिया है.

दिसंबर अंक में आपने विदेशी लेखकों की कहानियों का अद्‌भुत चयन किया है. **'एक तरफा प्यार'** (फ्रिजेश कारिथी) की प्रशंसा लिख कर नहीं की जा सकती. **'गलत नंबर'** (सविता बैनर्जी) दिल को इस तरह छू देती है कि बारंबार उसके बारे में सोचना पड़ता है कि यह कहीं सच्ची घटना तो नहीं.

लघुकथाओं में **भिक्षा और दान** तथा **समानता** (रूसी) सर्वोपरि लगीं. □

● हेमराज काचा, बालंभा, जामनगर से लिखते हैं :

सबसे सरस, सुंदर और रोचक कृति है श्री राजेंद्र यादव की गुड्डी --**'गर्दिश के दिन'**. गंतव्य तक पहुंचने की दौड़ ही तो सब कुछ है. कैसा होता है साहित्यकार का जीवन.! धक्के मार कर भी वह कदापि गिर नहीं पड़ता! इस बात को ही यादवजी ने बखूबी रख दिया है --एकदम सजीव रूप में.

विशिष्ट खंड की प्रथम दोनों सोवियत कहानियां वास्तव में भारतीय मूल्यों की परिचायक हैं. दोनों मानवीय भावनाओं से प्रेरित हैं. प्रायश्चितजनक बलिदान एवं कुंवारी और विवाहिता का फर्क क्या एकदम भारतीय नहीं लगता? **'बहुत दिन बीते'** नाटकीय होने की वजह से विशेष रोचक बन सकी है. भारत में जैसा रूप नौकरी के लिए उम्मीदवार की पसंदगी का है ठीक वैसा ही हो रहा है **'हीरोइन की तलाश'** में.

वास्तविक धरातल पर नारी जीवन की परवशता का जीवंत रूप है--**'गलत नंबर'** की 'सुस्मिता' उसका नाम गलत नंबर बन जाता है. और पुरुष की दुर्भावना भरी कामुकता का अंत नहीं. आधुनिकता को तोड़-फोड़ कर हम उसे गलत मोड़ पर ले जा चुके हैं. यही है **'आधुनिक औरत की मौत'**. पौरुष में आ जाना केतकी के लिए सहज है. सशक्त एवं समांतर कहानी है **'एक और वापसी'**. संघर्षों से टक्कर लेती हुई सुनीता अपने आपको आग में रख सकती है. मध्यमवर्गीय जीवन की यह एक कलात्मक कहानी है.

'नये सफेद गुलाब' **'चोरी'**. **'पारदर्शी चेहरा'**, **'न चाहते हुए'** एवं **'मेहमां कैसे कैसे...'** नारी जीवन के किसी-न-किसी पहलू को सबलता से अंकित करती हैं. □

● हरि भक्त, वल्लभ नगर कालोनी, पंजवाणी, कोटा -३२४००७, (राजस्थान) से लिखते हैं :

'सारिका' के जनवरी अंक की दो कहानियां विशेष पसंद आयीं. , **'अंतराल'** तथा **'हत्यारा'**

फरवरी की लगभग सभी कहानियां ही पसंद आयीं, विशेष--**'संज्ञा व सर्वनाम'** (सुरेश चतुर्वेदी) **'शायद' कोई है** (ज्योत्सना देवधर) **'प्रतिरोध'** (सुधींद्र कुमार) **'एडजस्ट होने की कोशिश में'** (विनोदशाही) के अन्त: . . .'कि मंगल फिर लौट कर आयेगा या नहीं. . .' के साथ यदि. . .'कि मुझे लगा, वह नहीं आयेगा' जुड़ा होता तो ज्यादा अच्छा लगता.

दीप्ति खंडेवाल की आत्मरचना को अच्छा कहना तो कमीनापन होगा, किसीकी पीड़ा को अच्छा कहना और क्या होगा ! . . .बस मन भर आता है. एक चुप्पी से. . .और मारीशस की कहानियों का धन्यवाद .

इस बार श्वेत-श्याम चित्र चार आये हैं, श्वेत-श्याम चित्रों की संख्या बढ़ायें. मुझे ऐसे चित्र बहुत पसंद आते हैं. तथा चित्रों को शीर्षक के साथ प्रकाशित करें तो बहुत अच्छा रहेगा. पहले 'पेंटिंग्स' आया करती थीं. आजकल वो भी नहीं आती, क्यों ? उन्हें भी शीर्षक के साथ दें तो कितना अच्छा रहेगा.

कुछ चित्रों में कुछेक व्यक्ति सीधे कैमरे में देखते हुए कुछ अटपटे-से लगे, लगा, सारे चित्र का अर्थ कहीं बिखर गया. दुनिया का हर आम आदमी निश्चय ही फोटोग्राफिक आब्जेक्ट होता है. किंतु अच्छा माडल हो, आवश्यक नहीं. संपादक जी, आपने **'मेरा पन्ना'** भी बंद कर दिया, **'नयी पौद'** को बंद किये तो अरसा बीत गया, जहां तक मुझे याद आता है इसकी कोई सूचना नहीं थी, कृपया कारण बताएं तथा इन्हें पुन: शुरू करें. क्या दिक्कतें हैं जो आप इन्हें शुरू नहीं कर सकते ?

हालांकि मैं लिफाफे के २५ पैसे आसानी से खर्च करने की स्थिति में नहीं हूं. किंतु **'सारिका'** को एक रुपये में खरीदना अन्याय लगता है, इतनी अच्छी कहानियां इतने अच्छे फोटोग्राफ्स, खूबसूरत छपाई एवं कागज, एवं विकसित तकनीकी वाली **'सारिका'** का मूल्य एक रुपया कम नहीं? □

● **रमणीक लाल सरोज ४३।ए, फ्रायडे बाजार, गिरीडीह (बिहार) से लिखते हैं :**

आपकी पत्रिका **'सारिका'** का मैं पाठक होने के नाते प्रत्येक अंक प्रेम एवं सद्भाव से स्वीकार करता हूं. परिवार सहित **'सारिका'** को बड़े चाव से पढ़ता आ रहा हूं. अफसोस तो इस बात का है मुझे, आजतक अपनी प्रिय पत्रिका **'सारिका'** के विषय में अपने शुभ विचार पत्र द्वारा आपके सम्मुख प्रस्तुत न कर सका. कारण कोई विशेष नहीं है.

मेरे लिए **'सारिका'** में प्रमुख विशेषता यह है कि पत्रिका की दो खूबसूरत एवं आकर्षक देन **'आद्य कथाकार', 'गर्दिश के दिन'** यही दोनों स्थायी स्तंभ पत्रिका के लिए चार चांद से कम ही नहीं है, अधिकतर ही पाठकगण इसी स्तंभ से काफी प्रभावित होते हैं. इनके विषय में दो बातें—

"आद्य कथाकार" के रूप में भारतीय भाषाओं की मौलिक कहानी के साथ लेखकों से परिचय कराने में आपका ही पहला प्रयास है. **"गर्दिश के दिन"** के अंतर्गत लेखकों की आत्मरचना प्रकाशित करके आपने पाठकगण पर बहुत बड़ा उपकार किया है. कृपया इन दो स्तंभों के लिए मेरी ओर से आप हार्दिक बधाई स्वीकार करें.

'सारिका' का फरवरी अंक शुरू से अंत तक पढ़ डाला. सर्व प्रथम **"गर्दिश के दिन"** में अपनी प्रिय लेखिका "दीप्ती खंडेलवाल जी" की आत्मरचना पढ़ने को मिली. चित्र के साथ उनकी आत्म रचना से मैं काफी प्रभावित हुआ. जो हृदय की गहराईयों तक छू जाती है. **"मुक्ति"** (द्वारकाप्रसाद) की कहानी में नायिका का चित्रण काफी सुंदर ढंग से किया गया है. लड़कियों के लिए कथा शिक्षाप्रद है—**"संज्ञा और सर्वनाम"** '(सुरेश चतुर्वेदी) कहानी पढ़ने से यही महसूस किया मैंने? लेखक कहानी में क्या बताना चाहते हैं जबकि एक ही नाम को दुहराने के बाद पुनः तुम्हारा नाम यह नहीं है. यही एक चीज कहानी में पढ़ने के बाद खटकती है. **"रेत के पोधे"** (ठाकुर) **"एक और शुरुआत"** (मधुकर सिंह) **"एडजस्ट होने की कोशिश में"** (विनोद शाही) **"एक इंद्र धनुष"** (सूर्यबाला) प्रत्यक कहानी मुझे बेहद पसंद आयी. □

जनवरी अंक

● **नंदकिशोर अरोड़ा. ३२२, ३ / ए रोड सरदारपुरा, जोधपुर– १३ (राजस्थान) से लिखते हैं :**

'सारिका' के जनवरी अंक में **'देवदासियां : साहित्य के चौखटे में'** विशिष्ट खंड के अंतर्गत स्मृति-पलट पर छा जाने वाले देव-देवदासी समाज के संस्मरण बेहद रोचक रहे.

रामस्वरूप अणखी की लघु कथा **'भेद की बात'** अश्लीलता की सीमा को छूती है. अन्य लघुकथाएं भी सामान्य रहीं.

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाओं के क्रम के अंतर्गत मराठी कथाकार 'दिवाकर' की कहानी **'प्रवासी'** ने सबसे अधिक प्रभावित किया. हिंदी की नई कहानी के साथ शिल्पगत दृष्टि से कहानी-विधा का मूल्यांकन करने पर यह रचना अधिक समय-साक्षेप ठहरती ह. □

● **ए. डी. चौहान. स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, बंबई मेन ब्रांच, बंबई से लिखते हैं :**

जनवरी की **'सारिका'** देव-दासियों पर ही आर्टिकल होंगे सोच कर ही खरीदी, पढ़ी और अब लिखने को मजबूर हो गया हूं.

मि. पैंगींणकर की आंसू की बूंदें पूरी जमीन **(सारिका में)** पर मोती के दानों की तरह बिखरी हुई हैं. पैंगींणकर के अनुभव तो हैं ही, पर एक कुशल संपादक की कारी-गरी भी उसमें झलकती है. "अन्य कहानियां" के अंतर्गत **'अंतराल'**, पूरी सारिका में नागीने की तरह लगी. **'वंदे भगवती'**, **'स्टाफ आर्टिस्ट'** उसके बाद हृदय को छू गयीं. **'हत्यारा'** समझ में नहीं आयी. लगती ठीक है. न जाने क्यों? अखर गयी तो **'कब तक'** यह भी समझ में नहीं आया. □

● **विनोदपुरी 'रंजू' मुहल्ला : फतेहगढ़, लुधियाना, पंजाब से लिखते हैं :**

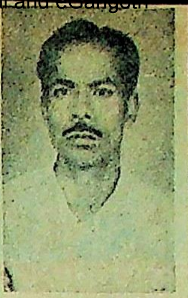
"सारिका" हमारे परिवार की प्रिय पत्रिका है. हमारा सारा परिवार इसे बड़े ही चाव से पढ़ता है. इस पत्रिका में वो सभी कुछ है जो कि एक सुंदर से सुंदर पत्रिका में होना चाहिए. **'सारिका'** जनवरी अंक में वैसे तो सभी कहानियां अपनी-अपनी जगह अच्छी थीं पर **"देवदासी"** (शंकर राव खरात) व **"कस्तूरी"** (मधु मंगेश कार्णिक ने काफी प्रभावित किया. हमारी तरफ से लेखकों को धन्यवाद दें. □

● **रविशंकर चौबे बी. एन. बी. एस. मेडिकल कालेज कानपुर से लिखते हैं :**

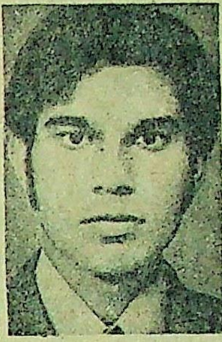
सारिका जनवरी' ७६ का 'देव-दासी' अंक पढ़ा. देवदासियों से संबंधित कहानियों में **'आवडा'** सबसे अधिक मर्मस्पर्शी लगी. अन्य कहानियों में **'अंतराल'** के लिए बधाइयां स्वीकार करें. कहानियों में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा 'सामान्यीकरण' अब थोड़ा खट-कता है. समांतर आंदोलन की कहानियों में आंचलिकता बढ़ रही है कथानक जैसे जबर्दस्ती पाठकों के ऊपर मढ़ा जाने लगा हो. फिर भी, सामान्य जन के समीप जाने वाली ये कहानियां आज ज्यादा-से-ज्यादा प्रकाशित करें, तभी 'समांतर' का उद्देश्य पूरा होगा. □

इस नवलेखन अंक के लेखक

- **मोहरसिंह यादव :** अभी तीन-चार कहानियां ही लिखी हैं, लेकिन अपने समय-संगत कथ्य और नय शिल्प के कारण प्रभावित करते हैं.
- **बलराम :** पिछले तीन-चार बरसों से लेखन-रत ह. ग्रामीण परिवेश पर इनकी पकड़ बहुत मजबूत ह. शैली में तल्खी है और कहानी के प्रति असीम उत्साह.
- **सीतेश आलोक :** प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. पी-एच. डी. अब तक अनक प्रतिष्ठित और छोटी पत्रिकाओं में लगभग ६० रचनाएं ––कहानियां, कविताएं, व्यंग्य, लघु-नाटक––आदि प्रकाशित. पर्यटन म विशष रुचि.
- **शांता वर्मा :** हाल ही में कहानियां लिखना शुरू किया है. कथ्य और परिवेश की जबरदस्त पकड़ इनकी कहानियों में मौजूद है.
- **नासिरा शर्मा :** अब तक बच्चों और महिलाओं की पत्रिकाओं में ही लिखतीं रही ह. अब गंभीरता से कथा-लखन की ओर प्रवृत्त. फारसी, पश्तो, उर्दू तथा अंग्रेजी का इन्हें अच्छा ज्ञान ह.
- **अजित :** आरा में १९४३ म जन्म. वहीं पर अध्ययन. ग्रामीण परिवेश के गहन खोजी. संप्रति शिक्षक हैं.
- **प्रेमचंद सहजवाला :** १९४५ म जन्म. एम. एस-सी. (गणित). अब तक करीब २० कहानियां प्रकाशित.
- **संजीव :** उत्तर प्रदेश में जन्म, प. बंगाल में बड़े हुए. बचपन घोर निर्धनता में गुजरा. संप्रति इंडियन आयरन एंड स्टील कं. में रसायनज्ञ.
- **केशव :** हाल ही म लिखना शुरू किया है, लेकिन जागरूक लेखन के कारण चर्चित हो रहे हैं. सात - आठ कहानियां प्रकाशित.
- **योगेंद्र दत्त :** लघुकथाओं के क्षेत्र से कहानी के क्षेत्र में आये हैं और अच्छा लिख रहे हैं.
- **मनीषराय यादव :** १९४५ में म. प्र. के एक गांव में जन्म. चुभती हुई व्यंग्य लघुकथाएं लिखन में माहिर हैं.
- **कैलाशचंद्र :** निम्न मध्यवर्गीय जीवन को इन्होंने बड़ी गहराई से देखा-भोगा है और उसी का अपनी कहानियों में चित्रण भी करते हैं.
- **मधु शर्मा :** पिछले तीन-चार वर्षों से लिख रही हैं. कुछ कहानियां प्रकाशित. दो उपन्यास प्रकाशनाधीन. युवा मानसिकता मुख्य कथ्य.
- **सुधा चंदोला :** पिछल १२ वर्षों से अमरीका में रह रही हैं और वहां की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं.
- **मनजीत :** जन्म १९५७ में. शिक्षा केवल आठवीं तक. आगे पढ़ने की कोशिश में. रंगमंच से विशेष लगाव.
- **योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन' :** लखनऊ विश्वविद्यालय में हिंदी के शोध-छात्र और स्थानीय कॉलेज में प्रवक्ता. पत्रकारिता में विशेष रुचि.


अजित


सीतेश आलोक


बलराम


संजीव


मनीषराय यादव


मधु शर्मा


प्रेमचंद सहजवाला


नासिराशर्मा


सुधा चंदोला


कैलाश चंद्र


केशव


योगेंद्र दत्त


योगेश 'प्रवीन'


मोहरसिंह यादव


मनजीत

कहर आषाढ़ का

• मोहरसिंह यादव

नीम की छाया में लेटे-लेटे घींसिया ने हिसाब लगाया. अंगुलियों के पोरवों पर अंगूठा रखते हुए गिनती गिनने लगा . . .आज जठ सुदी दसमीं हो गयी. ग्यारस एक. . .बारस दो. . .तेरस तीन. . .चौदस चार. . . और पूर्णमासी पांच. . .पूरमपट, पांच दिन रह गये जेठ के!

उसे चिंता होने लगी. केवल पांच दिन बाकी रह गये आसाढ़ लगने में. वह सोचने लगा, दो महीने से खाट में पड़ा हूं. एक अंगुल भी फायदा नहीं हुआ. दस दिन पहले सरकारी अस्पताल के डाक्टर को दिखाया था. उसने एक मटमैली-सी पर्ची पर बीस रुपये की सुई और दवाइयां लिख दीं. बीस रुपये कहां से लाता? उसके लिए तो पहाड़ से भी बड़ी थी यह रकम. कोशिश तो खूब की थी. घींसिया और पांची दोनों मर्द-बीर सारे गांव में डोल आये; पर किसी ने एक पाई भी उधार न दी. किसी का भी कलेजा नहीं पसीजा. आखिरी उम्मीद लालाजी से थी, उसने भी टका-सा जवाब दे दिया. कहने लगा—तेरे घर में पांच मन जौ पहुंच गये हैं. साठ रुपया मन के भाव से लगा हिसाब. . . सिफर की सिफर और छः पंच तीस. हो गये पूरे तीन सौ रुपये . और तीन रुपया सैकड़ा के हिसाब से चार महीने के ब्याज के हुए. . .नौ चौक छत्तीस रुपये. . . .तीन सौ छत्तीस. और दस रुपया सैकड़ा कटोता के . . . तीस रुपये. सारी रकम जुड़-जुड़ाके हो गयी तीन सौ छियासठ रुपये, परमपट. और आगे, भूल-चूक लेनी. या तो दस्तूरी बात है: सुन ले कान खोल के!

घींसिया बैठा-बैठा लाला राम औतार की बातें सुनता रहा. उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह बीस रुपये के लिए दुबारा बोले. पांच मन जौ की कीमत तीन सौ छियासठ रुपये सुनकर वह ढीला पड़ गया. उसने सपने में भी यह उम्मीद न की थी कि सेठ इतने अधिक रुपये जोड़ देगा. उसका जी मिचलाने लगा और सारे बदन से पसीना चूने लगा. शरीर के जोड़ों का सारा सत निकल गया. उकड़ूं बैठे-बैठे घुटने जकड़ गये और उसे ऐसा लगा जैसे देह किसी भारी बोझ के तले दब गयी.

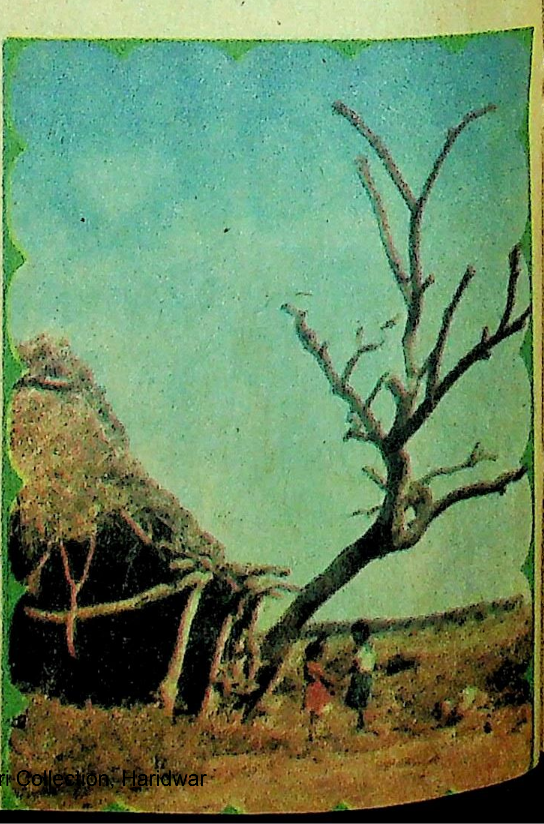
सेठ राम औतार बोलता जा रहा था—खुली आंख? पहले बकाया हिसाब साफ कर दे, सारा का सारा, फिर आगे की बात कर! मेह बरसते ही तू तो मेरे ऊंट पर हाली लग जा और पांची को मेरे खेत में निराई-गुड़ाई के लिए भेज देना. तेरे सिर का बोझ हल्का हो जाएगा, और मेरे रुपये लौट आयेंगे. अब ऐसी सूरत में बीस रुपये तो जहां-तहां, एक पैसा भी नहीं मिल सकता. और नाज भी नहीं मिलेगा. दोनों कान खोलकर सुन ले. फिर मत रोना कि सेठ ने धोखा किया. हिसाब जौ-जौ का और बकसीस सौ-सौ की. लेन-देन की शर्तें साफ बता दी हैं. व्यवहार तो व्यवहार है: इसमें न कोई भाई और न कोई बंद.

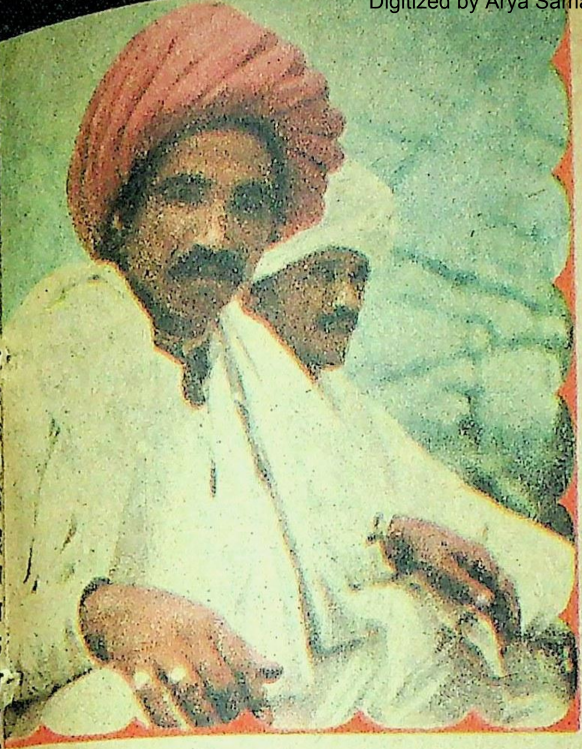
सेठ अन्य दो असामियों से लेन-देन की बातें करने लग गया. घींसिया ने दबी पलकों से एक बार सेठ की ओर देखा और दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया. सेठ से हाथ जोड़ कर 'राम-राम' की और कमर पर दोनों हाथ रखकर अपने घर की ओर चल पड़ा था.

गर्दन नीचे किये सारे रास्ते चलता-चलता वह सेठ द्वारा बताये रुपयों में के बारे में सोचता रहा. उसने मन ही मन हिसाब लगाया, शीतला सातें से दो दिन पहले चैत बदी पांचे को, जौ लिये थे. उस समय गांव में जौ का आम भाव पैंतालीस रुपये मन था. सेठ ने पंद्रह रुपये मन ज्यादा लगा लिये. दस रुपया सैकड़ा का कटोता और आम दर से दुगुना ब्याज लगा लिया. उसने हिसाब लगाने की काफी कोशिश की, किंतु तीन सौ छियासठ रुपये का जोड़ नहीं बिठा पाया. वह हद से ज्यादा उलझ गया. उसने कमर से हाथ हटाकर अंगुलियों पर हिसाब लगाने की चेष्टा की, पर घर पहुंचने तक कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ. वह केवल इस नतीजे पर पहुंचा कि सेठ ने डेढ़-दो गुना अधिक रुपये लगा लिये हैं.

उसके दिल में सेठ के प्रति घृणा-सी हो गयी. वह निढाल हो कर खाट पर गिर गया. पड़ा-पड़ा धीमे-धीमे बड़बड़ाने लगा—स्याला. . .कीड़े पड़के मरेगा. . . खून चूसता है. . .गरीबों की हाय . . .

पांची झप्पर में झाड़ू लगा रही थी. तीनों बच्चे नीम की छाया में घरघूले बना कर खेल रहे थे. घींसिया ने थकान दूर करने के लिए पांव पसारे और शरीर तना दिया. उसे एक लंबी उबासी आयी. आंखों के सामने अंधेरा-सा हो गया और तारे से बहते दिखायी दिये. उसने दोनों आंखों को हथेलियों से मला तो दृष्टि साफ हो गयी. पांची ने छप्पर का निकला हुआ कूड़ा गलियारे में फेंका और घींसिया के पास में आकर पूछने लगी—फूसिया





का काका, मिल गया कि ना रुपिया?

—कित मिल गया, घींसिया ने कराहते हुए कहा.

—क्यूं के बात हुई, सेठ से?

—बात के हुई, कुछ बी ना. यूं कहे है कि पहले जौ के पैसे दो...

—तीन सौ छियासठ रुपिये निकाले हैं, बाकी.

—यी कितना होवे हैं? पांची ने उत्सुकता से पूछा.

—नौ कम पोणे चार सौ.

—हाय...राम! इतना घणा!

—साठ के भाव जौ लगाया है और ब्याज-बट्टो अलग है.

—तड़के दिन निकला सरकारी अस्पताल में मंडावर जाऊंगी...

—कोई घोल-घाल लेके आऊंगी.

—वा अस्पताल की दवाई से के फायदो होवे है! पहलड़ी सीसी से ढिंगाभर बी असर ना हुयो. पुरानी जुरी है, बिना सुरी के मुसकल से निकलेगी.

पांची इतनी बात कह कर रोटी बनाने के लिए लकड़ियां तोड़ने चली गयी. घींसिया ने जम्हाई ली और करवट बदल कर खाट की बांही के पास समांतर पांव फैला कर लेट गया. उसकी पलकें भारी होने लगीं. वह आंखें मूंद कर सो गया. उसे नींद में भी सेठ और उसका बताया हुआ हिसाब दिखता रहा. पहाड़ से भी भारी लग रहा था उस सेठ का हिसाब!

* *

दूसरे दिन सुबह उठते ही वह सरकारी अस्पताल में मंडावर पहुंचा. डाक्टर की मेज पर पुरानी पर्ची रखी. डाक्टर ने पर्ची पर एक नजर डाली और उसकी नब्ज देखने लगा. स्टूल पर बिठा दिया और स्टेथेस्कोप को छाती और कमर पर लगा-लगा के जांच करने लगा. सब कुछ देखभाल कर डाक्टर ने पूछा :

—तुम इतने रोज से कहां थे? टिकिट में तो दस दिन पहले की तारीख लगी है. इस तरह से इलाज थोड़े ही होता है!

—डाकदर सा'ब, गांव में ही था. दवाई-मूली का पैसा को बंदोबस्त कर रह्यो थो, घींसिया ने नम्रता से कहा.

—कुछ भी हो, तुम्हारी हालत ठीक नहीं है. बुखार बिगड़ गया है. अब तुम्हें लगातार कैपसूल्स लेने पड़ेंगे और चार-पांच इंजेक्शन लगेंगे या फिर तुम भर्ती हो जाओ. हमारे यहां तो हाल-फिलहाल कोई खाली बैड है, नहीं तुम ऐसा करो. अलवर बड़े अस्पताल में चले जाओ. मैं तुम्हें पर्ची बना देता हूं.

डॉक्टर की बात सुन कर घींसिया कुछ भी न बोल पाया. वह नीची पलकें किये जड़वत एक ही मुद्रा में बैठा रहा जैसे उसकी जुबान पर बहुत भारी ताला लग गया है. डाक्टर उसकी ओर देखता रहा. उसने एक बार पुनः पूछा—क्यों, अलवर के अस्पताल में भर्ती होने के लिए चिट बना दूं? घींसिया मौन साधे बैठा रहा. उसने हां या ना, कुछ भी नहीं कहा.

डाक्टर समझ गया. उसने घींसिया के फटे-मैले कपड़ों को एक बार पुनः देखा. स्थिति को समझते हुए एक बार फिर पूछा—क्या पैसों का बंदोबस्त नहीं हुआ? यह सुनकर धीमें से घींसिया ने पलकें उठायीं और उसकी आंखों में आंसू भर आये. डाक्टर ने तुरंत काल-बैल बजायी और चपरासी से कंपाउंडर को बुलाने को कहा. उसने एक खाकी टिकिट पर दो-तीन दवाओं के नाम लिखे और कंपाउंडर के हाथ में थमा दिया. कंपाउंडर जल्दी से दो शीशियों में घुली हुई दवाइयां और एक पुड़िया में कुछ गोलियां लपेट कर ले आया.

डाक्टर ने घींसिया को दवाइयां दे दीं और एक दिन में तीन खूराक, सुबह, दोपहर और शाम लेने की सलाह दी.

घींसिया ने गोलियों को अपनी पगड़ी के किनारे बांधा और दोनों शीशियां हाथ में उठाते हुए डॉक्टर को सिर झुकाकर 'राम-राम' किया. वह जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ अस्पताल से बाहर निकला और अपने गांव के रास्ते पर चल दिया. सारे रास्ते, वह अपनी बीमारी, बच्चों, पांची और सेठ के कर्ज के बारे में सोचता रहा. उसने अपनी समस्याओं के उपाय ढूंढ़ने की काफी चेष्टा की पर कोई उपाय न सूझा. उसे ऐसा लगा जैसे समस्याएं दैत्याकार रूप धारण किये हुए मुंह खोले खड़ी हैं और उसका अपना व्यक्तित्व चींटी से भी छोटा है. उसका सारा सोचना व्यर्थ गया. इसके अलावा बीमार भेजा दुगना खराब हो गया.

घर पहुंच कर घींसिया ने चिमनी वाले आले में दवाइयां रख दीं और खाट पर लेट गया. पांची उत्सुकता से छप्पर से बाहर निकली और पूछा—के बेमारी बताई है, डॉक्टर ने? घींसिया अपना सर दबाये चुपचाप बैठा रहा. पांची ने पुनः पूछा तो उसने धीमे से, जुरी है,

कह दिया. पांची पायताने बैठ कर घींसिया के पांव दबाने लग गयी. घींसिया ने पांची से दवाई और गर्म पानी लाने को कहा. पांची दोनों शीशियां, एक गोली और बाहर धूप में रखी मटकी से एक कटोरा पानी ले लायी. घींसिया ने शीशियों से एक-एक घूंट दवाई पी और एक गोली पानी के साथ गिटक ली. उसने मुंह पर लगे पानी को हाथ से पोंछा और जोर से डकार लेकर वापस लेट गया. उसने करवट बदल कर जोर से खांसा और पाये के पास सारा डाल दिया.

पांची ने दवाइयां वापस उसी आले में रख दीं. वह चूल्हे के पास बैठ कर लकड़ियों के छोटे-छोटे कुटकले तोड़ कर फूंकनी से आग जलाने लग गयी. आग जलाकर उसने हांडी को धोया और चूल्हे पर घींसिया के लिए जौ का दलिया चढ़ा दिया. उसे मालूम था कि जौ का दलिया जुरी में नुकसानदेह होता है. पर चावल-मूंग की खिचड़ी कहां से आये?

घींसिया की खाट के पास आकर तीनों बच्चे, काका, काका कहने लगे. घींसिया ने अपना अलसाया हाथ उठाया और बिचले लड़के कालिया के सिर पर हाथ फेरने लगा. कालिया चुपचाप खड़ा-खड़ा अपनी खोपड़ी सहलवाता रहा.

★ ★

तीन दिन बीत गये, दवाई लेते-लेते. घींसिया को अपनी तंदुरुस्ती में थोड़ा फायदा महसूस होने लगा. पांची ने भी सुबह दवाई पिलाते वक्त कह दिया—अब तो थारी आसंग चोखी लाग री है. मुंह पे बी रौनक है, आज तो! और पांची की बात सुनकर वह स्वयं को चोखा समझने लग गया था. उसने स्पष्टीकरण और अपने दिल की शांति, के लिए पांची को तीन-चार बार पूछ लिया था कि क्या वाकयी उसकी हालत चोखी हो रही रही है? पांची ने हर बार, 'हां,' कह दिया. अब उसे पूरा विश्वास हो गया था कि वह पांच-सात दिन में बिलकुल ठीक-ठाक हो जाएगा.

दूसरे दिन सुबह तो उसकी तंदुरस्ती में काफी सुधार हो गया. सुबह खाट से उठ कर वह पोखर से दूर निबटने चला गया. हाथ-पांव धोकर घर चला आया. उसने पांची से साफ-साफ कह दिया कि जौ का दलिया खाते-खाते मन ऊब गया है. आज तो मैं कोई चरपरी चीज खानो चाहऊं हूं! रोटी और चटणी मिल जाए तो मजा आ जाए. और पांची ने भी मुस्करा कर कह दिया—पतली-पतली जौ की रोटी बना दूंगी और लसन-प्याज की चटणी बना दूंगी.

घींसिया को पांची का प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा,

घींसिया ने जौ की दो पतली-पतली रोटियां लहसुन-प्याज की चटनी के साथ खा लीं. काफी दिनों बाद चरपरी चटनी और रोटी उसे खूब स्वाद लगीं. वह एक रोटी और भी खाना चाहता था, पर पांची ने मना कर दिया. कहने लगी—इतने दिना में तो ऊठे हो, लीलिया का काका! घणी रोटी खावा से फेर बेमार पड़ जाओगे. और घींसिया मन मसोस कर बैठ गया. था. उसने दूसरी बार रोटी और चटनी नहीं मांगी.

दोपहर में वह नीमतले खाट पर आकर [illegible] गया. आसमान में बड़े गहरे-भूरे बादल फैले हुए [illegible] जेठ की पूर्णमासी थी. दूसरे दिन से आषाढ़ लगनेवाला था. सुबह से गर्मी बहुत भयंकर पड़ रही थी. नीम की ठंडी छाया में उसकी आंखें लग गयीं. थोड़ी देर बा[द] मोटी-मोटी बूंदें गिरने लगीं. वह हड़बड़ा कर उठा. पांची छप्पर में से बाहर भागी और घींसिया की खाट को छप्पर में बिछा दिया. घींसिया ने दूधिया आकाश को ए[क] बार देखा और छप्पर में जाकर खाट पर बैठ गया. बारिस की बूंदें और तेज हो गयीं थीं और कुछ पल बा[द] मूसलाधार पानी बरसने लगा था.

लगभग दो-ढाई घंटे लगातार पानी बरसा. खूब गरक मेह हो गया था. शाम को सब बादल हट गये थे. सारा आकाश साफ हो गया. पांची ने छप्पर से बाहर चारपाई निकाल दी. घींसिया उस पर बैठ गया. पांची चूल्हे पर रोटियां सेकने लगी. सामने की गली से छाता हाथ में लिये सेठ आया और घींसिया के छप्पर की ओर मुड़ गया. घींसिया खाट से उठ गया और सर झुका कर सेठ से 'राम-राम' की. सेठ छाते का सहारा लिये खड़ा-खड़ा कहने लगा—घींसिया, कल से तू मेरे हल पे हाली जाएगा. बिरखा गरक हो गयी है. अब बुवाई कर दे फट।फट!

घींसिया नीची गर्दन किये बैठा रहा. वह कुछ भी न बोल पाया. पांची ने थोड़ी देर घींसिया के जवाब का इंतजार किया, किंतु जब घींसिया ने मौन स्वीकृति दे दी तो उससे न रहा गया. वह छप्पर के बारने से घूंघट में से बोली--सेठजी, अभी तो आसंग हल जोतवा की कित है इणकी! दो-तीन दिन कोई दूसरी हाली कर लो.

सेठ की भौंहें तन गयी थी, पांची की बात सुनकर. वह गुस्से में तमतमाकर बोला--हराम के थे मेरे पांच मन जौ! खा लिये और हाथ पोंछ लिये. मेरा भी नाम रामौतार नहीं जो या ढूंडो फुड़क नहीं करवा दूं तो. के समझ राखी है? हरामी, नीमक हराम!

सेठ कुछ और सुनाता, किंतु घींसिया से न रहा गया. वह बीच में ही हाथ जोड़ कर कहने लगा--सेठजी, गुस्सा मत करो. आप तो म्हारा भाई-बाप हो. भगवान से भी बड़ा हो. बैयरबानी की बात पे मत जाओ. मैं, ना थोड़ी कर रह्यो हूं. तड़के ही सबेरे हल लेके चलो जाऊंगो. थम फिरकर मत करो.

घींसिया की बात सुन कर सेठ का उफान शांत हो गया. वह यह कह कर कि अच्छो ठीक है, सबेरे बखत से आजइयो, चला गया. घींसिया ने एक लंबी सांस ली जैसे आफत टल गयी और उसे सुख मिल गया हो.

सेठ के जाने के पश्चात भी पांची घींसिया को हल न जोतने के लिए कहती रही. घींसिया सुनी-अनसुनी करता रहा.

★ ★

दूसरे दिन सकाले-सकाले घींसिया सेठ का हल जोतने चला गया. दिन चढ़े पांची ने तीन जौ की रोटियां बनायीं और कचरियों की चटनी लेकर घींसिया की

खातिर खेत में ले गयी. बीमारी से टूटे घींसिया ने तीनों रोटियां चटनी के साथ लगा-लगा कर खा लीं. वह बुरी तरह से थक गया था. दिन ढले पांची गांव में लौट आयी और घींसिया खेजड़े के पेड़ की छाया में सो गया. लगभग एक घंटे आराम करके वह उठा और पुनः हल जोत दिया. चिलकते-से दिन उत्तर-पूर्व से एक काला बादल चढ़ा और बूंदा-बांदी शुरू हो गयी. घींसिया हल्की बूंदों में भी हल चलाता रहा.

बारिश के साथ-साथ आंधी और आ गयी. बूंदें भी तेज और मोटी हो गयीं. उसने ऊंट की नकेल हल से बांधी और खेजड़े की पेड़ी की ओट में चिपक गया. आंधी तथा वर्षा और भी अधिक तेज हो गयी. उसके सारे कपड़े भीग गये. दांत किटकिटाने लगे. मुट्ठियां बंद हो गयीं और रोंगटे खड़े हो गये थे. वह सिमटता-सिकुड़ता तने से चिपका रहा.

अचानक खेजड़े का एक मोटा डाला टूटा और घींसिया के सिर पर आ गिरा. उसकी मुंडी जमीन में घुस गयी. वह काफी देर छटपटाता रहा, सिसकता रहा, कराहता रहा और थोड़ी देर बाद हमेशा-हमेशा के लिए शांत हो गया. अंधेरा पड़ गया था. घींसिया घर नहीं पहुंचा तो पांची को चिंता हुई. वह भागी-भागी सेठ के घर पहुंची और घींसिया के बारे में पूछा तो सेठ को भी अपने ऊंट की चिंता हुई. उसने अपने घर के नौकर को पांची के साथ खेत में भेज दिया.

पांची और सेठ का नौकर खेत में पहुंचे. ऊंट हल से बंधा हुआ था. किंतु घींसिया उसके पास नहीं था. पांची और अधिक घबरा गयी. वह खेजड़े के पेड़ की ओर भागी. घींसिया को पड़ा देखकर उसका सारा सत निकल गया. उसने टटोल कर देखा, घींसिया का मुंह जमीन में गड़ा हुआ था और सिर से खून बह रहा था. खेजड़े का डाला कमर पर पड़ा हुआ था. पांची घींसिया का सर पकड़ कर उसके ऊपर गिर गयी और जोर-जोर से बिलखने लगी. उसकी चीख सुनकर सेठ का नौकर भी खेजड़े की ओर भागा. घींसिया की नब्ज टटोली और देखा, उसका शरीर ओले-जैसा ठंडा हो गया था. सेठ के नौकर ने फुर्ती से घींसिया के बदन पर पड़ा डाला हटाया और ऊंट खोल कर घींसिया की लाश के पास जैका दिया. उसने घींसिया को दोनों हाथों से उठाकर बैठाने की चेष्टा की, किंतु घींसिया लुढ़क गया. नौकर ने घींसिया के मृत शरीर को उठा कर ऊंट की पीठ पर डाला.

पांची अपना सर-माथा पीटती ऊंट के पीछे-पीछे हो लई. वह फूट-फूटकर रोती हुई कह रही थी. . ..हाय . . .रे. . .रामऽऽ. . .या. . .साढ़ कहर . . .लेके. . .आ . . .गयोऽ. . .मैंऽ. . .मरऽ. . .गयीऽऽ. . . .

ऊंट जुगाली करता हुआ गांव की ओर बढ़ रहा था. पांची की चीख सारे जंगल में गूंज रही थी. आसमान में छाये बादल कहीं-कहीं से फट गये थे और उन फटी परतों के गर्भ से एक-दो तारे झांक रहे थे. □□□

द्वारा योगेन्द्र किसलय,
पुरानी गिनानी, बीकानेर (राजस्थान)

लघुकथा

वचन तथा फल

महात्मा गंगातट पर प्रभु-भजन में लीन चहल-कदमी कर रहे थे. सहसा कुछ शोर सुनकर उनकी दृष्टि पास ही के श्मशान पर चली गयी. क्या देखते हैं कि एक युवती एक मृत व्यक्ति के पैरों के समीप बैठी हुई है. उसकी मांग में सिंदूर भरा हुआ है तथा शरीर अलंकारों से सुसज्जित है. पास ही खड़े हुए उसके सगे-संबंधी सती की महिमा का बखान कर उसका जय-जयकार कर रहे हैं. सती होने को उद्यत उस युवती ने महात्मा को अपनी ओर देखते लख कर कहा—हे महात्मा, मुझे आशीर्वाद दीजिये ताकि मैं भी सुख से यह संसार छोड़ सकूं!

—कहां जाने की तुम्हारी तैयारी है?

—अपने मृत पति के पास स्वर्ग में.

—किंतु यह पृथ्वी छोड़कर तुम स्वर्ग क्यों जाना चाहती हो? स्वर्ग की रचना करनेवाले ने ही तो यह पृथ्वी भी बनाई है.

युवती महात्मा की इस गूढ़ भाषा को न समझ पायी. कुछ सोचने के उपरांत हार कर बोली— यदि मेरे स्वामी मुझे इसी पृथ्वी पर मिल जायें तो मुझे स्वर्ग से क्या लेना-देना?

इस पर महात्मा ने किंचित मुस्करा कर कहा—माई, चलो घर लौट चलो. साधु का वचन है कि तुम्हारे पति तुम्हें एक माह में मिल जायेंगे.

यह सुन युवती के चेहरे पर आशा और उल्लास की किरण फूट पड़ी. वह महात्मा के पीछे-पीछे चल पड़ी. यह देख सगे-संबंधी पहले तो विस्मयविमूढ़ हुए, फिर महात्मा तथा युवती के प्रति अभद्र वचन बोलने लगे.

महात्मा ने युवती को समीप ही एक कुटिया में विश्राम करने को कहा और स्वयं गंगातट पर आ गये. रात भर वे प्रभु-भजन करते रहे. प्रातः युवती के पास आ कर उससे सहानुभूति की बातें करते रहे, प्रभु की महिमा का बखान करते रहे.

एक मास तक यही क्रम चलता रहा. अब विधवा युवती के चेहरे पर से दुख-संताप हट चुका था, आंखों से आंसू झरने बंद हो गये थे. चेहरे पर एक दिव्य आभा झलकने लगी थी.

उधर एक माह पूरा होते ही विधवा के सगे-संबंधी कुटिया में आ धमके, पूछा-क्या तेरा स्वामी जीवित हो गया?

—हां, युवती का संक्षिप्त उत्तर था.

—कहां है, किस कमरे में है?

—यहां, इस हृदय-कुटीर में वे जीवित वास कर रहे हैं? है आप लोगों में देखने की क्षमता?

सगे-संबंधी कुटुंबीजन क्या उत्तर देते? □□□

कलम हुए हाथ

• बलराम

बापू ने शंकर को आवाज दी तो अम्मा उठ गयीं. दर-असल बापू ने आवाज अम्मा को ही दी थी. रात के चार बजे मुर्गा बोलने पर शंकर का नाम लेकर दी गयी बाबू की हल्की-सी आवाज अम्मा के लिए ही होती है, इस बात को अम्मा अच्छी तरह से जानती हैं और शंकर भी. कभी-कभी बापू को इस आवाज से शंकर की आंख भी खुल जाती है, लेकिन वह, न तो उठता है और न ही बोलता है, चुपचाप पड़ा रहता है. आज भी बापू की आवाज पर शंकर की आंख खुल गयी.

बापू की आवाज का जवाब देते हुये अपनी रजाई से निकल कर अम्मा ने सलूका पहन लिया और भुसवारी से थोड़ा-सा भूसा अपनी मुठी में लेकर बरामदे में आ गयीं. बिरौसिया को खखोर कर राख में दबी हुई आग निकाली. अंगूठे से उसे खूंथा और भूसा रख दिया. लौट कर कोठरी में आयीं और आले में रखे चिराग को उठा लिया.

चिराग लेकर अम्मा बिरौसिया के पास पहुंचीं तो भूसा धुंधुवा रहा था. बैठकर उसे फूंकने लगीं, लेकिन उनका पोपला मुंह उसे जला पाने में सफल न हो सका. सुलगते हुए भूसे का धुआं कोटरों में धंसी उनकी आंखों में घुस गया तो उनमें आंसू चुचुवा आये. भूसा शायद बारिश का भीगा हुआ था, इसीलिए नहीं जला. अम्मा की परेशानी समझकर, तब तक हाथ में माचिस लिये हुये, शंकर कोठरी से बाहर निकल आया था. उसने माचिस घिसी और जलती हुई तीली को चिराग से छुआ कर उसे जला दिया.

शंकर ने अम्मा से लाख बार कहा कि कम से कम रात में तो चिराग को माचिस से जला लिया करो, पर अम्मा भी न जाने किस माटी की बनी हैं कि माचिस को छूती तक नहीं. वे बिरौसिया में गड़ी कंडे की आग और भूसे का ही इस्तेमाल करती हैं. शायद ही कभी उन्होंने माचिस छुई हो. दरअसल बिरौसिया की आग और भूसे ने उन्हें कभी भी माचिस का मोहताज नहीं किया. माचिस रहने के बावजूद वे कभी उसका इस्तेमाल नहीं करतीं. यह अम्मा की कंजूसी नहीं है, आदत है. जिंदगी में कभी भी उन्होंने हाथ खोलकर खर्च नहीं किया. उनका हाथ हरदम बंधा रहा है. उन्होंने बहुत ऊंच-नींच देखे हैं, और अपनी जिंदगी बहुत सादगी से गुजारी है. उन्हें वे दिन भी याद हैं जब बड़के पैदा हुए थे और घर में भूंजी भांग तक न थी. लगान दे पाने की वजह से जमीन बेदखल हो गयी थी. गरीबी और संकेती के उन दिनों से लेकर चार-चार हजार रुपये की आलू बेचने तक बापू के खुशहाल दिनों में भी अम्मा की जिंदगी का ढर्रा एक-सा रहा है. थोड़ा बहुत रफा-दफा कर दें तो उसमें कभी कोई खास परिवर्तन नहीं आया.

अम्मा के पैरों में चांदी के खड़वे तब भी थे, जब वे शादी के बाद इस घर में आयी थीं. वही खड़वे अब भी हैं. हाथों में भी वही कड़े हैं, और कानों में हैं वही पचास साल पुराने कर्णफूल. फर्क सिर्फ इतना ही है कि अब सब कुछ घिस-घिसा कर चमकहीन हो गया है. मोटी किनारी की सादी धोती वे तब भी पहनती थीं और अब भी. हां, पहले किसी रंग से रंग लेती थीं लेकिन अब सफेद ही पहनती हैं. बापू के पास तमाम-तमाम रुपया आने की बात वे सुनती भर रही हैं. लेन-देन से उन्हें कभी कोई मतलब नहीं रहा. अम्मा ने कभी कुछ खरीदा नहीं, बेचा नहीं, सारी की सारी खरीद-फरोख्त बापू ही करते रहे हैं. बापू ने जो कुछ ला दिया, अम्मा ने बना कर सबको खिला दिया, खा लिया, पहना दिया, पहन लिया. कभी कोई शिकवा नहीं, शिकायत नहीं. बड़के या मंझले से झांय-झांय होने पर बापू ने ही, जरूर अम्मा को ताना-सा दिया है.

—तुम्हीं जिंदगी भरि रोउती रहिउ कि ख्यात चलेगे, ख्यात चलेगे. जब ख्यात वापस मिलिगे, तब टयाढ़व शुरू कीन्हिव कि घरु नाइं नीक है, घरु बनवाव, घरु बनवाव ख्यातन अउर घर के चक्कर मां जिंदगी भरि, न ढंग ते खा सकेन, न पहिरि सकेन. सोंचे रहै कि बुढ़ापा मां लरिका-बच्चा दुई रोटी तौ ढंग ते पयाहैं, लेकिन हिन रोटी तौ दूरि, कउनव सार पानी लग का नांइ पूछत हैं. इयो सब तुम्हरे हे मारे भा. न घरु बनवउतेन, न अउर कुछ करतेन. रुपया बैंक मां जमा करि देतेन, तौ बुढ़ापा मां ई सब सार आगे-पीछे फिरत. चौबिस घंटा हांथ-पांव दबावत, ड्यूटी अस बजावत रहत.

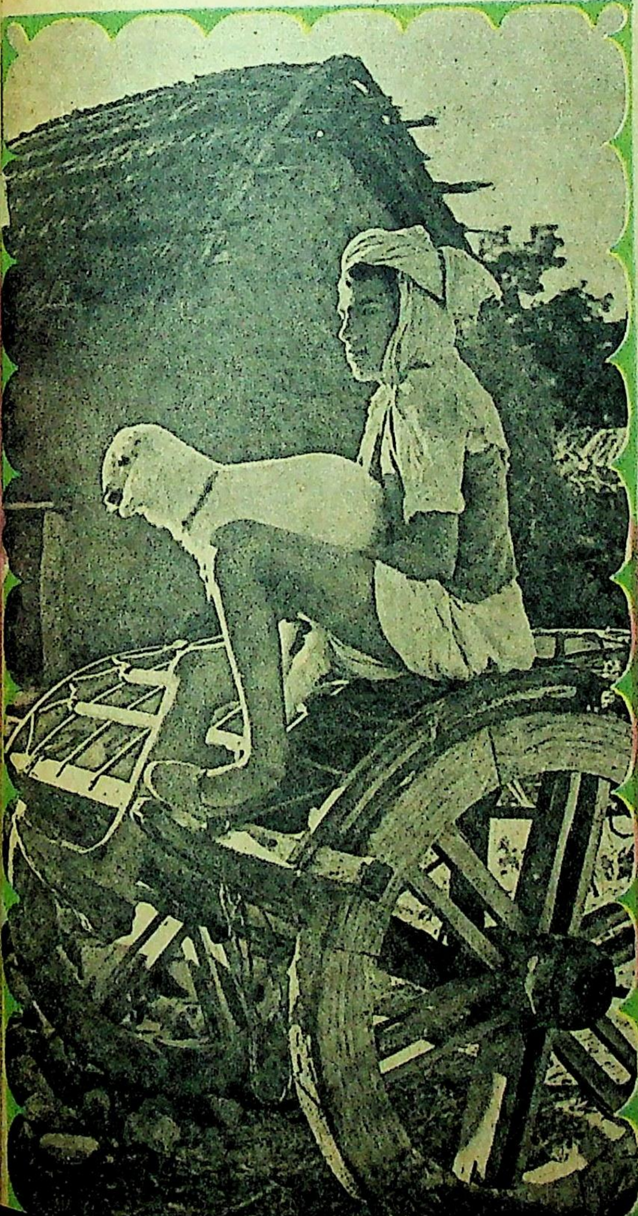
—काहे बांटि कै दइ दीन्हिव. न देतेव. न बांटि कै देतेव, न इया हालत होति.

बापू के ताने का संक्षिप्त जवाब अम्मा देती हैं तो बापू चुप रह जाते हैं, और फिर बापू की आंखें सामने वाली अधूरी दीवाल पर टिक जाती हैं. वे आगे वाले कमरा-बरामदा के बारे में सोचने लगते हैं. कमरा-बरामदा ही तो घर की छबि होते हैं और शायद उनकी आंखें उसी छबि की तलाश में भटक जाती हैं.

जलता हुआ चिराग लेकर अम्मा कोठरी में आयीं और बापू के पास बैठ गयीं. उन्हें सहारा देकर उठाया और खूंटे पर टंगे कुर्ते को उतार लिया और हाथ उठा कर उन्हें पहना दिया. बापू का एक हाथ बेकार हो गया है. सुन्न पड़ गया है, बापू अब उससे कुछ कर नहीं पाते. कुछ करना तो दूर, बापू का वह हाथ उठता तक नहीं. उस हाथ को दूसरे हाथ से उठा कर इधर-उधर करते हैं. कुर्ता पहनाने के बाद अम्मा ने बंडी भी उतार ली, मैली-चीकट बंडी. सफेद बंडी को मल की काली-काली पर्तों ने लगभग चितकबरा कर दिया

है. वैसे तो शंकर ही कभी धो देता या अम्मा ही, पर यह रुइया बंदी है. धुलने पर रूई भीग जायगी और बंडी का मजा किरकिरा हो जायगा, और फिर सूखने में एक-दो दिन लगेंगे. बापू को यह सब खोखट लगती है. इसीलिए जब से यह बंडी बनी है बेचारी को रेह या साबुन तो दूर, पानी तक नसीब नहीं हुआ. हाथ उठा कर अम्मा ने बंडी भी पहना दी और फिर अपने दोनों हाथों से सहारे से बापू को खड़ा कर दिया. कोने में खड़ी उनकी लाठी पकड़ा दी और बाहर ले चलीं.

बापू नित्यकर्म से निपटना चाह रहे थे. उनमें अब इतनी शक्ति नहीं रह गयी है कि फलांग, दो फलांग दूर गांव से बाहर दिशा-मैदान को जा सकें इसलिए उन्होंने चार बजे को नियम-सा बना लिया है. उधर इब्राहीम की नीम पर बैठा हुआ राना मुर्गा बांग देता है और इधर शंकर का नाम लेकर अम्मा को बापू आवाज देते हैं. . . . और शंकर नही उठता, अम्मा ही उठती हैं और टोले-पड़ोस के अन्य लोगों के जगने के पहले ही बापू नित्यकर्म से निपट लेते हैं. लौट कर फिर अपने बिछावने में दुबक रहते हैं. बापू



• भगवानदास रूपानी

से निपटकर अम्मा ने चकिया ओइर दी. चकिया चल पड़ी तो शंकर ने चिराग संभाला और पढ़ने लगा.

चकिया का काम खत्म होते ही अम्मा घर के बाहर छप्पर के नीचे आयीं. बड़के और मंझले ने अपना-अपना बैल निकाल कर लिड़ौरी पर बांध दिया था. शंकर की भैंस छप्पर के नीचे ही रह गयी थी. उसे निकाल कर अम्मा ने नांद पर बांध दिया. बंटवारे में एक बैल बड़के को मिला और एक मंझले को. शंकर और बापू के हिस्से में भैंस आयी. घर का उत्तरी हिस्सा बड़के को और दक्षिणी हिस्सा मंझले को मिला. पश्चिमी हिस्सा बापू और शंकर के पल्ले पड़ा. बड़के और मंझले अपने-अपने बीवी-बच्चों के साथ अपने-अपने हिस्सों में चले गये. शंकर के साथ रह गये अम्मा और बापू या यों कहें कि अम्मा और बापू के साथ शंकर रह गया. अपने लिए बापू ने कुछ नहीं रखा. सब कुछ बांट-चांट कर दे दिया. अपनी रोटी के लिए तीन बीघेवाला चक अपने पास रखा, बस.

अम्मा की आवाज ने शंकर का ध्यान भंग किया तो उसने अपनी किताबें समेटी और बाहर निकल आया. खाली चूनी वाली बाल्टी देखी, अम्मा पानी से भर गयी थीं और शायद उसे आवाज देकर स्कूल वाले कुयें से पानी भरने चली गयी थीं. शंकर ने एक नजर बखरी में लगे हैंड पंप पर डाली. पानी सब लोग भरते हैं, लेकिन जब बनता-बिगड़ता है तो बापू ही ठीक करवाते हैं. इस बार बापू के हालात ऐसे हैं कि चाह कर भी ठीक नहीं करवा सके. कई रोज से बिगड़ा पड़ा है. सब लोग स्कूल वाले कुयें से पानी भर लाते हैं, लेकिन बिगड़े हुए पंप को कोई ठीक नहीं करवाता, मानो हर बना-बिगड़ी को ठीक करवाने का ठेका बापू ने ही ले रखा है. बड़के सोचते हैं कि मंझले ठीक करवायें और मंझले सोचते हैं कि बड़के ठीक करवायें. ठीक होने में एक-दो रुपये लगेंगे और सभी अपने-अपने रुपये बचाने के चक्कर में हैं. बस, पंप बिगड़ गया तो बिगड़ा पड़ा है.

★ ★

शंकर बाहर निकला तो कांख में कलसिया दबाये और एक हाथ में पानी से भरी बाल्टी लटकाये अम्मा अंदर आ गयीं. वह झबई लेकर भुसवारी में चला गया. अम्मा कोठरी से पड़िया निकाल लायीं. भूसा निकाल कर उसने रख दिया . अम्मा ने पड़िया छोड़ दी तो वह बाल्टी ले आया. पड़िया हूंथा-मार-मार कर पी रही थी, भैंस के थनों में अभी दूध उतरा नहीं था. पड़िया की पीठ पर हाथ रख कर शंकर बैठ गया और दूसरे हाथ से भैंस के थन भिलगाने लगा. थोड़ी ही देर में भैंस ने दूध उतारना शुरू किया और रुई की तरह मुलायम थन कड़े होने लगे. भैंस पन्हा आयी तो शंकर ने पड़िया को खींच कर बांध दिया और थन धोकर दुहना शुरू किया. दूध की पहली छांछें बाल्टी की पेंदी पर पड़ीं तो वह टनकार उठी. थोड़ी देर बाद जब पेंदी में कुछ दूध आ गया तो उसकी टनकार गरगराहट

में बदल गयी. संगीत की सुर-लहरी के आरोह-अवरोह की मानिंद गर-गर-गर्र, गर-गर-गर्र बाल्टी की पेंदी पर दूध की मोटी धारें पड़ीं तो ढेर सारा फेन उठने लगा और शंकर के दुहने की गति तेज हो गयी. भैंस दुहकर अंदर आया तो बापू ने गुहारा.

बापू की आवाज पर शंकर कोठरी में पहुंच गया. इस बार बापू का यह संबोधन शंकर के लिए था. अम्मा के लिए नहीं और उनके पास पहुंचा भी वही. तख्ती से दवा की बोतल निकाली और चम्मच में डाल कर बापू को दी. बापू उसे गटाक् से पी गये और फिर रजाई हटाने लगे. शंकर समझ गया कि अब वे बाहर धूप में जाना चाहते हैं. उसने उन्हें उठा कर खड़ा कर दिया और लाठी पकड़ा दी. लाठी और उसके कंधे के सहारे बापू बाहर आ गये.

बड़के और मंझले अपना-अपना बैल लेकर खेतों पर चले गये थे. बड़के की दोस्ती बिंदा से है और बिंदा के पास भी एक ही बैल है. वह भी अपने भाई पुत्तीलाल से अलग हो गया है. इस तरह एक बैल बिंदा का और एक बैल बड़के का मिला कर गोईं बनती है और साझेदारी में बारी-बारी से वे अपने-अपने खेत जोत और बो रहे हैं. इसी तरह मंझले और पुत्तीलाल ने भी जुट्टी बना ली है.

राजा ठाकुर गांव के परधान हैं, न जाने क्यों शंकर और बापू पर मेहरबान हैं. शायद बापू की बीमारी और शंकर की असहाय स्थिति को देख कर या इसकी वजह यह हो सकती है कि राजा ठाकुर का लड़का शंकर के साथ इंटर में है और पढ़ने-लिखने में भोंदू है, जबकि शंकर हरदम फस्ट आता है. राजा ठाकुर ने बीस रुपये महीने पर शंकर को इस बात पर राजी कर लिया है कि वह उनके लड़के के साथ बैठ कर एक-दो घंटे पढ़ा करे और उसे भी समझा दिया करे. बापू की बीमारी का सारा पैसा राजा ठाकुर ने दिया है और शंकर के हिस्से के खेत टेक्टर से जुतवाकर अपने ही बैलों से बुआ दिये हैं. बापू के हिस्से के तीन बीघे खेत रह गये हैं. एक-दो बार बापू ने ठाकुर से कहा तो उनके बैल और टेक्टर खाली नहीं थे.

नकद पैसे देकर किसी और से जुतवाने और बुवाने का माद्दा उनमें रह नहीं गया है. बड़के अपने खेत जोतने-बोने में पड़े हैं. मंझले भी आपाधापी में हैं. फुर्सत में भी होते तो क्या बापू के हिस्से के खेत जुत जाते, क्या बापू उनसे कहते? कह पाते, किस मुंह से कहते, किस विश्वास के साथ कहते? जो लड़के बंटवारे के बाद अपने बाप से बोलते तक नहीं, उसके मरने-जीने का हाल तक नहीं पूछते, बाप उनसे क्या उम्मीद कर सकता है, क्या कह सकता है. कल शंकर ने बताया था कि ओइंठि खरा रही है. एक-दो दिन में खेत न जुते तो ओइंठ चली जायगी. खेत सूख जायेंगे. खेत सूखने की बात सुनकर बापू की आंखें बोझिल हो आयीं थी. उनको लगा था कि उनका घर बिखर गया है, बिखर कर कई टुकड़ों में बंट गया है. एक घर होता तो संभाला भी जा सकता था. लेकिन टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे इस घर को संभालना अब किसी के बूते की बात नहीं रह गयी है.

जब सूरज काफी ऊपर चढ़ आया तो बापू ने शंकर से खेतों पर चलने की इच्छा व्यक्त की. शंकर ने मना किया कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, उतनी दूर चलोगे तो थक जाओगे, वैसे भी तुम्हारी सांस फूलती है. शंकर ने मना किया लेकिन बापू माने नहीं. शंकर के कंधे और अपनी लाठी के सहारे डोलते हुये वे बड़े चक पर पहुंच गये. इस चक को पांच-पांच बीघे के तीन हिस्सों में बांटा गया है. बड़के, मंझले और शंकर के लिए. शंकर के हिस्से के खेत तो खैर जुत-बो गये हैं, पर बड़के और मंझले अभी भी हाथ-पांव मार रहे हैं और बापू के खेतों की तो ओइंठि ही जा रही है. यह पहला मौका है, जब दीवाली आ जाने के बाद भी खेत बिना जुते-बोये पड़े हैं, अन्यथा जब बंटवारा नहीं हुआ था, सारे के सारे खेत दीवाली तक जुत और बो जाते थे. बापू को एक मेड़ पर बिठाकर शंकर अपने खेत देखने चला गया और बापू बड़के-मंझले के खेतों में चलते हलों को टुकुर-टुकुर देखते रहे. अपने खेतों में घूम-फिर कर शंकर लौट आया तो बापू अपने हिस्से के चक की तरफ डगर चले.

* *

बड़े चक और बापू के हिस्से के चक के बीच राजा ठाकुर का चक पड़ता है. ठाकुर के चक के कुछ खेत पहले बापू के थे, लेकिन अच्छे होने के कारण चकबंदी में राजा ठाकुर ने उन्हें अपने चक में करवा लिया और बाप के चक को ऊसर की ओर खिसकवा दिया. ठाकुर के पास बहुत खेती है, उसका अपना टेक्टर है, मड़ाई मशीन है, उड़ाई मशीन है, ट्यूब वेल है, किसिम-किसिम के हल और औजार हैं, जिनसे राजा ठाकुर के सारे काम पलक झपकते हो जाते हैं. जब बापू वहां से गुजरे तो राजा ठाकुर चारपाई पर बैठे सुपारी कतर रहे थे. बापू ने उनसे राम-राम की. राजा ठाकुर ने बापू से कहा :

—आव-आव, बइठौ माधौ भाई! कई दिनन मां दिखानेव.

—हां ठाकुर? अब चले नाइं चुकत है. हाथ-पांव जवाब दई गे हैं.

—हां-हां! बुढापा मां तौ अइसै होत है.

—अउर का हाल-चाल हैं ठाकुर!

—सब ठीकै है. तुम आ गेव, नाही तौ अबहिन हम तुम्हरे घरै खुद अवइंया रहन.

ठाकुर की बातें सुनते हुए बापू चारपाई पर बैठ गये. ट्यूब वेल चल रहा था. आलू सिंच रही थीं. दूर खेत से नौकर ने फावड़ा भेज देने की आवाज लगाई तो ठाकुर ने शंकर से फावड़ा दे आने को कहा. फावड़ा लेकर शंकर चला गया. बापू और ठाकुर आपस में बातें करने लगे. शंकर जब लौटकर आया तो दोनों आदमी विचारमग्न थे. शंकर के आते ही बापू उठ खड़े हुये और ठाकुर से कहा—संझा लग सोचि कै बतइबै, और फिर ठाकुर से राम-राम कर अपने चक

की ओर चल दिये. उनके पैर तो जमीन पर चल रहे थे, किंतु मस्तिष्क विगत जीवन की अंधेरी गुफाओं में भटक रहा था.

तब राज था अंग्रेजों का और गांव के जमींदार थे ठाकुर के बाप. बाप की शादी हुई ही थी. ओला आ गया तो खरीफ की फसल चौपट हो गयी. और फिर सूखे ने रबी की फसल को खा लिया तो छोटे-मोटे किसानों की रही-सही कमर भी टूट गयी. बापू भी दाने-दाने को तबाह हो गये. लगान न दे पाने की वजह से उनकी खेती बेदखल करवा दी गयी. बापू किसान से मजदूर हो गये और तीन आने रोज की मजूरी पर शिवपुर के चंपत ठाकुर की मदत में जाने लगे. तभी उन्हें चंपत ठाकुर का खोया हुआ बैग मिला, जिसमें चांदी के कुछ रुपये और कुछ जरूरी कागजात थे, उस बैग को बापू ने ज्यों का त्यों उन्हें दे दिया. बापू की इस ईमानदारी से चंपत ठाकुर इतने खुश हुए कि कुछ मांग लेने को कहा. चंपत ठाकुर बहुत बड़े जमींदार थे. बापू के कहने पर उन्होंने बेदखल खेत वापस दिलवा दिये और बापू फिर मजदूर से किसान हो गये. और तब बड़के तथा मंझले पैदा हुये.

बापू ने बड़के और मंझले को पढ़ाने की बहुत कोशिश की, किंतु वे पढ़ नहीं सके. तब बापू ने उन्हें भी खेती में जुटाया. बापू के साथ बड़के और मंझले का भी खून-पसीना पाकर खेती सचमुच सोना उगलने लगी. पहले से ड्योढ़ा-दूना पैदा होने लगा और गेहूं नौ छटांक तक के भाव में बिक गया और बापू के पास नोटों की गड्डियां ही गड्डियां हो गयीं. तब अम्मा ने बापू से घर की शिकायत की. बापू ने कानपुर से कोयला मंगवाया और अपने खेत में ईंटें पथवा कर पचास हजार ईंटों का भट्ठा लगवा दिया और भट्ठा खुलने पर पीछे से घर की पक्की नींव डाल दी. वर्ष के बाद वर्ष गुजरे और दीवालों पर दीवालें बनती गयीं. तीन तरफ से पक्का घर बनकर तयार हो गया. सिर्फ पूरब का हिस्सा और आगे के कमरे-बरामदे रह गये.

अब तक बड़के और मंझले के दो-दो, तीन-तीन बच्चे हो चुके थे. पढ़ाई के कारण शंकर ने शादी नहीं की. बाप सबको समान रूप से कपड़ा-लत्ता देते, खर्चा-पानी देते, सबको खुश रखते. न लड़ाई, न झगड़ा. बापू अपने भरे-पूरे परिवार से खुश थे. बच्चों को गोद में लिये अम्मा घूमा करतीं. ऊपर का सारा काम-काज बहुएं संभालतीं.

इस बीच मंझले की दोस्ती राजा ठाकुर से हो गयी थी. राजा ठाकुर और मंझले की उम्र में दस-बारह बरस का अंतर था, फिर भी दोस्ती, दोस्ती ह, किसी से भी हो सकती है. और राजा ठाकुर की मंझले से यह दोस्ती पान-बीड़ी से बढ़ कर देशी और अंग्रेजी शराब तक पहुंच गयी. पहले तो पिला-पिला कर मंझले को आदी बनाया गया और फिर पिलाना कम कर दिया गया. तब मंझले बापू से कुछ अधिक खर्चे की मांग करने लगे और जब यह सीमा काफी आगे बढ़ गयी तो बड़के ने बापू को समझाया कि शराब के लिए मंझले को इस तरह इतने अधिक पैसे मत दीजिये. मंझले की शराब की सीमा अगर ऐसे ही बढ़ती रही तो एक दिन यह घर बरबाद हो जायगा. शराब जिस घर में भी प्रवेश करती है, उस घर को बरबाद किये बगैर नहीं छोड़ती. अगली बार पैसा देने से बापू ने कतई-कतई इनकार कर दिया.

बापू की इनकार से मंझले अकड़ गये और बापू की कोठरी से उनका बक्सा उठा कर ताला तोड़ने लगे. बड़के यह चुपचाप देखते रहे. बापू ने दौड़कर अपना बक्सा छीनना चाहा, पर मंझले ने उन्हें धक्का दे दिया. धक्के से बापू पलट कर गिर पड़े. बापू को गिरता देखकर बड़के अपने को रोक नहीं सके. उठकर खड़े हो गये और आव देखा न ताव, तड़ा तड़ तड़ मंझले की कनपटी पर कई झापड़ एक साथ लगा दिये और बक्सा छीन-कर बापू को सौंप दिया. खुनियायी आंखों से मंझले ने बड़के को देखा और अपने को उन्नीस पाकर बंटवारा करवा लेने की धमकी दे कर घर से बाहर निकल गये.

उसी दिन मंझले का चूल्हा अलग जल गया. बाद में बापू ने जीतोड़ कोशिश की कि बिगड़ी बात किसी तरह से बन जाय. बापू की कोशिश सफल हो जाती, अगर तीसरे आदमी के रूप में ठाकुर दखल-दाजी न करते. जानबूझ कर ठाकुर ने बंटवारे की पक्की जमीन तैयार कर दी. कहने को ठाकुर की जमींदारी चली गयी है, पर उनका प्रभाव और दबदबा तो पहले जैसा ही है, उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है! बड़के बंटवारे के पक्ष में कतई नहीं थे, इसके लिए वे राजा ठाकुर से भी भिड़ने तक को तैयार थे.

बड़के ने बापू से कहा कि आप बंटवारा कतई न कीजिये. मंझले को घर से निकाल दीजिये, घर से निकलते ही उसका नशा हिरन हो जायगा. लेकिन बापू तो बापू थे, मंझले को घर से कैसे निकालते और मंझले, राजा ठाकुर के दोस्त थे और बंटवारा न करने पर राजा ठाकुर क्या-क्या कर सकते थे, बापू को मालूम था और बापू ने बंट-वारा कर दिया. बड़के ने इसे अपनी पराजय के तई लिया और बापू से कट गये. इतना कट गये कि अब

और वही ठाकुर आज एक नयी मुद्रा में नये तेवर के साथ बापू के सामने थे. ठाकुर यह पैंतरा बापू को अंदर तक छील गया. उनका मन किया कि ठाकुर की नाक पर हनक कर घूंसा मार दें और सभी झंझटों से पार हो जायं. राजा ठाकुर ने जो सवाल आज उनसे किया, उसका कोई जवाब बापू से देते न बना और संझा तक सोच कर जवाब देने की बात कहकर शंकर के साथ अपने चक की ओर बढ़ गये. अपने खेतों की मेंड़ पर पहुंच कर बापू रुक गये. खेतों की ललछौंह धीरे-धीरे पिलछौंह में बदल रही थी. खेतों के पिल-छौंहपन को उन्होंने बेबस नजरों से देखा और फिर आसमान को ताकने लगे, शायद उनका आस्तिक मन भगवान की ओर निहार रहा था

और फिर बापू लौट पड़े. खरामा-खरामा चलते हुये शंकर के कंधे और लाठी के सहारे बापू घर

आ गये और चारपाई पर लेट गये. तभी सामनेवाली दीवाल से बिल्ली ने एक ईंट गिरा दी. गिरा क्या दी, उसके निकलने से गिर गयी तो बापू को लगा कि दीवाल से ईंट नहीं, उनका कोई अंग कट कर गिरा है और ईंट का यह टुकड़ा जमीन पर नहीं, उनकी छाती पर गिरा है. शंकर की समझ में न आया कि बापू आज इतने उदास और व्याकुल क्यों हैं. आज तो दीवाली है.

★ ★

बंटवारे के बाद यह पहली दीवाली है. पिछले साल बापू ठीक थे. तमाम गट्टे-खिलौने आये थे, और आये थे गगरा भर फूल और खील. पिछले कई साल से दीवाली की दियालियां शंकर ही जलाता आया है. उससे पहले बड़के जलाते थे और बड़के से पहले बापू. जब शंकर जूनियर में फस्ट आया तो उस साल की दीवाली में ऐन टाइम पर बड़के को न जाने क्या सूझी कि उन्होंने शंकर को बुला कर दीवाली की दियालियां जलाने को कह दिया. बड़के की बात सुनकर शंकर की आंखें मंझले को तलाशने लगीं. उसकी समझ में न आया कि बड़के यह दायित्व उसे क्यों सौंपना चाहते हैं. तभी नशे में धुत्त मंझले आ गये थे, झूमते हुये, गलगलाते और कुछ बकते हुए. दियालियों से हटकर सबकी नजरें मंझले पर टिक गयी थीं. बापू का चेहरा तमतमा आया था और अम्मा की जबान छुरी बन गयी थी, वे बकने लगी थीं--न ठिअऊ मरी कटउनूं, आजौ इयो माहुरु पी आयेव. अम्मा न जाने क्या-क्या और बकतीं, पर बापू ने उन्हें डांट कर चुप करा दिया. मंझले को पकड़ कर मंझली कोठरी में ले गयी और फिर बिना किसी खास हंगामें के सब कुछ शांत हो गया.

अम्मा, बापू, बड़के, बड़की, मंझली तथा लड़के-बच्चे शंकर को घेर कर बैठ गये थे. उसने दियालियों में परई से तेल डाला और उनमें बात्तियां रख दीं. और फिर उसके हाथों में पहली बार दीवाली की दियालियां जगमगा उठी थीं. आग पर घी डालकर उसने थोड़ी-सी मिठाई रख दी और कुछ गट्टे तथा खिलौने फोड़ दिये, दियालियों पर दो मुट्ठी खील बिखेर दी. लोटे का पानी सात बार अंजुलि में भर कर दियालियों के चारों ओर फेर कर आचमन किया और धरती के पैर छू लिये. यह सब करते हुये शंकर को बहुद-बहुत अच्छा लगा था. पूरा घर दीवाली की रोशनी से जगमगा उठा. दियालियों रख जाने के बाद शंकर ने भर-भर मूठा खील और खिलौने सबको बांट दिये. खील-खिलौने खा चुकने के बाद उसने परात से काट-काटकर सबको मिठाई दी. सबने छक-छक कर खायी. तब तक बड़के भी खेतों में दियालियां जलाकर लौट आये थे. बड़के ने मंझले को उठाना चाहा, पर वे उठे नहीं, शायद कुछ ज्यादा पी गये थे. तब फिर बड़के और शंकर ने साथ बैठकर मिठाई खाई. मंझले का हिस्सा सुबह के लिए रख दिया गया. जिंदगी में पहली बार दियालियां जलाते, खील-गट्टा और मिठाई बांटते हुये शंकर को एक प्रकार के गर्व की अनुभूति हुई थी और सुख का अहसास भी.

और इस बार की दीवाली, दीवाली नहीं, कुछ और लगती है. एक दीवाली वह थी और एक दीवाली यह है. आंगन में बैठे बापू यह सब टुकुर-टुकुर देख रहे हैं--घर के एक कोने में बड़के के बीवी-बच्चे तथा दूसरे कोने में मंझले के बीवी-बच्चे पानी में भीगी हुई दियालियां निकाल कर पड़ोर से लिपी जगह में रख रहे हैं, शंकर भी एक कोने में पड़ोर कटकर दियालियां रखने की जगह बना रहे हैं. जब जगह बन गयी तो पानी से निकाल कर अम्मा ने दियालियां रख दीं. तभी अचानक बापू ने बड़के और मंझले को आवाज दी. आवाज सुनकर वे बापू के पास आ गये तो बापू ने उनसे पूछा--हमारे हिस्सा के खेतवा जुतिहौ?

--हां-हां! दइ देव.

बड़के और मंझले ने एक साथ जवाब दिया तो बापू ने अपनी शर्त रखी.

--लेकिन रुपया परिहै.

--कित्ते?

--एक हजार .

रुपयों की बात आते ही बड़के-मंझले बगलें झांकने लगे. तब बापू ने फिर पूछा.

--कउनव जवाबु नाइं दीन्हिव कोऊ?

--ई मंदी मां हमारे पास इत्ते रुपया कहां ते होइहै?

कहकर दोनों जने चुप हो गये और थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद उठ-उठ कर अपने-अपने बीवी-बच्चों के पास खिसक गये, तो बापू को लगा कि युद्ध के मैदान में वे निहत्थे हो गये हैं. लड़के ही तो बाप के हथियार होते हैं. उनकी नजरें सामनेवाली अधूरी दीवाल पर टिक गयी. वे सोचते लगे कि उनके [illegible] में लोना लग गया है. अलग-अलग रहकर तो सिर्फ लोने को अपना घर खाते हुये बेबस और लाचार आंखों से देखा जा सकता है. बस, और किया ही क्या जा सकता है, सोचते हुए बापू ने देखा कि बड़के और मंझले अपनी अपनी दियालियां जल रहे हैं. तब शंकर की ओर मुखातिब होकर उन्होंने कहा --तुमहूं अपनी दियाली जलाव शंकर!

--नाहीं बापू! आजु तुम जलाव.

शंकर की जिद पर बापू तैयार हो गये तो उसने जल्दी-जल्दी सारा सामान बखरी में इकट्ठा किया. डेलवा में खील-गट्टे और फूले-खिलौने रखे. अगियारी के लिए घी और मिठाई रखी. बिरौसिया से निकालकर आग रख दी और दियालियों में तेल डालकर बातियां भी. तब तक अम्मा लोटे में जल ले आयीं. बापू ने अपने बेकार वाले हाथ में माचिस ले ली. आज न जाने कहां से उनके उस हाथ में इतनी ताकत आ गयी थी कि उससे पकड़ कर दूसरे हाथ से माचिस घिस दी. फुर्र की आवाज करती हुई तीली जली तो बापू ने उसे एक दियाली की बाती की तरफ बढ़ाया. इसके पहले कि

बाती जल उठे, तीली बुझ गयी. बापू ने दूसरी तीली निकाल ली. हाथ उठा कर जलाने जा ही रहे थे कि जूतों की चरमराहट हुई और उनका हाथ जहां का तहां रुक गया. नजर अपने-आप दरवाजे पर चली गयी. राजा ठाकुर आये थे. खटिया पर बैठते हुए ठाकुर बोले —तनुक जल्दी मा हन, बैठिबे नाइं. अउर माधौ भाई! सब सोचि-समुझि लीन्हिव कि नाहीं?

....

—का हो माधौ भाई! बोलतेव काहे नाइं?

—ठाकुर! अबहिनै आप जाव. साल भर क्यार त्योहारु है, जानै पारसाल लग जिंदा रहिबे कि मरि जइबे. राति भरे केरि मोहलत अउर देव. सबेरे लग बता देबे.

—द्याखौ माधौ भाई! अइसे टारैं ते काम न चली. कहत हौ तौ हम जात हन, मुला सबेरे पांच बजे लग सब सोचि-समुझि लेहेव.

कहकर राजा ठाकुर चल दिये और बापू उन्हें जाते हुये निर्निमेष देखते रहे. थोड़ी देर में जब ध्यान आया तो फिर तीली घिसने की कोशिश करने लगे, लेकिन उनकी हर कोशिश असफल रही. उनका हाथ फिर निर्जीव हो गया. माचिस शंकर की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा —लेव, अब तुमही जलाव, हमरे बस क्यार अब कुछु नाइं रहो. अब तौ सब कुछ तुमहीं का ख्यालै का है, कहते-कहते बापू की सांस तेज हो गयी. बापू के इन शब्दों में निहित अर्थ को शंकर झेल नहीं पाया. उसकी चेतना पर एक हथौड़ा-सा पड़ा. बापू की आंखें छलक आयी थीं, शंकर भी अपने आंसू रोक नहीं सका. बापू की यह असमर्थता उसकी अपनी असमर्थता भी तो थी. वह घर को संभाले, कालेज देखे या खेती की चिंता करे. एम. यस-सी. करके कालेज में प्राध्यापक बनने के अपने सपने के आगे उसने अम्मा और बापू की अंतिम अभिलाषा तक को ठुकरा दिया और शादी नहीं की, अन्यथा अपने आगे ही बाप, शंकर का घर भी बसा देना चाहते हैं. अचानक जब बापू बहुत बीमार हो गये तो ठाकुर से कर्ज लेकर अपने कानपुर में बापू का इलाज करवाया. तमाम रुपया खर्च हो जाने पर डाक्टर ने कह दिया कि अब इनका इलाज करवाना बेकार है. इन्हें घर ले जाओ और जो दवायें लिख दी हैं, पिलाते रहना. डाक्टर की यह बात सुनकर शंकर सिहर उठा था.

बापू के हाथ से माचिस लेकर उसने चुपचाप दियालियां जलाईं और घर-आंगन में रख आया. दियालियों की रोशनी से पूरा घर जगमगा उठा था, फिर भी शंकर को लग रहा था कि दीवाली के इन चिरागों के रोशन होने के बावजूद हमारे सबके दिलों में कहीं न कहीं बहुत घना अंधेरा है, जिसे कोई चिराग नहीं मिटा सकता. दीवाली की ये जलती हुई दियालियां रात के अंधेरे को तो खत्म कर सकती हैं, पर हमारे दिलों के अंधेरों को कौन दूर करेगा? कैसे दूर होंगे दिलों के ये खौफनाक अंधेरे, जिन्होंने रिश्तों की चमक तक को लील लिया है? शंकर एक डेलवा में कुछ दियालियां, बातियां, माचिस और तेल की गरैया रख कर खेत-खलिहान की चल दिया.

* *

चारों तरफ से जागौऽऽऽऽ धरती माता जागौऽऽऽऽऽ की आवाजें आ रही थीं. दूर-दूर तक चारों तरफ जलती हुई दियालियों की रोशनियों से दसो दिशायें जगमगा उठी थीं. काली अंधेरी रात में आकाश में झिलमिलाते तारों की मानिंद झिलमिलाती ये धरती की रोशनियां शंकर को बेहद-बेहद भली लगती हैं. यह पहला ही मौका है, जब शंकर को खेत-खलिहान में दियालियां जलाने जाना पड़ रहा है. पहले तो बड़के ही जाया करते थे.

हाथ में डेलवा लिये शंकर अपने खेतों की तरफ बढ़ा जा रहा था. कुछ लोग अपने-अपने खेतों पर ऊंचे स्वर में दिवारी गा रहे थे और कुछ लोग बड़ी तेज आवाज में धरती माता को जगा रहे थे——जागौऽऽऽऽऽधरती माता जागौऽऽऽऽऽ. अपने खेतों पर पहुंच कर शंकर ने भी तेज आवाज लगायी—–जागौऽऽऽ धरती माता जागौऽऽऽऽऽ. पूरी कोशिश के बावजद शंकर को लगा कि उसकी यह आवाज पूरी की पूरी उभरी नहीं. कहीं बीच में ही दब कर रह गयी है.

बड़के और मंझले अपने खेतों में दियालियां रख कर चले गये थे. शंकर ने उनके खेतों में जलती हुई दियालियां देखी और फिर उसका ध्यान बड़के के हिस्से में स्थित कुयें पर चला गया. वहां पर कोई दियाली नहीं जल रही थीं फिर उसने मझले के हिस्से में स्थित महुये के पेड़ को निहारा. उसके नीचे एक दियाली जल रही थी. अपने खेतों और आम के पेड़ में दियालियां जलाने के बाद शंकर कुयें की ओर बढ़ गया.

पहले ढेर सारे महुये होते थे, सबके काम आते थे और अब महुओं का उपयोग सिर्फ मंझले कर सकते हैं, क्योंकि महुआ मंझले के हिस्से में है. बापू ने कुयें में बोरिंग करवाने की बात सोची थी. बोरिंग हो जाती तो सबके खेत सिंचते और अब बोरिंग तो दूर, बड़के रहट या पिपिया लगवाने की स्थिति में भी नहीं हैं, हों भी तो सिर्फ उनके खेत ही सिंच सकते हैं. शंकर के हिस्से के आम से सब लोग आम खाते, लेकिन अब कोई किसी के हिस्से की चीज नहीं खा सकता. अब तो सबका अलग-अलग अपना आकाश हो गया है, उस आकाश के अलग-अलग रंग हैं. पहले घर एक सतरंगी इंद्रधनुष हुआ करता था और अब तो घर के काले, भूरे या सफेद बादलों की मानिंद बिखरे हुये टुकड़े भर रह गये हैं. और बिखरे हुये टुकड़ों से भला कभी इंद्रधनुष की छवि प्राप्त होती है? हमारे घर की भी तो कोई छवि नहीं रह गयी है, सोचता हुआ शंकर बड़के के कुयें की जगत पर एक दियाली जलाकर बापू के चक पर पहुंच गया और वहां पर दियालियां जलाने के बाद चुपचाप घर लौट आया. रात में सोते समय उसने बापू से पूछा

—राजा ठाकुर का पूछन आये रहैं, बापू !

—अपने करजा के बदल मां हमारे हिस्सा के खेतवन क्यार सउदा.

—कईस सउदा ?

—सबेरे जब तुम्हारे साथै खेतवन पर गे रहन, अउर तुम फरुहा देन चलेगे रहन, तब हम अउर ठाकुर बतात रहे रहन. ठाकुर बतावत रहैं कि सब मिलाय कै हमरे ऊपर उनके एक हजार ते ज्यादा हुई गे हैं, तउनै वह उनके रुपया देन, चहैं उनके नाम एक बिगहा का बइनामा करि देन, चहैं तीनिव बिगहा पांच साल खातिर ज्वातन-बवन का दइ देन. तउनै उनते हम कहते रहै कि संझा लग सोचि-समझि कै बतइबे. उहै पूछन आये रहैं.

—तौं तुम का सोंचो हऊ?

—हम का सोंचि सकत हन, कोउ का सोंचि सकत है? एक हजार रुपया दइ नाइं सकत हन. एक हजार के बदले मां तीन हजार के एक बिगहा का बइनामा कइस करि देन. पांच साल खातिर तीनिव बिगहा दई देबे तौ खइबे का? सोंचो रहै कि एक हजार दइ कै बड़के या मंझले लइ लेत. कम से कम घर केरि चीज घर मां रहति, लेकिन का करब, हमार तौ हाथै-पांव कटिगे हैं. हमरे काहे, तुम्हारौ सब के तौ कटिगे हैं हाथ-पांव, कोऊ कुछु करि सकत हौ, ठाकुर के खिलाफ ठाढ़ हुई सकत हौ? नाइं ठाढ़ हुई सकत हौ, काहे कि सब कोऊ अलग-अलग हौ फिरिउ, हम ठाकुर का अइस कर न नदेबे, चाहौ कुछ होइ जाय.

कहते-कहते बापू की आवाज तेज हो गयी थी मानों ठाकुर के खिलाफ एक दृढ़ संकल्प उन्होंने ले लिया था, कोई विकल्प उन्होंने सोच लिया था. कौन-सा विकल्प उन्होंने सोचा है, यह पूछने की हिम्मत शंकर को नही हुई और फिर कोठरी में नीरवता व्याप गयी. इसके बाद रात में कब, कौन सोया, कोई नहीं जान सका. सबेरे गजरदम कुंडी की खड़खड़ाहट से शंकर की आंख खुली और उसके साथ अम्मा की भी. भर-भर भर्र, भर-भर भर्र बाहर दरवाज पर ठाकुर का टक्टर भराभरा रहा था. अम्मा ने उठ कर किवाड़ खोला तो राजा ठाकुर अंदर आ गये और बापू को आवाज दी—का हो माधौ भाई ! सब सोचि-समझि लीन्हिव कि नाहीं?

बाबू शायद अभी तक जागे नहीं थे. शंकर ने उनके मुंह से रजाई हटाई, पर बापू हिले तक नहीं. उसने उनका हाथ पकड़ा, वह ठंडा था, लोहे की मानिंद. उसने उनकी नाक के आगे हाथ किया तो बापू की सांस भी शेष नहीं थी. और ठाकुर को शायद देर हो रही थी, आंगन से ही उन्होंने बापू को फिर से आवाज दी.

—बतउतेव काहे नाइं माधौ भाई ! का सोचो हऊ? □□□

१०-१०८ खलासी लाइन,
कानपुर –२०८००१

लघुकथा

अदृश्य भय, अदृश्य शक्ति

एक नगर में एक राजा रहता था. उसकी पुत्री अत्यंत रूपवती थी. उसके रूप की चर्चा सुनकर एक राक्षस प्रतिदिन सायं उसके पास आया करता और उसे भगा ले जाने की तरकीब सोचा करता. किंतु राजकुमारी ने अपने चारों ओर एक ऐसा जादुई घेरा खींचा हुआ था कि राक्षस उससे छेड़खानी करने के बावजूद अपने प्रयास में सफल नहीं हो पा रहा था.

एक दिन राक्षस ने अपना असली रूप प्रकट किया तो राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा—देख, यही है वह राक्षस जो रोज सायंकाल यहां आकर मुझे सताया करता है!

राक्षस ने यह सुना तो सोचा, हो न हो, यहां कोई आदमी आता है. क्यों न मैं एक घोड़े का रूप धर कर उसकी शक्ति का पता लगाऊं?

उसके ऐसा करने पर आधी रात के समय घोड़ों का एक चोर महल में आया. उसने सभी घोड़ों को देख लेने के बाद राक्षस-घोड़े को सर्वोत्तम पाया. उसने उसके मुंह में लगाम लगायी और उसे ले चला. इस पर राक्षस ने सोचा, हो न हो, यही वह मनुष्य है, यह मुझे मार डालना चाहता है. अब मैं क्या करूं?

वह ऐसा सोच ही रहा था कि घोड़ा-चोर ने उसे एक जोर का चाबुक लगाया. अब तो राक्षस-घोड़ा डर के मारे उड़ चला. कुछ दूर जाने पर घोड़ा-चोर ने लगाम खींची किंतु राक्षस-घोड़ा बेतहाशा भागता ही रहा. इस पर घोड़ा-चोर भी डर गया कि कहीं यह कोई राक्षस न हो.

कुछ दूर दौड़ने पर राक्षस-घोड़ा एक बरगद के नीचे से गुजरा. फिर क्या था, घोड़ा-चोर ने एक डाली पकड़ ली और इस पर दोनों ने एक-दूसरे से जान छूटने पर चैन की सांस ली.

बरगद के पेड़ पर ही एक बंदर रहता था जो राक्षस का मित्र था. उसने उसे भागते देख कर कहा—तुम एक अदृश्य भय से क्यों भाग रहे हो? यह तो एक मनुष्य है, तुम्हारा आहार!

यह सुनते ही राक्षस अपने असली रूप में प्रकट हो गया किंतु वह उलझन में पड़ गया. जब चोर ने बंदर को उसे वापस बुलाते सुना तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ. उसने डाल पर बैठे बंदर की लटकती हुई पूंछ को दांत से जोर से पकड़ कर उसे काटना शुरू कर दिया. बंदर ने समझा कि वह राक्षस से भी बलवान है अतएव भय के आंखें मूंद कर पीड़ा सहता रहा.

इस पर राक्षस ने उसकी यह दशा देख कर कहा—मित्र बंदर, जीवित वही रहता है. जो दौड़ में जीत जाता है. □□□

फिर दुनिया में

•सीतेश आलोक

मेमो-नाइन लेने के बाद से उसे बासठ साल पहले की ही नहीं, उससे भी पहले की हर घटना कल की ही बात लग रही थी. फिर भी, वह एक अजीब-सी उलझन महसूस कर रहा था.

बाहर आते ही पहली बात जो उसे अजीब लगी, वह थी सड़कों का सूनापन. इतनी सूनी सड़कें तो उसने बर्फीली रातों में भी शायद ही देखी हों. सड़कें चौड़ी थीं लेकिन उन पर चलनेवाले उंगलियों पर गिने जा सकते थे और वे भी दूर से एक जैसे पुतलों की तरह ही लग रहे थे. सब के बदन पर लगभग एक जैसा ही 'कन्कोट' था. हां, सर के हेल्मेट अलग रंगों के थे.

उसने गर्दन जहां तक हो सका, झुका कर अपने आप को देखने की कोशिश की, लेकिन अपने को देखना उतना आसान नहीं था. उसे मान लेना पड़ा कि वह भी वैसा ही पुतला-सा लग रहा होगा जैसे कि उसने सड़कों पर देखे थे. कोट में उसे एक हल्कापन तो लग रहा था... न सर्दी न गर्मी, बहती हुई हवा का अहसास. लेकिन वह सर से पांव तक ढंके होने की बात से समझौता नहीं कर पा रहा था. 'कन्कोट' की मशीन की धीमी-सी घरघराहट के लिए भी उसके कान अभी आदी नहीं हो पाए थे. उसे बताया गया था कि इसके लिए कम से कम दो सप्ताह तो लगेंगे ही.

कुछ और पास आने पर उसे लगा कि सड़क पर बेशुमार साये दौड़ रहे हैं, बिना आवाज... जैसे अनदेखे भूतों के साये. उसे दहशत-सी हुई और अनजाने ही उसकी निगाह ऊपर उठ गयी. ऊपर... बहुत ऊपर... तार के जाले से बिछे थे. और उनके सहारे कई तरह के डिब्बे, कुछ छोटे, कुछ बड़े, और कुछ लंबी गाड़ियों जैसे दौड़ रहे थे. सूरज कभी निकलता था तो कभी छिप जाता था. उसी के साथ-साथ साये सड़क पर दौड़ते हुए दिखाई देने लगते थे या गायब हो जाते थे. उसका मन हुआ कि वह यह दृश्य हेल्मेट उतार कर देखे, लेकिन उसे आवाज बंद कमरों के बाहर ऐसा करने से मना किया गया था. बिना आवाज... शायद उसका कारण यह हेल्मेट ही हो. 'रोप वे...' उसने सोचा. इसलिए ये सड़कें सूनी हैं. उसने फिर सिर उठा कर देखा. अलग-अलग ऊंचाइयों पर अलग-अलग तार के जाले थे और उन पर अलग-अलग प्रकार के डिब्बे लटके हुए दौड़ रहे थे. वह फिर चल पड़ा.

बस एक ही जगह थी जहां वह जा सकता था. उसके बताए सभी नामों में से एक ही व्यक्ति ऐसा था, बिली, जो अब तक जिंदा था. जिंदा... लेकिन अब तो शायद वह अस्सी बरस के करीब का होगा. पहचानेगा भी या नहीं? उसे शक था. बासठ साल पहले जब बिली उसे देखने आया था तब वह नौजवान था... अठारह बीस साल का ही रहा होगा, और स्वयं वह, हां—उसकी उम्र उस समय पचपन ही तो थी. आ... अंतिम दिनों की याद उसे अजीब बेचैन बनाने ल... मौत की मंडराती साया में सांसों के 'काउन्ट डाउ...' वाला वातावरण जैसे उसे फिर घेरने लगा.

उसे कुछ देर लगी अपने को आश्वस्त करने में यह यकीन दिलाने में कि वह भोगी हुई घड़ी स... भले ही हो... लेकिन यह भी सच है कि वह जिंदा है... शायद बहुत दिनों के लिए जिंदा है. मौत का साया कहीं उसके पास नहीं है. वह कई साल जी सकता है, शायद बीस-पच्चीस साल और या शायद और भी ज्यादा. अब तो विज्ञान बहुत बढ़ चुका है. कम ही रोग हैं ऐसे, जिनका इलाज नहीं हो सकता. उसने सुना था कि अब प्राकृतिक मौतें बहुत कम हो चुकी हैं. मरनेवालों में अधिकांश लोग आत्महत्या ही करते हैं. कितनी बुरी बात है... वह बस इतना ही सोच पाया. क्या हो गया है लोगों को... हालांकि उसे पूरी तरह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि लोग भगवान की इस अनमोल सौ... को इस तरह खो भी सकते हैं. आत्महत्या पाप है—वह यही मानता रहा है. वह ही क्या, सब यही मानते रहे हैं. धार्मिक किताबों में भी यही कहा गया था.

—तुम्हारा पर्सनल नंबर क्या है...? उसे घूरता हुआ एक व्यक्ति उससे पूछ रहा था. वह काफी बूढ़ा था.

—पर्सनल नंबर...? ओह हां... कोई नहीं.

कम्प्यूटर ने यही बताया. उसे सवाल से कुछ घबराहट-सी हुई थी.

—ओह... तभी तो. डीप फ्रीज...?

—तुम्हें कैसे पता लगा? वह पूछ बैठा.

—तुम्हें नहीं मालूम? अक्सर डीप फ्रीज वालों को ही रिजेक्ट करता है कम्प्यूटर.

—उससे क्या होता है? उसने पूछा तो, यद्यपि रिजेक्ट होने की बात ही बुरी लगती है.

—उसको कोई दोस्त नहीं मिलता. नहीं, दोस्त तो वैसे भी नहीं मिलता... लेकिन कंप्यूटर रिजेक्ट कर दे तो बात करने वाला भी नहीं मिलता.

—क्यों? उसे कुछ अजीब बात लगी.

—देखना... लोगों के यहां पर... उसने सीने पर दाहिनी ओर ऊपर उंगली से दिखाते हुए कहा, तुम्हें एक नंबर दिखाई देगा. वह लोगों का पर्सनल नंबर होता है जो कंप्यूटर स्टडी के बाद उन्हें मिलता है.

—लेकिन क्यों...? आदमी के लिए क्या नाम काफी नहीं होता?

—नाम भी होता है. लेकिन नंबर देख कर दूसरा आदमी यह जान सकता है कि तुम बात करने लायक हो या नहीं उसने समझाते हुए कहा.

......

उसे सोचते देख कर वह बोला—कितने साल बाद जागे हो?

—बासठ साल.

—ओह. . .तभी तो . . .तुम्हारे समय में ब्लड ग्रुप होते होंगे? वह सोचते हुए बोला.

—एक आदमी को खून देते समय. . .

—हां-हां. . .वह बात काटते हुए बोला. बात उसकी समझ में आ रही थी.

—इसी तरह व्यक्ति के शौक, पढ़ाई, शरीर रचना, आयु और बहुत-सी बातों के आधार पर कंप्यूटर उसे पर्सनल नंबर देता है. यह भी बताता है कि किस नंबर वाले के साथ उसे बात करना चाहिए, किसके साथ नहीं. साल में एक बार यह टेस्ट होता है.

—नहीं तो क्या होगा. . .? उसने पूछा.

—नहीं तो बात करके उसे प्रसन्नता नहीं होगी. शायद लड़ाई भी हो. लोग यह खतरा लेते ही नहीं. . .

—लेकिन तुम मुझसे क्यों बात कर रहे हो? तुम्हारा नंबर क्या है.

—नहीं. . .मेरा भी कोई नंबर नहीं. मुझे भी कंप्यूटर ने रिजेक्ट कर दिया था.

—तो क्या तुम भी डीप. . .

—नहीं, नहीं मैं तो पुराने खयालों का हूं. . .कुछ ज्यादा ही पुराने ख्यालों का. बूढ़ा हो गया हूं. पहले मुझे नंबर मिलता था. धीरे-धीरे मैं अयोग्य होता गया. इधर बीस साल से कंप्यूटर मुझे रिजेक्ट करता रहा है. चौरासी साल का हूं लेकिन वक्त के साथ बदल नहीं पाया. कंप्यूटर मुझे बस 'कॉम्प्लक्स' बताता है. लोग मुझे पागल समझते हैं. शायद ज्यादा जी गया हूं. और कोई बात नहीं है.

—तुम्हारा और कौन है. . .? उसकी सहानुभूति बढ़ती है.

—कोई नहीं. दो साल पहले पत्नी अन्य व्यक्तियों की बेरुखी सहते-सहते सचमुच पागल हो गयी.

—और बच्चे!

—वे भी मुझे पागल समझते हैं. चार थे. . .शायद हैं. बात ये है कि लगभग बीस साल से दिखाई नहीं दिये. वह कुछ खो-सा जाता है, हां, अब तुम क्या करोगे?

—कुछ भी . मेरे हिसाब में तीन लाख डालर बचे थे. उसकी पास बुक मुझे दी गयी है. मैं कुछ काम करना चाहता हूं.

—सिर्फ तीन लाख . . .? क्या होगा इसमें ? बूढ़ी आवाज में. आश्चर्य भी था, व्यंग्य भी.

—क्यों? मैंने अपना पुराना काम तीन हजार में शुरू किया था.

—लेकिन अब तो तीन लाख शायद पुराने एक हजार के बराबर भी नहीं हैं.

उसे पूरा विश्वास तो नहीं हुआ लेकिन फिर भी एक चिंता ने घेर ही लिया.

—फिर भी . . .दुखी होने की बात नहीं. सरकारी बैंक से तुम्हें जीने भर के लिए कुछ मिल ही जाएगा. रिजेक्टेड लोगों के लिए एक निवास बना दिया है सरकार ने . खाने के लिए महीने भर की गोलियों का कोटा भी वहीं मिल जाता है.

—गोलियां. . .?

—हां. . .अब सब गोलियां ही खाते हैं. दिन में तीन बार .

—तुम गोलियां खाते हो, कोई तुमसे बात नहीं करता तो तुम समय कैसे बिताते हो. . .? वह अचरज से पूछता है.

—समय तो किसी का नहीं बीतता. नंबर वाले कम से कम एल. डी. खाकर छः-आठ घंटे बिता तो लेते हैं.

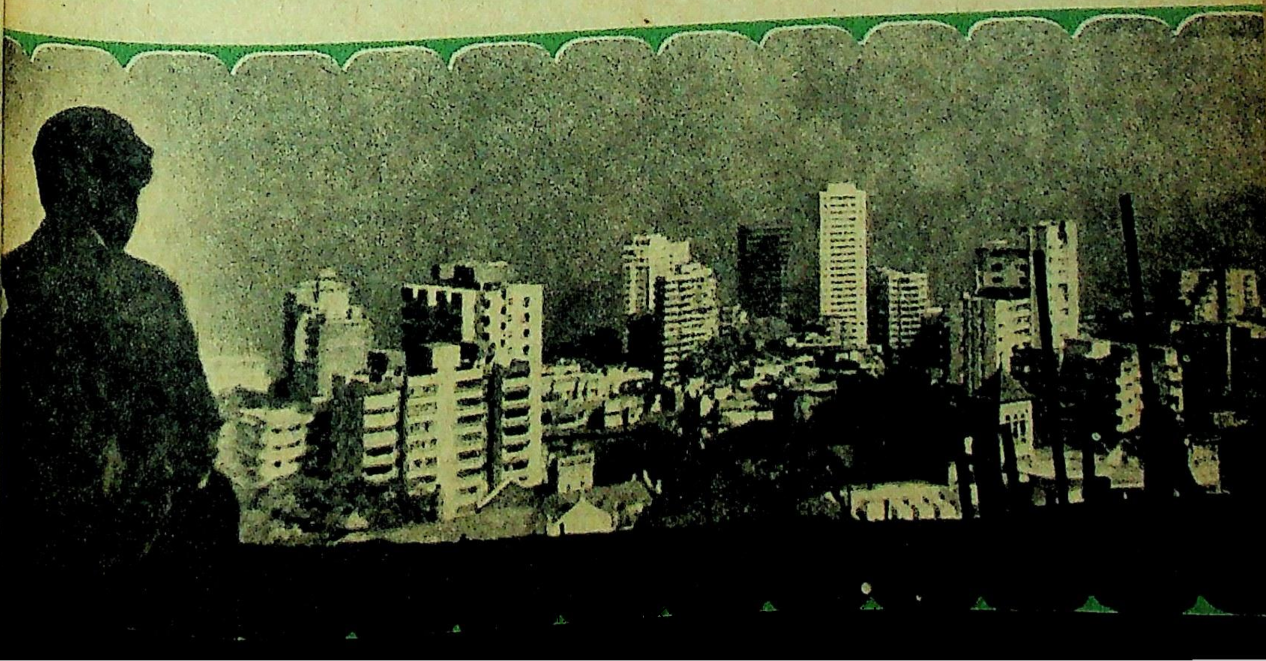
—एल. डी. . . .?

—एल. एस. डी. जैसी ही एक दवा है. हम लोग उसे नहीं खाते. हम लोग सो सकते हैं. आजकल के लोगों ने पहले तो चुंबकीय ढंग निकाला था जिससे आदमी दो घंटे में ही आठ घंटे की नींद पूरी कर लेता था. लेकिन बाद में अगली पीढ़ी ऐसी जन्मने लगी जो दो घंटे से ज्यादा सो नहीं पाती. ज्यादा से ज्यादा काम मशीनें करने लगी हैं. अब आज का आदमी सबसे ज्यादा खालीपन से डरता है, इसीलिए उसे एल. डी. बनानी पड़ी.

—तुम सब क्या करते हो. . .?

—मौत का इंतजार, उसने छूटते ही कहा.

● नरेंद्र एम. शाह



—मौत का. . .? मौत का इंतजार तो कायर करते हैं. जिंदगी इतनी सुंदर चीज है. . .तुम जीना क्यों नहीं चाहते ?

—पता नहीं . . .शायद इसलिए कि मौत हमसे दूर हो गयी है.

—तुम जरूर पागल हो. क्या तुम्हारे बाकी साथी भी मौत का इंतजार करते हैं ?

—हां. . .सब. उसने बिना संकोच उत्तर दिया. सब जीते-जीते बोर हो चुके हैं. सब मौत का इंतजार करते हैं.

—सब. . .? क्या वे भी जो डीप-फ्रीज से आए हैं? वह पूछता है.

—नहीं. . .ऐसा कोई हमारे बीच नहीं है.

—क्या ऐसा कोई तुम्हें नहीं मिला?

—मिला क्यों नहीं? कुछ तो ऐसे होते हैं जो दो-चार साल बाद ही डीप-फ्रीज से निकाल लिये जाते हैं. उन्हें कंप्यूटर रिजेक्ट नहीं करता. उन्हें साथी भी मिल जाते हैं और दुनिया का ढंग भी बुरा नहीं लगता. लेकिन तुम्हारी तरह. . .जो इतने बरसों बाद जागते हैं वे. . . वह कुछ अटकता है.

—वे. . .क्या कह रहे थे तुम ?

—कुछ खास नहीं. उन्हें ही कंप्यूटर रिजेक्ट करता है.

ऐसे किसी को तुम जानते हो ? . . .मैं मिलूंगा उनसे. हम मिल कर साथ रह सकते हैं.

ऐसा कोई तुम्हें नहीं मिलेगा, वह बताता है.

क्यों . . .?

—तुम्हें जानकर दुख होगा. . .बहुत पूछने पर भी वह कुछ नहीं बताता.

★ ★

वह पिछले दस दिनों में बहुत घूमा था. सभी कुछ तो बदल गया था. पहले कई दिन उसमें बच्चों जैसा उत्साह था—नयी-नयी बातें देखने का उल्लास था. लेकिन अब वह थकान महसूस कर रहा था. उसे बहुत कुछ मिला. . .बस, अपनापन नहीं मिला. कहीं कोई पास से निकलता तो लोगों की आंखें उसके सीने पर दाहिनी ओर कुछ ढूंढ़ती-सी लगतीं और दूसरे ही क्षण छिटक कर अलग हो जातीं. किसी के पास उसके लिए समय नहीं था. उसने कुछ लोगों से बात करने की भी कोशिश की लेकिन . . .

उसे बार-बार अपनी पत्नी की याद आती थी. काश उसके पास इतने डालर होते कि वह अपनी पत्नी के लिए भी कुछ इंतज़ाम कर सकता! फिर भी क्या जरूरी था कि दोनों का इलाज एक ही समय में संभव हो पाता? दोनों साथ ही आंखें खोल पाते? अब उसे पत्नी की आवश्यकता महसूस हो रही थी.

शादी . . .बिली ने बताया था कि अब कोई शादी नहीं करता. . .

नारी और पुरुष का भेद करीब-करीब मिट गया है. दोनों को एक दूसरे की जरूरत बस महीने में एक बार होती है. ऐसी दवाएं हैं जिनके प्रयोग से वे बड़ी आसानी से एक दूसरे के बिना महीने भर तक रह सकते हैं. सिर्फ कुछ घंटों का साथ न तो उन्हें भावुक बनाता है और न ही किसी प्रकार की ग्लानि उन्हें होती है. कंप्यूटर बताता है कि किसे किसके पास जाना है.

परिवार . . .बच्चे. . .कहीं कुछ नहीं. बच्चों से लोगों को घृणा है. एक बोझ. . .इक्कीसवीं सदी आते-आते आबादी इतनी बढ़ी थी कि लोगों को बच्चों में सिर्फ एक प्रतिद्वंद्वी की शक्ल दिखाई देने लगती थी. प्रतिद्वंद्वी जो उनके खाने में, उनकी जगह में, उनके हिस्से के हवा, पानी में, उनके समय में और गरज यह कि उनकी हर सुविधा में हिस्सा लगाने को बिना बुलाए आ गया है. बच्चोंवाले बुढ़ापे में अपने बच्चों को बेरोजगार, निराश और बुरी आदतों में फंसा देख कर रोते थे. संतान-हीन भाग्यवान समझा जाने लगा था. धीरे-धीरे विवाह से पहले ही लड़कियां आपरेशन कराने लगीं . . .और आबादी तेजी से कम होने लगी. तब सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा. दो बच्चे होने से पहले आपरेशन पर प्रतिबंध हो गया.

—लेकिन मां की ममता . . . उसने पूछा था.

—वह भी नहीं रही. परिवार बिना बच्चे का पोषण कैसा? कैसी ममता . . .? वैज्ञानिकों और डाक्टरों ने तरकीब न निकाली होती तो औरतें बगावत कर देतीं. सरकार कानून न बना पाती. अब सर्जरी से महीने भर के अंदर ही गर्भ निकाला जा सकता है और शेष समय उसका विकास प्रयोग-शाला में होता है. बच्चे सरकार पालती है.

उसे रह-रह कर सब कुछ बड़ा घिनौना-सा लगा था. वह किसी से बात करने के लिए बेचैन हो उठता था. गोलियों के स्वाद का वह अभी आदी नहीं हो पाया था. गिरजे बंद हो चुके थे. उनमें से ज्यादातर टूट गए थे और शेष में रिजेक्ट किये हुए लोग रहा करते थे.

अपने समय में उसे संगीत का शौक था. वह चित्रकारी भी करता था. उसने बजाने के लिए पियानो ढूंढ़ने की कोशिश की . . . चित्र बनाने के लिए रंगों की तलाश की . . .ब्रश चाहे. लेकिन हर बार उसे अलग-अलग आकार के अलग-अलग काम करने वाले कंप्यूटर दिखाए गए.

क्या करे . . . .? वह कहां जाए . . . ?

उसने डीप-फ्रीज हाउस के कंट्रोलर को फोन किया. कंट्रोलर विस्मय भरे स्वर में बोला—यह कैसे हो सकता है ? हम पर उनका ऋण है. हम वचनबद्ध हैं कि उनके रोग का निदान पाते ही हम उन्हें जिला देंगे.

—उन्हें सोते रहने दें तो उन पर सबसे बड़ा उपकार होगा.

उसने चोंगा रख दिया.

★ ★

उसकी लाश चिथड़े-चिथड़े हो गयी थी. सफाई करते हुए एक व्यक्ति ने कहा—इतनी ऊंचाई से कूदने की क्या जरूरत थी? क्या इसे पता नहीं था कि आत्महत्या पर कोई रोक नहीं है और मरनेवालों को मांगने पर इंसटैन्ट रिलीफ की गोलियां मुफ्त दी जाती हैं? □□□

के ४।१२ मॉडल टाउन, दिल्ली—९.

विमली

शांता वर्मा



वह मोची का अड्डा, उसको अड्डा ही कहना चाहिए, विमली के आने से काफी मशहूर हो गया था. विमली थी भी बड़ी चटपटी. पैंतीस साल की होते हुए भी सब बाइयों के बीच बिलकुल अलग लगती थी. गोरा शरीर, दुबली-पतली, मराठी साड़ी में उसका शरीर और भी कसा हुआ लगता था, बस पान-तंबाकू से उसके दांत हमेशा लाल रहते थे. इसीसे सब लोग पहचान लेते थे कि वह काम करने वाली घाटिन है. नहीं तो कभी चमकीले रंग की साड़ी में अच्छे घर की औरत लगती थी. और फिर कांतीलाल सेठ के घर काम करती थी, उसका उसको अलग ठसका था. कांतीलाल सेठ उस आठ माला बिल्डिंग में इक्यावन फ्लैटों में सबसे ठोस पैसे वाले व्यक्ति थे. उनकी दो औरतें थीं. दोनों औरतों के लिए सेठ ने अपने टैरस में अलग-अलग हिस्सा बनवा दिया था, पर विमली को बड़ी सिठानी ज्यादा पसंद थी. उसीसे वह अपना रोना-धोना गाती रहती थी.

और वह मोची का अड्डा, उसकी करीब रोज की बैठक वहीं रहती थी. वह मोची का अड्डा क्या, एक तरह से औरतों का सौदा पटाने वाली जगह थी. और मोची बड़े शांत ढंग से सबका निपटारा कर देता था. ऐसा लगता था, सभी बाइयों की तकलीफ वही मोची सुनता है, और गाडफादर बन कर चुपचाप सबको शतरंज के मोहरों की तरह बैठा देता था. शाम के समय जो रसिया लोग उसके पास आते थे, रात का सौदा चुपचाप पट जाता था. वह सब ऐसे सोफियाने तरीके से होता था कि बरसों से रह रहे लोगों को कानोंकान खबर तक नहीं होती थी. वह मोची हमेशा दयनीय लगता था और उसके पास बैठने वाली बाइयां शरीफ लगती थीं, इसीलिए विमली हमेशा सबको शरीफ, चटपटी, स्मार्ट, हमेशा खुश रहने वाली बाई लगती थी.

उस समय तक विमली ने कोई ऐसा वैसा कदम नहीं उठाया था, उसको बराबर अपने सेठ और उनकी इज्जत का ध्यान रहता था, या उसके मन में एक डर समा गया था. अपने पति की क्रूरता का डर, जब भी उसे याद आ जाता था, उसका मन सिहर उठता था.

दो साल पहले की रात, वह अभी तक नहीं भूली थी. कारण शायद उसका तीन साल का लड़का था, जिसको वह गुस्से में छोड़ आयी थी, अगर ले भी आती तो रखती भी कहां, कौन उसको नौकरी देता. अब तो वह आजद है पर जब कभी दुःख उसको सालता तो बड़ी बाई के पास जा कर बैठ जाती थी, और उनके पाव दबाने लगती थी, उसी बीच उसकी आंखें नम हो आती थीं और बोलती जाती थी.

——बड़ी सिठानी जी, क्या करूं, मुझे इस जनम में कहीं शांति मिलेगी नहीं. पता नहीं रमेशा इस समय क्या कर रहा होगा. उसको दूध कोई देता होगा. या चुपचाप सो जाता होगा. पहले जब भी मेरे पास आता था, मेरा पल्लू पकड़ कर तोतली-तोतली बोली में सिर्फ पांच पैसा मांगता था. अब की दीवाली पर वह पांच साल का हो जायेगा. वह निर्दयी मेरा मरद, सोच के गुस्सा आता है. अपनी कंपनी से जो क्रिश्चियन औरत पकड़ लाया था; उसीका गुलाम हो गया था. वह काली कलूटी को गिटपिट करना क्या आता है, खटिया के नीचे पांव तक नहीं रखती. मैं ही सारे दिन मरूं और कभी ऊंची आवाज में बोल दूं तो डंडों से धुनाई होने लगती थी!

यह किस्सा बड़ी सिठानी हजारों बार उससे सुन चुकी थीं, बस वह इतना ही समझा देती थीं कि——मेरी देखो, मैंने जिंदगी भर सेठ का सब कुछ किया, पैसा-पानी में अपने घर से इतना लायी थी, कि सेठ कंपनी के मालिक बने बैठे हैं. और मैं सिर्फ अपने बच्चों के खातिर यहां पड़ी हूं. तुमने देखा नहीं, कौन मुझे पूछता है. सभी जगह छोटी की चलती है. तुम तो फिर भी बाहर निकल कर अपना मन बहला सकती हो और मैं इन चहारदीवारी में बंद, किसी से कुछ कह भी नहीं सकती. धीरे-धीरे सिठानी की आंखों में नमी तैरने लगती थी. पर विमली को एक तरह से राहत मिल जाती थी, कि मैं ही अकेली दुःखी नहीं हूं. बड़ी सिठानी की मुझसे भी बुरी हालत है.

जब कोई दुःखी दूसरे को दुःखी देखता है तो उसे इतनी बड़ी शांति मिलती है कि बस. . .विमली की हालत वही थी. उसकी रगों में जमाने के विपरीत लड़ने का एक साहस-सा आ जाता था. शायद इसी कारण मोची के अड्डे पर बैठ कर, जमाने का रंग देख कर साहस प्राप्त करती हो.

उसकी शक्ल-सूरत देख कर बिल्डिंग में एक अफवाह तो जरूर फैली थी, कि विमली के चाल-चलन ठीक नहीं हैं, क्योंकि कभी वह जूड़े में फूल खोंस लेती थी, कभी बड़ी-सी सिंदूर की बिंदी लगा लेती थी. जब भी ऊपर से उतरती थी, उसका रंग-रूप देखने लायक ही होता था. कोई चौकीदार या नौकर उसको

छेड़ता तो लड़ने को उतारू हो जाती थी. एक बार किसी बिल्डिंग के ही साहब ने उससे कहा—विमली, आज तो तुम चमक रही हो. क्या तेरे मरद ने तुझको याद किया है, बस बरस पड़ी. खड़े-खड़े पचासों गालियां दे डालीं. हरामजादे, तुम्हारे कोई बहू-बेटी नहीं है, बड़े रसिया बनते हो, शहर में बहुत-सी रंडियां बसती हैं, वहां तुम्हें क्या पानी नहीं मिलता है? वह बेचारा चुपचाप, अपने फ्लैट में घुस गया. तीन-चार दिन तक बिल्डिंग से बाहर ही नहीं निकला.

इसीलिए विमली से कोई कुछ नहीं कह सकता था. पर मोची के अड्डे पर बैठ कर जो वह मजा लेती थी, वह उसका दूसरा ही रूप था. बड़े मजे से वह पूछती थी अपनी सहेलियों से— कितनी-कितनी कमाई हुई. कैसी-कैसी रंगरेलियां रहीं, सभी मोची के सामने जरा शरमा-सी जाती थीं. पर विमली कहती कि मुझे कोई मोची-वोची की मदद की जरूरत नहीं पड़ती. हमारे तो बंधे हुए लोग हैं. मैं पैसे नहीं लेती, सीधे कहती हूं, मुझे तो साड़ियां चाहिए या अच्छा खाना. पैसे-पानी की मुझे जब जरूरत होगी हक से मांग लूंगी. बस जोर से तंबाकू मल कर फांक लेती थी. उस समय सब बातें बड़ी शान से कहती थी. सभी बाइयां उसको ताकने लगती थीं. जो ईर्ष्या करती थीं, वह उठ कर चल देती थीं.

★ ★

एक दिन क्या हुआ वह राशन की लाइन में खड़ी थी. सेठ के घर की चीनी लेने के लिए, पान तो उसके मुंह में हमेशा ठुंसा रहता था. उस दिन भी पान से उसके दोनों होंठ लाल हो गये थे और कुछ गर्मी के कारण उसका चेहरा भी लाल सुर्ख हो गया था. उसके कानों में एक आवाज गूंजी, कि कोई कह रहा है कि 'विमली, तुमने पान खाना कब से शुरू किया है? पहले तो उसे भ्रम हुआ कि यहां उसको कौन जानता है. पर वह आवाज तो जानी-पहचानी थी. उसने मुड़ कर देखा, वही रामलाल, उसका पति, पहले से थोड़ा दुबला हो गया है. विमली ने गुस्से से अपना मुंह सामने कर लिया. पर उसके शरीर में एक अजीब-सी घबराहट होने लगी थी. वह सोचने लगी कि कितनी जल्दी उसका नंबर आ जाये और चीनी ले कर बड़ी सिठानी के पास भाग जाये पर रामलाल ने दुबारा उससे वही प्रश्न किया कि 'तुमने पान खाना कब से शुरू किया है.' उसने उसी जोश में उत्तर दिया कि 'जब से तुमने मुझे छोड़ा है.' रामलाल बराबर उसको ताके जा रहा था. पर विमली उसी चुस्ती से खड़ी थी, अंदर उसके क्या हो रहा है, वह जाहिर नहीं करना चाहती थी. और सोच रही थी कि इसको किसने बताया कि मैं यहां काम करती हूं. वह एक-एक करके मोची के पास बैठने वाली बाइयों को सोचने लगी थी.

जैसे-तैसे उसकी चीनी मिल गयी थी और वह थैला कमर पर रख कर चलने लगी, तो रामलाल उसके पीछे-पीछे आने लगा. राशन की गली से निकल कर जब वह सड़क पर आया तो उसने विमली का कंधा पकड़ लिया. विमली के जैसे डंक मार दिया हो. उसने तुरंत उसका हाथ झटक दिया. पर रामलाल बोला—सुन विमली, रमेशा तुम्हारा बहुत बीमार है. तुमको बहुत याद करता है. और तुम तो मेरी शादी वाली औरत हो. ऐसे थोड़े ही घर छोड़ देते हैं.

विमली सोच में पड़ गयी थी कि दो साल बाद अचानक इसको मेरा खयाल कैसे आ गया है. क्या इन दो सालों में यह भी कहीं मेरा यहां भाग आने का पश्चाताप करता रहा है इसीलिए दुबला हो गया है. पर वह क्रिश्चियन, उसने इसको नहीं संभाला. रमेशा की बीमारी सुन कर वह पिघल गयी थी. पूछ बैठी इन दो सालों में वह कैसे-कैसे मुझे याद करता था. रामलाल को जैसे बात करने का सिलसिला मिल गया था. बोला—मैंने बहुत बार सोचा, तुझको ढूंढ़ लाऊं, पर कहीं लगता था कि तुम अपने आप आ जाओगी.

विमली को वह रात याद आने लगी थी, बोली—मैंने वापस जाने की बात दिल-दिमाग से निकाल दी थी. सोच लिया था कि जिंदगी अब अकेले काट दूंगी. वैसे भी मार खानी है, और ऐसे भी मार खानी है. आखिरकार तो दुनिया में सब अकेले हैं...

रामलाल, उसकी बातें सुन कर अचंभे में पड़ गया था. बोला—अब तो तुम बहुत अक्कल की बात करने लगी हो. चलो घर चलो, मैं खुद बुलाने आया हूं.

विमली का घमंड अभी टूटा नहीं था. बोली—अभी मुझे सोचने का टेम दो. अगर कल सुबह तुम आ सको तो मैं बता सकूंगी कि मैं चल सकती हूं या नहीं.

रामलाल ज्यादा उलझना नहीं चाहता था. बोला—अच्छा मैं चलता हूं. कल दस बजे आऊंगा. तुम तैयार रहना.

उसके जाते ही विमली भागी हुई बड़ी सिठानी के पास आयी. बड़ी सिठानी उस समय पूजा कर रही थीं, इसलिए चीनी की थैली रख कर दरवाजे पर ही खड़ी रही. जब सिठानी पूजा पर से उठीं तो देखा विमली खड़ी है. बोलीं—यहां क्या खड़ी हो, चीनी रसोईघर में डिब्बे में रख दो न.

विमली बोली—सिठानी जी, मुझे बहुत कुछ कहना है आपसे.

सिठानी बोली—जा, सब काम निपटा के फिर फुरसत में सब कुछ सुन लूंगी. विमली के जैसे हाथ-पैर में मशीन लग गयी हो, जल्दी-जल्दी उसने सब काम कर डाला. फिर भी कोई बीच-बीच में उसको बुला लेता था. इनकार करना उसकी आदत नहीं थी. सभी का मन खुश रखती थी. पर आज उसका हर काम बेमन से हो रहा था. साथ में यह भी सोचती जाती थी कि अगर मैं कल इस घर से चली जाऊंगी तो यह सब कैसे होगा. पर बड़ी सिठानी के अलावा उसकी तकलीफ सुनने वाला भी कौन था!

जब सब काम समाप्त हुआ तब दोपहर हो चुकी थी. बड़ी सिठानी खा-पी कर रोज की तरह अपने कमरे में आ कर लेट गयी थीं. विमली को अब अच्छा मौका मिल गया था. पर सिठानी ने उसे खुद ही बुला लिया

था, बोलीं--अब कह विमली, सुनते ही विमली ने रोज की तरह उनका पांव दबाना शुरू कर दिया था. फिर बोली--सिठानीजी वह आया था, मेरा मरद, राशन की दुकान पर मुझे मिला था.

सिठानी ने उत्सुकता जाहिर की, बोली--क्या कहता था?

--कहता क्या, बुलाने आया था, रमेशा की तबियत की कह रहा था, कि बीमार है.

सिठानी--फिर क्या तू जायेगी?

विमली--यही तो समझ में आ नहीं रहा है. मुझे तो कुछ दाल में काला लगता है. पूरे दो साल बाद मेरी अचानक ऐसी क्या याद आ गयी कि दौड़ा चला आया.

सिठानी--हो सकता है रमेशा तुमको सौंप दे, या क्रिश्चियन ने कुछ गड़बड़ किया हो और तुम्हारी उसको जरूरत हो.

विमली--वैसे तो आप सब ठीक कहती हैं, पर सिठानीजी, वह रात तो मैं कभी भूल ही नहीं सकती हूं. जरा-सी बात, बस इतनी कि मैं सब घर का काम निबटा कर, सामने वाली खोली में कुछ देर बैठने चली गयी थी. तुम्हारी तरह वह मेरी मौसी कुंती बहुत अच्छी थीं. मैं खुल कर उससे सब कुछ कह देती थीं. पर वह कभी किसी से मेरी चुगली नहीं करती थी. मुझे उतना ही भरोसा था जितना आप पर. उस दिन वह दोनों, मेरा मरद और वह काली कलूटी, अपनी खोली के सामने खाट पर बैठे हुए थे. शायद सलाह मसवरा कर रहे थे. मेरा मरद भी कंपनी के काम करते-करते टूटी-फूटी अंग्रेजी सीख गया था और वह तो सिखेली थी ही. दोनों की बातें मेरी समझ में आती भी नहीं थी. इसीलिए मैं उठ कर चली आयी थी. मौसी अपनी रजाई में डोरे डाल रही थी. मैंने भी दूसरी सुई ले कर डोरे डालने शुरू कर दिये थे. उसी बीच मौसी का देवर आया था साइकिल ले कर, पैंट बुशर्ट में लग रहा था कहीं अच्छी जगह काम करता है. वह भी साइकिल टिका कर वहीं पीढ़े पर बैठ गया था. मुझे देखते ही वह बोला--कुंती भाभी, तुम्हारी पड़ोसन तो बहुत सुंदर है. कहां रहती है? मैं चुपचाप सिर नीचे किये डोरा डालने लगी थी. मौसी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया तो मुझसे ही बोला--कहां रहती हो? मैंने सामने वाली खोली की तरफ इशारा कर दिया था.

मुझे क्या मालूम कि वह सब नाटक, मेरा मरद सब देख रहा है. तुरंत ही उठ कर आया और कड़क कर बोला--चल अपने घर. मैं चुपचाप चल दी थी. खोली में पहुंचते ही कोने से डंडा उठाया और मेरी धुनाई करना शुरू कर दिया. बोला-- मुझे क्या मालूम तुम वहां रंडीबाजी करने जाती हो. घर में कोई और काम नहीं है. वहां बैठ कर तफरी सूझी है. फिर मैंने भी जोर से कहा था--तू जो वह रंडी ले आया है काली कलूटी, वह कुछ नहीं. वह सुनते ही उसका पारा और भी चढ़ गया था. जोर से कमर पर डंडा मारते हुए बोला--मरद को टोकने वाली तू कौन होती है.

सारे खोलियों के लोग जमा हो गये थे. मेरी इज्जत उतरते सभी ने दिल खोल के देख ली थी. रमेशा सहम गया था, इसलिए कोने में जा कर बैठ गया था.

मेरा तो हाल बेहाल था. रात होने तक मैं वहीं पड़ी रही थी कि रमेशा मेरे पास जबरन आ गया था पर इतना छोटा, करता भी क्या, मैंने उससे पीने के लिए पानी मांगा था. उसने छोटे-छोटे हाथों से एक छोटी-सी कटोरी में ला कर दे दिया था.

जाने कैसे साहस करके मैं उसी आंगन में एक किनारे जा कर लेट गयी थी. जगह-जगह छिल गया था. खून झलक आया था. सारे बदन में पीड़ा हो रही थी. बस उसी रात को चार बजे मैं हिम्मत करके उठी और आंगन में फैली धोती समेट कर चुपचाप बाहर निकल आयी थी. सड़क का सन्नाटा देख कर जरूर भय लग रहा था. जब मैं खोली से काफी दूर निकल आयी तो एक पेड़ के नीचे बैठ कर दिन निकलने का इंतजार करने लगी थी. दिन निकलने पर मैं बस पर बैठ कर बिना टिकट अपनी चाची सास के पास बरली आ गयी थी.

उसके बाद आपके पास.

यद्यपि बड़ी सिठानी ने यह किस्सा पहले भी सुना था. पर आज उनकी आंखों में आंसू छलक आये थे. बोलीं--विमली, कितने निर्दई हो जाते हैं यह मरद, जैसे दूसरी औरत का जादू-सा चल जाता है. अपने सेठ को देखो, मान-सम्मान सब मेरी वजह से है. पर कभी अकेले में आ कर पूछा है कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है.

मुझे तो लगता है कि आदमी अपनी जिंदगी में दूसरी औरत रख तो लेता है पर जिंदगी भर उसके मन में कुछ सालता रहता है. वह कुछ भी करे अपनी तकलीफ अपने आपसे भी कहते डरता है. जिंदगी में सब स्लेट की तरह पुछ तो नहीं जाता. मैंने तो कभी तुमसे कुछ कहा नहीं. मेरा बाबू जब होने वाला था, तो सेठ ने ही मेरी कितनी देखभाल की थी. दवाइयां और फल तो भरे रहते थे. कभी-कभी अपने हाथ से दवाई पिला देते थे. उन्हीं दिनों बाबू की देखभाल के लिए छोटी को रखा था. और अब देखो. यह कहते-कहते वह खाली छत की तरफ देखने लगी थीं. एक आंसू उनकी आंख की कोर में छलक आया था. विमली भी चुपचाप बैठी उनको देख रही थी. थोड़ी देर बाद सिठानी ने ही कहा था--विमली, तुमको तो तुम्हारा मरद बुलाने आया है, बस इतना ही बहुत है. तुम जरूर चली जाओ.

विमली--सिठानी, आपके साथ रहते-रहते एक मोह-सा हो गया है. दोनों एक दूसरे का दुःख बांट तो लेते थे. मेरे चले जाने से आपका सब कैसे होगा.

सिठानी को यह बात अंदर तक हिला गयी थी फिर भी बहुत हिम्मत जुटा कर के कहा था--मेरी क्या, अभी तो मेरे हाथ-पांव चलते हैं. धीरे-धीरे सब कर लूंगी. फिर आदत पड़ जायेगी. बस मेरा बाबू कहीं ठिकाने पर लग जाये, मैं उबर जाऊंगी.

दूसरे दिन विमली की अजीब-सी हालत थी. सेठ से बस इतना कहा था उसने, कि थोड़े दिन के

लिए मैं गांव जाना चाहती हूं. फिर आ जाऊंगी. सेठ ने भी हां कह दिया था.

उसके मन में कहीं एक उत्साह भी था. इतने दिनों बाद रमेशा को देखेगी. इसलिए सुबह जा कर दुकान से दो-तीन बिस्कुट के छोटे पैकेट ले आयी थी.

उसने वही अपनी चमकीले किनारे वाली साड़ी पहन ली थी और बालों से एक फूल लगा लिया था. सिठानी के सारे काम उसने सुबह से ही निपटा दिये थे.

ठीक दस बजे रामलाल बिल्डिंग के नीचे आ गया था. विमली ऊपर से बराबर देख रही थी. उसको देखते ही वह सिठानी के पास भागी हुई गयी. और सिठानी से मिल कर नीचे उतर आयी थी. सिठानी ने जब ऊपर से उसे देखा तो उनको सेठ का ध्यान आने लगा था. कहीं ऐसा मेरी जिंदगी में एक क्षण को हो सकता. और जोर से सांस ले कर अपने अकेले कमरे में बंद हो गयी थीं.

★ ★

विमली जब घर में घुसी तो देखती क्या है, दलान में एक छोटा-सा स्कूल लगा हुआ है और उसकी सौत, वह क्रिश्चियन, एक छोटी-सी कुर्सी पर बैठ कर बच्चों को सिखा रही थी. रमेशा सबसे पीछे बैठा स्लेट पर कुछ आड़ी-तिरछी लाइनें बना रहा था. दलान का फर्श भी अब पक्का हो गया था. सारी खोली में रंग हो गया था. वह थोड़ी देर खड़ी हो कर सब देखती रही थी. रामलाल सीधे खोली के अंदर चला गया था. कुछ देर बाद रमेशा ने ही मुड़ कर देखा. पर उसकी नजरों में एक अजीब-सा अजनबीपन था.

रामलाल जब खोली से निकल कर आया, तो क्रिश्चियन से बोला—देख, विमली आयी है. वह तुरंत सब छोड़छाड़ कर उसके पास आ कर अंदर चलने के लिए कहने लगी. तभी विमली ने देखा कि उसकी सौत के पांव भारी-भारी पड़ रहे हैं. शायद सातवां महीना रहा होगा. वह अंदर-ही-अंदर सब समझ गयी थी, कि कितना बड़ा धोखा उसने फिर खाया है सिर्फ रमेशा के कारण. वह तुरंत लौट जाना चाहती थी. पर जाने क्या सोच कर रुक गयी थी, और चुपचाप खोली के अंदर जा कर अपना थैला रख दिया था. उसी समय उसने सोच लिया था कि यह दो महीने जैसे-तैसे वह निकाल लेगी. पर अंदर-ही-अंदर वह आग से सुलग रही थी. होंठों से वह बहुत कुछ कहना चाहती थी जैसी उसकी आदत थी पर चुपचाप वहीं गड़ कर बैठ गयी थी. वहीं से रमेशा को देख रही थी. वह उसी तरह स्लेट पर कुछ बना रहा था. इसका भी अफसोस उसको खाये जा रहा था कि अपना भी खून इतनी जल्दी दोगला हो जायेगा. शायद उसको यह याद भी नहीं होगी कि उसकी भी कोई अपनी मां है. हिम्मत करके वह स्वयं ही उठी और सब बच्चों के बीच से जा कर रमेशा को उठा लिया. पांच साल का रमेशा अब भारी हो गया था. चुपचाप विमली को सकपकाई आंखों से देख रहा था. विमली बोली—तूने पहचाना नहीं, मैं तेरी मां हूं.

रमेशा ने कहा—मां, मां तो मेरी मर गयी है. वह तो मर कर भगवान के पास चली गयी है. विमली को बरदाश्त होना मुश्किल हो गया था. पर वह ऐसे पिंजरे में फंस गयी थी कि जहां आसानी से सब छोड़-छाड़ के निकल कर भाग भी नहीं सकती थी. उसका मन रुंआसा होने लगा था! फिर भी उसने हिम्मत करके रमेशा से पूछा—यह सब किसने बताया?

वह सीधा बोला—बाबू ने, वह मेरी दूसरी मां है न, वह बहुत अच्छी है. हम सबको नई-नई कहानी सुनाती है.

विमली को लगा कि वह बहुत अकेली हो गयी है. न मरद अपना, न लड़का अपना, बड़ी सिठानी में भी अब कितना फासला हो गया है. किसको बताये कि उसका शरीर जो कि लचकदार हो चला था, एक क्षण में सूखने लगा है. फिर भी वह रमेशा को ले कर खोली में चली गयी थी, अपने थैले में से बिस्कुट का एक पैकेट निकाल कर उसको दे दिया था.

और बाकी सब अपनी सौत को थमा दिये थे. इस बीच रामलाल खोली में पड़ी चारपाई पर लेट गया था. उसकी मौजूदगी का कोई आभास नहीं हो रहा था. जैसे विमली को इस खोली में ला कर डाल दिया हो और अपने आप में संतुष्ट हो गया हो. क्रिश्चियन एक खोली में रक्खे स्टोव पर चाय बनाने लगी थी.

विमली भी रमेशा को ले कर खोली में ही अपने थैले के पास बैठ गयी थी. जब चाय बन गयी तो रामलाल उठ कर बैठ गया था. खोली में बैठे वे तीनों लोग मशीन की तरह अपनी-अपनी जगह जैसे फिट थे. कोई बात का सिलसिला ही नहीं था. रमेशा जरूर बिस्कुट खाने में लगा हुआ था. और बाहर बैठे बच्चों का कुछ शोर अंदर आ रहा था. क्रिश्चियन ने विमली और रामलाल को चाय दी. और बाहर बच्चों के पास जा कर बोली कि आज तुम्हारी छुट्टी. तुम लोग अब घर जाओ.

आज पहली बार विमली को इस घर में इतना सम्मान मिल रहा था. उसने भी सोचा कि क्यों न अब की रौब से रहे. इन लोगों को मेरी जरूरत है. उसका पूरा फायदा उठा ले और चलती बने. पर दूसरी तरफ उसको अपनी स्थिति मालूम थी. नितांत अकेलापन, उसको वह कैसे भरेगी! सिर्फ काम ही करना उसका सहारा रह गया था, जिसमें वह अपने आपको भुला देना चाहती थी.

सारी रात उसे नींद नहीं आयी. दूसरे दिन जब उठी, तो पहले की तरह अपने कामों में लग गयी थी, पर इस बार सब कुछ अलग था. चीजों के स्थान बदल गये थे. कुछ हिचक भी लग रही थी. फिर भी उसने दो खाली कलसे उठाये और नल की तरफ चल दी थी. सुबह-सुबह पानी भरना उसका पहले भी काम था.

नल पर पहुंच कर उसको सिठानी का भी ध्यान आया था कि आज मैं जितनी अकेली हूं, उतनी वह भी अकेली होंगी. उनका भारी बदन कैसे चल रहा होगा. वह सोच रहीं होंगीं कि कितनी भाग्यवान हूं

पर यहां तो जैसे जेल मिल गयी हो. यहां रामलाल, जो कि राशन की दुकान पर कितनी मीठी-मीठी बातें कर रहा था, यहां तो उसको मुझसे मतलब ही नहीं था. जैसे मुझे ला कर बस क्रिश्चियन को सौंप दिया हो. और फिर वह मोची का अड्डा, कितनी रौनक लगती थी. यह सोच कर उसने अपने शरीर की तरफ देखा और मन-ही-मन बुदबुदायी, क्या कमी है मुझ में. एक क्षण को उसके मन में आया कि क्यों न मैं दुनिया का आनंद लूं. कौन क्या कर लेगा. बुराई ही क्या है इन सब में.

कौन किसका सहारा होता है. मैं दो महीने अगर रह कर सब कुछ अपने ऊपर ओढ़ भी लूं तो भी मेरी यही हालत रहेगी. शायद इससे भी बदतर हो जायेगी. और फिर किसको अहसास होगा कि मैंने इतना सब सहा. और अपना रमेशा , वह भी कहां अपना रहा. अगर उसे अहसास भी दिलाऊं कि मैं उसकी असली मां हूं, वह सब झूठ था, जो तुम्हारे बाबू ने बताया था, इसमें भी क्या फायदा! वह तो अपने आपमें यहां खुश है फिर दो साल में उसकी आदतें भी बदल गयी होंगी. मैं भी कितनी बदल गयी हूं. मुझे भी बंधापन अच्छा नहीं लगता.

यही सब सोच कर उसके मन में आया कि क्यों न आज ही रात को भाग जाये पहले की तरह. इसी जोश में उसने दोनों कलसे उठाये और चाल की तरफ चल दी. वह पहुंची तो देखा रामलाल और क्रिश्चियन दोनों जाग गये थे. उसको आते देख कर रामलाल तो खामोश रहा, पर क्रिश्चियन बोली—दीदी, आप क्यों यह बरतन भरने गयी थीं. यह तो सब इनका काम है, रामलाल की तरफ इशारा करके . वह समझ गयी कि अब रामलाल इसका बिलकुल ही गुलाम हो गया है. पहले तो उसके सामने उठा कर गिलास तक नहीं पीता था.

उसका मन अंदर-ही-अंदर चीत्कार करने लगा वापस जाने के लिए. तुरंत उसको एक तरकीब सूझी. कलसे रख कर वह अपने थैले के पास आयी और उसके अंदर से कपड़े निकालने लगी. फिर बोली रामलाल की तरफ देख कर कि यह क्या हुआ, मैं तो अपने पैसे वहीं भूल आयी. रामलाल बोला—क्या हुआ, तुमको यहां जरूरत ही किस चीज की है?

विमली ने भी इन दो सालों में कुछ कम पापड़ नहीं बेले थे. तुरंत बोली थी—वह सिठानी के कमरे में मेज पर ही पड़े होंगे. किसी के हाथ लग गये तो मुश्किल हो जायेगी. और फिर सिठानी की दवाई की नई शीशी, जिसे मैंने अलमारी में बंद कर दिया था, सिठानी बिचारी परेशान हो जायेंगी. तुमको तो कंपनी जाना ही है, मैं भी चलती हूं. सब ठीक करके तुम्हारे ही साथ वापस आ जाऊंगी. रामलाल उसकी बातों में पूरी तरह आ गया था. बोला—अच्छा चलो, मुझे तो अभी जाना ही है.

★ ★

रामलाल तैयार हो कर जब जाने लगा तो विमली भी तैयार हो गयी थी. इस बीच क्रिश्चियन ने पराठे और सब्जी एक 'लंच बाक्स में रख दिये थे. विमली ने खाना ठीक नहीं समझा. धीरे से थैला उठा लिया और बगल में दबा लिया. कंपनी जाने की जल्दी में किसीने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया. रमेशा अभी तक उठा नहीं था. विमली ने मुड़ कर एक झलक उसकी तरफ देख लिया. और मन-ही-मन बोली, तुम्हारी मां सचमुच भगवान के सहारे जा रही है. स्थितियां आदमी को कितना कठोर बना देती हैं. विमली को अब किसीका माया-मोह नहीं था. खुले पक्षी की तरह उड़ना चाहती थी. चाल से बाहर आ कर उसको एक तरह की संतुष्टि हो गयी थी.

रामलाल आगे-आगे और वह पीछे-पीछे चली जा रही थी. विमली का मन हुआ कि यहीं से वह कहीं चली जाये. उसी बीच रामलाल ने जब उसे मुड़ कर देखा, वह उसके लिए रुक गया था. विमली अब उसके साथ चलने लगी थी. बहुत देर तक दोनों खामोश चलते रहे. बस स्टाप काफी दूर था. रामलाल ही बोला—विमली, तुम जा कर आ जरूर जाना, जैसे इसको कहीं उसके ऊपर शक हो रहा हो.

विमली बोली—क्यों नहीं, आदमी को आदमी पर ही विश्वास होता है, जानवरों पर थोड़े ही . विमली ने जब यह बात कहीं थी तो धीरे से मुसकरा दी थी. इतने में बस स्टाप आ गया था. वहां पहुंच कर फिर वही खामोशी . विमली का मन भी नहीं कर रहा था कि कुछ बात करे. शायद रामलाल को भी बात करने का कोई सिलसिला नहीं मिल रहा था. कल से आज तक कुछ खामोशी में ऐसा घटित हो गया था कि बातों के अर्थ बदल गये थे.

इतने में बस आ गयी थी. विमली जान कर उस सीट पर बैठी, जिस पर कोई आदमी बैठा था. इससे रामलाल अलग हो गया था. रामलाल को कहीं शक होने लगा था कि कहीं विमली धोखा तो नहीं दे रही है. पर वह सीट पर बैठा कुछ कर भी नहीं सकता था. दोनों लोग खिड़की के बाहर दुनिया देख रहे थे.

इतने में बस के सफर में दोनों की कोई बात नहीं हो पायी थी.

बस स्टाप आते ही विमली जल्दी ही उतर गयी. भीड़ के कारण रामलाल पिछड़ गया था. विमली को शायद रामलाल का ध्यान भी नहीं रहा, या जान छुड़ा कर भागना चाहती थी, इसीलिए जल्दी-जल्दी चलने लगी. रामलाल भी उतर कर उसके पीछे जल्दी-जल्दी चलने लगा. पास आ कर बोला—विमली, कहां भागी जा रही हो.

विमली ने तपाक से जवाब दिया, जैसे घर में कुत्ता भी शेर हो जाता है— अपने घर.

रामलाल बोला—मुझसे तुमने क्या झूठ बोला था.

विमली को गुस्सा आ रहा था, बोली—तुमने क्या मुझसे कम झूठ बोला था.

आज रामलाल को अपनी पुरुषता पर शर्म आ रही थी नहीं तो कहीं चाल में खड़े हो कर अगर यह कहती तो चांटा भी मार देता. पर वह लाचार हो कर

(आगे पृष्ठ ७१ पर)

भूलखाना

• नासिरा शर्मा

रमेश ने अंतिम बार अपने पेंट की क्रीज ठीक की और संभल कर बैठ गया. गाजियाबाद गुजर चुका था, दिल्ली बस गाड़ी पहुंचना ही चाहती थी. बेचैनी से वह बैठ न सका, होल्डाल और अटैची को उसने दरवाजे के समीप पहुंचा दिया और पीछे की जेब से कंघा निकाल कर बाल फिर से संवारे. दिल की धड़कन पटरी पर फिसलते पहियों के साथ ही झक, झक, झक का ताल दे रही थी. गाड़ी के रुकते ही उसने थूक निगला, कालर को ठीक किया, गर्दन थोड़ी अकड़ाई और एक अदा से प्लेटफार्म पर नजर डाली.

—अरे यार, तू आ गया. . . दीक्षित ने उसे खींच लिया और एक धप लगायी.

—सफर कैसा रहा?

वह बौखलाई-सी हंसी हंसता रहा, बार-बार सचेत-सा इधर-उधर दृष्टि डाल रहा था जैसे कि लोगों को इतनी फुर्सत है कि वे केवल उसी को देख रहे हैं. सच है, दिल्ली मानव जंगल है. जंगल भी कैसा, बहुत ही सघन.

दो साल पहले जब वह बी. ए. कर रहा था तो दीक्षित सात साल बाद दिल्ली से आया था उसका पुराना सहपाठी. दीक्षित पढ़ाई में अच्छा था, सीधा-सादा लड़का था, घने बालों के बीच चुटिया के गुच्छे में पड़ी बड़ी-सी गांठ और गले में पड़ा जनेऊ—पर अब तो जैसे पहचाना ही नहीं जाता—पैंट, शर्ट, निखरा मुखमंडल, कटे बालों की लट माथे पर झूलती हुई और बालों का अंदाज. . . .धीरे-धीरे उसे गिराते गये. फिर जब दीक्षित दिल्ली वापस गया तो रमेश को हीनता के दलदल में छटपटाता छोड़ गया. तब से जाने कौन-सी ज्वाला रमेश के मन को जलाये जा रही थी कि उसे कुछ बनना है, आगे बढ़ना है. दिल्ली उसे एक झिलमिलाते सितारे की तरह नजर आता— मान-चित्र रूपी आकाश का सबसे ज्वलंत सितारा, सब शहरों का सरताज.

दीक्षित के बुलावे पर वह दिल्ली पहुंच गया. ड्राइंग रूम देख वह कर स्तंभित-सा रह गया. कालीन, सोफा, कुशन, लैंप, तस्वीरें, मूर्तियां एकदम अपने में संपूर्ण. दीवान के एक सिरे पर बैठ कर वह अपने को काफी संभाल चुका था. अटैची खोल कर उसने बांबे डाइंग की नयी तौलिया, नयी साबुनदानी, और नये कपड़े निकाले. बाथरूम देख कर वह प्रसन्न हो गया. घर पर बाबूजी लाइफबाय के अतिरिक्त अन्य साबुन आने नहीं देते थे. पर लक्स की भीनी महक और अंगौछे की जगह इंद्रधनुषी तौलिये ने उसे गुनगुनाने पर मजबूर कर दिया.

बड़ा शरमाते हुए उसने मां के हाथ के बने लड्डू और मठरियां चाची को दिये. वह सोच रहा था कि अभी दीक्षित अलग कमरे में सामान रखने को कहेगा पर वह साफ इंकार कर देगा. चंद दिन के लिए तो आया हूं, यार से बातें न हुई तो फायदा क्या? मैं तो साथ ही कमरे में रहने की कहूंगा, बाहर से कितना बड़ा घर लगता है. जाने अंदर कितने कमरे हैं. ८-१० तो होंगे जरूर.

—क्या सोच रहे हो, कुछ खाओ तो, चाची ने उसे टोका .

—गीता, बर्फ की ट्रे निकाल ले बेटा, कितना आराम है वरना बर्फ के लिए चौराहे तक दौड़ कर जाओ.

दीक्षित ने छुट्टी ले रखी थी. इस कारण पूरा दिन खूब दिल्ली की सैर हुई. दिल्ली घूमते हुए उसे एक अनजाना-सा भय दबोचने लगा, उसका कद घट रहा है. . . . कुतुमब मीनार के ऊपर चढ़ कर उसे अच्छा लगा. ऐसा प्रतीत हुआ कि उसमें इतनी शक्ति है कि वह बांहों में तो नहीं पर आंखों में यह दृश्य, यह प्राकृतिक छटा, छुपा सकता है. एक अछूती-सी ठंडी-सी अनुभूति हुई. वह मुस्करा पड़ा.

कनॉट प्लेस पर घूमते हुए फिर उसे उस भयानक कल्पना ने दबोचना शुरू कर दिया. वह घट रहा है, तिल-तिल कर के. यह कैसे हो सकता है. यह केवल उसका भ्रम है. दोस्तों में वह सबसे लंबा है, पांच फीट आठ इंच यानी दीक्षित से चार इंच लंबा. . . . ऊंह. . . . उसने गर्दन अकड़ाई.

रात को जब वह घर लौटे तो कमरे में घुसते ही रमेश को झटका लगा. गलत घर में घुस आया है शायद? नहीं, पर चाची और गीता तो बैठी हैं.

—आओ बेटे, आओ. तुम्हारा बिस्तर दीक्षित के साथ ही लगा दिया है. ऊपर खिड़की है, ताजी हवा भी आयेगी, चाची ने नूरानी तेल, पैरों में मलते हुए कहा.

—ठीक है चाची, पुताई-सफाई के समय ऐसा होता ही है.

—क्या मतलब , पुताई कैसी? दीक्षित के हाथ बुशर्ट के बटन खोलते हुए रुक गये.

—बाकी कमरों की पुताई लगी है न, रमेश ने कहा.

—क्या? दीक्षित अवाक् रह गया. फिर ठहाका मार कर वह हंस पड़ा, अरे उल्लू की दुम! बाकी कमरे हैं किसके पास? यही अपना किला समझो, जिसका एक कमरा समय के अनुसार बदलता रहता है. . . . यार मुंह मत खोलो—सुनो, सूरज की पहली किरण के साथ यह कमरा अलसाया हुआ करवट बदलता है, फिर भरपूर अंगड़ाई ले कर ड्रेसिंग रूम बन जाता है, फिर डाइनिंग रूम और नौ बजते-बजते ड्राइंग रूम, समझे. सूरज के उगत और मुंह छुपाते

यह खेल फिर से शुरू हो जाता है—— अरे सुन गीता, काफी बना, अभी नया-नया बच्चू इलाहाबाद से आया है न, फाख्ता उड़ती दीख रही है. . . . अरे इस इकलौती बालकनी और कमरे के पूरे २०० रु. देने पड़ते हैं. समझे, राजकुमार, अब भी हम छोड़ दें तो फौरन ही ३०० रु. पर उठ जायें.

रात को जब वह लेटा तो उसके मन-मस्तिष्क दोनों में जाले-से बुन गये थे. सब कुछ धुंधला और उलझा हुआ दिख रहा था. प्रातः सब्जी की तीखी छौंक से वह छींकता हुआ जाग पड़ा, केवल ५ बजे थे पर कमरे में एक तूफान मचा-सा लग रहा था कि मकान



• 'सूर्य' मुखर्जी

की कुर्की आ गयी है कि २ मिनट में खाली करो. गीता बिस्तर लपेट कर दीवान के अंदर रख रही थी, चाचाजी ब्रश कर रहे थे. ७ बजे गीता को बस पकड़नी थी, चाची के हाथ आटा गूंथने में लगे थे. यदि चाचा को देर हो गयी और आठ की बस छूट गयी तो उन्हें क्यू में पीछे लग के दफ्तर तक डंडा पकड़े मौत और जिंदगी के बीच झूलते हुए जाना पड़ेगा. चाचाजी को जीते जी यह नर्क की आग में जलना पसंद न था. मजे तो केवल दीक्षित के थे, चार मील पर दफ्तर, सुबह-शाम आराम से साइकिल पर आता-जाता था.

सुबह कब होती, धूप कब निकलती, उसे पता न चलता.. आकाश का एक छोटा-सा टुकड़ा नजर आता. एक दिन गर्दन टेढ़ी करके उसने बड़े परिश्रम से आकाश की नीलाहट को देखा. देखना भी तो कितना कठिन है, चारों ओर तो एक-सी ऊंची इमारतें हैं. वह भी इतनी सटी हुई कि रमेश को सदा लगता कि वह एक दूसरे के कान में फुसफुसा कर जाने कौन-सी कहानी कह कर, दुख बांटना चाहती हैं.

आज उसे १५ दिन हो गये आये हुए, आरंभ में वह कितना प्रभावित था इस यंत्रचालित रूपी जीवन से पर अब धीरे-धीरे यही जीवन प्रभावहीन-सा, महिमा को धोता हुआ लगता है. लगता है यदि पर्दा हटा नहीं कि संघर्ष का समुद्र ठाठें मारता हुआ नजर आ जायेगा. वह सिहर उठता.

सुबह की सरपटाहट से वह समझौता भी नहीं कर पाया था कि बंबई से दीक्षित के बहन-बहनोई आ गये, सब मस्त. कहकहे बिखर रहे थे, किसी को बेचैनी, परेशानी, उलझन नहीं थी. पर उसे, उसे तो केवल सुई की टिक-टिक की तरह यह प्रश्न चोटें मार रहा था, आखिर यह सोयेंगे कहां?

कमरा चादरों में बंट कर दो हो गया. बंटवारे के बाद सब गहरी नींद में डूब गये. वह पसीने में लथपथ एक करवट से दीवाल की ओर मुख किये पड़ा रहा. उसे याद आया, उसकी घर की दीवालें प्लास्टररहित कितनी घायल-सी लगती हैं पर उनमें कितनी विशालता है. यह बेदाग डिस्टेंपर की हुई गुलाबी हंसती दीवारें कितनी तंग हैं. इनकी बांहों के कसाव में उसकी एक-एक पसली चटक जायेगी. . .तीन दिन तक नाजुक चादर की दीवार के पीछे गहरी सांसें, चूड़ियों की आवाज, कपड़े की सरसराहट ने उसकी आंखों की नींद छीन ली, उसे आश्चर्य के साथ बेचैनी लगती. आखिर यह लोग सो कैसे लेते हैं और पर्दे के उस पार वाले कितने साहसी हैं!

सुबह होते-होते उसकी आंख लगती तो उसे स्वप्न दिखता कि वह किसी ट्रेन के पीछे भाग रहा है या भटक गया है या फिर किसी समुद्र में डूब रहा है और बचाव के लिए पुकार नहीं पा रहा है या फिर दलदल में फंस छटपटा रहा है. दम घुटने से उसकी आंखें खुल जातीं, गले में कांटे से चुभने लगते. अपने पेट पर से दीक्षित की भारी टांगें हटा कर वह गहरी सांस खींचता.

उसे स्थानीय स्कूल में जगह मिल गयी और दौड़ने, भागने के बाद एक बोसीदा-सा गैराज भी रहने को मिल गया था. अलग रहने वाली बात उसने सबसे छुपाई थी क्योंकि उसे मालूम था कि जिस दिन वह बात मुंह से निकालेगा, चाचा-चाची बुरा मानेंगे. दीक्षित क्रोध से उबल पड़ेगा. हो सकता है, हाथ भी जड़ दे. गीता तो उसे जरूर ही हठ कर रोकेगी, आखिर उसे नोट्स बनाने में मदद भी चाहिये न!

बड़ी हिम्मत करके उसने शाम को यह बात कह डाली. फिर माथे पर छलक आये पसीने को शीघ्रता से रूमाल से पोंछा, पर यह क्या? लगा सब कुछ हिल रहा है, डगमगा रहा है. शायद उसे चक्कर आ गया है——

भाग्यवान हो बेटा, इतनी जल्दी दिल्ली में कौन सर छुपाने की जगह पा लेता है, फिर खूबीराम का ढाबा भी दस कदम पर है, सौ-सवा सौ में पका-पकाया खाना भी मिल जायगा.

—रमेश भाई साहब, आते रहियेगा, वरना वह नोट्स. . .गीता की आंखों में विनतीभरा अनुरोध था.

—यार रमेश, तू इतनी जल्दी सैटिल हो जायेगा. मुझे विश्वास नहीं होता, खैर, बधाई हो, दीक्षित ने जोर का धप जांघ पर लगाया.

★ ★

परसों रात को छः बजे का शो देख कर लौटते हुए बस में बड़ी भीड़ थी, फिर भी इंसानों की एक बाढ़ उस नन्हे-से द्वार से अंदर घुसने को तड़प उठी थी. एक बुढ़िया को चढ़ाने की प्रतीक्षा में वह रुका था पर दीक्षित बस में जाने कब चढ़ गया. अभी बुढ़िया ने पांवदान पर पैर रखा ही था कि बस झटके से चल पड़ी और जीवन भर कठिनाइयों से लड़ती-झगड़ती बुढ़िया औंधी पड़ी थी.

रमेश घबरा गया—माताजी चोट तो नहीं लगी?

—नहीं बेटा, पर यह बस कंडक्टर अपने को कप्तान से क्या काम समझते हैं, उसने कराह कर कहा. तब ही पास से गुजरते स्कूटर को उसने रोका—धौला कुंआ, बुढ़िया का घर वहीं था.

—उधर नहीं, सेक्टर तीन चलना हो तो बोलो.

इस तरह से कई स्कूटर आये और चले गये. सबकी मंजिलें विभिन्न दिशाओं को जाती थीं जो सवारियों की दिशाओं से तालमेल नहीं खाती थीं. अंतिम स्कूटर वाले से रमेश की झड़प हो गयी—आखिर शराफत भी है कोई चीज कि नहीं. तब ही एक टैक्सी रुकी—साब चलिये, क्यों गर्म हो रहे हैं, मुझे उधर ही जाना है.

—साब हैं! दो अक्षर पढ़ लिये तो दिमाग फिर गया है, साला, शराफत सिखाता है! कानून की. . .

बाकी शब्द स्कूटर की घड़घड़ाहट में दब गये पर जो सुना उससे लगा कि वह भरे बाजार में नंगा कर दिया गया हो. वह मुट्ठी भींचता, दांत पीसता, बुढ़िया को वहीं फटपाथ पर बिठा अपनी असमर्थता की बेड़ियों को खड़खड़ाता जख्मी पैरों से आगे बढ़ गया—लो, श्रवणकुमार चल दिये!

इस ताने से वह बिखर गया. जितनी तेज हो सकता था, वह चलने लगा, जाने किन अनजाने से रास्तों पर निकल गया. खून की गर्मी जब कम हुई तो अपने आप ही रफ्तार सुस्त पड़ी, दर्द से पिंडलियां ऐंठ रही थीं. पर सड़क के अकेलेपन ने उसे सहलाया, दुलारा, उसे सहारा दिया. उसे लगा, उसका बिखरा व्यक्तित्व फिर से जुड़ रहा है. आत्मबल उसके खोखले पड़े शरीर में बूंद-बूंद कर जमा हो रहा है.

सोने से पहले उसने बाबूजी का पत्र दोबारा पढ़ा, कम्मो दिल्ली आकर पढ़ना चाहती है. उसने आवेश में आकर पत्र की चिंदी-चिंदी कर डाली. उसे मुट्ठी में भींचे रहा, फिर जाने क्यों खिड़की के बाहर उन्हें उन्मुक्त हवा में छोड़ दिया. 'दिल्ली, दिल्ली, छेनी-हथौड़े की चोट के साथ दिमाग में गहरी धंस गयी. आखिर दिल्ली में है क्या? हर कोई दिल्ली-बंबई जाना चाहता है.

कल दीक्षित आफिस आ गया—भाई रमेश, शाम को बोतलें खुल रही हैं.

—किस खुशी में?

—अपना गुरु, मोहन है न, सुपरिंटेंडेंट हो गया है.

—कैसे? कब?

—कैसे क्या? यार यह है जादुई डंडा, उसने प्याली पर चमचा बजाया, जीवट का आदमी है, दो साल कस के चमचागिरी की और अब क्रीम स्वयं पैरों पर बह रही है. अच्छा, चलता हूं, आना अवश्य.

रमेश को उसका हंसता चेहरा बड़ा अपरिचित-सा लगा. कहीं अनजानी-सी हूक, गुमनाम-सा दुख, अजनबी-से द्वेष की भावना ने उसके हृदय को थपथपाया. इस थपथपाहट के हल्केपन के बावजूद पक्के फोड़े की तरह उसका मन तड़पन से भर उठा—आखिर हर ओर भागदौड़, नोच-खसोट, किसलिए? किस उद्देश्य के लिए? आखिर इसका अंत कहां होगा? उसे अपने इतिहास के अध्यापक याद आये. 'बेटे, कहां पराये शहर में नौकरी करोगे, इतना अच्छा परीक्षाफल है. यहीं अपने स्कूल में रहो.' यह सुन कर यह झुंझला गया था. उहं कोरी भावनाएं! यह हमारे बुजर्ग भी सदा रिश्तों को महत्व देते हैं, संवेदनाओं के गुलाम हैं. मुझे कुछ बनना है. मैं क्यों इस सड़े खूंटे से बंधा रहूं? फिर वह किसी बिगड़ैल, अविचल, बैल की तरह खूंटे से बलपूर्वक रस्सा तुड़ा कर दिल्ली भाग आया था.

हफ्तों बाद दीक्षित दिखा भी तो किसी लड़की के साथ. शाम को वह शिकवा भरे लहजे में बोला—मैं चाय तो पीऊंगा नहीं. मैं बहुत नाराज हूं, भाभी यूं पसंद कर ली और बताया भी नहीं.

—तुम रहोगे वहीं, जहां से चले हो. वह तुम्हें मेरी पत्नी जैसी दिखती है? अरे यार, वह मोहन की बहन है, उसे सिफारिश चाहिए और मुझे. . .रमेश आवाक्-सा रह गया.

उसका मन किया, वह लौट जाये, पर क्यों लौट जाये? क्या वह संघर्ष से हार गया? हारना कैसा और जीतना कैसा? रास्ते में उसे दो कुत्ते लड़ते मिले, एक हड्डी के लिए लड़ रहे थे. अरे यह हड्डी तो उस काले कुत्ते की टांग है जो सुबह तेज कार के नीचे आ कर कुचल गया था. कुछ रुका, थमा नहीं था. सब पूर्ववत्-सा चलता रहा था, इंसान के मरने पर तो कोई रुकता-थमता नहीं, फिर यह तो जानवर. . . वह भी कुत्ता. .

कम्मो का पत्र मिला. . . . भैया अब की राखी में जरूर आना, आते समय इंपोर्टेड नायलान की साड़ी भी, अब मैं खूब लंबी हो गयी हूं. मैं बहाना नहीं सुनूंगी. सब कहते हैं कि दिल्ली में छोटे बाजारों में बाहर की चीज खूब मिल जाती है. वह सांस खींचता है.

शाम को घर लौटने से पहले प्रिंसिपल का बुलावा आता है—रमेश, सुनील खुराना का रिजल्ट कैसा रहा?

—सर, एक सब्जेक्ट में भी पास नहीं है.

—ठीक, उसकी रिपोर्ट फिर से बना परमिट कर दो.

—जी, क्या कह रहे हैं? वह कुर्सी से उछल गया.

—हूं, मैं ठीक कह रहा हूं. तुमको पता नहीं, खुराना साहब इस शहर के गिनेचुने बिजनेसमैन हैं.

दो मिनट खामोशी रही—फिर बच्चों के लिए जो नयी इमारत बन रही है, वह खुराना साहब की ही देन है, हमें यह नहीं भूलना चाहिए.

—यस सर, वह पिटा-पिटाया-सा लौट आया.

दिन यूं गुजरते चले गये, दिन क्यों साल गुजर गये. शुरू में मन करता था कि पुराने कालेज लौट जाये और उन्हीं अध्यापकों के चरणों की धूल माथे पर लगा शेष जीवन शिक्षादान में लगा दे. पर जाने वहां भी क्या हो, यह आशंका उसे रोक लेती. अब तो कुछ दिनों से उसे जिद सवार हो गयी, वह क्यों लौट जाये? क्यों, हार जाये? उसे समझौता नहीं करना है.

रोज रात को उसका मामूल हो गया था कि वह सूनी जख्मी सड़कों पर चले जिन्हें दिन भर लोग पैरों तले दबाते हैं. निस्तब्धता, बंद खिड़कियां, फीकी रोशनी, पेड़ों की आड़ी-तिरछी गहरी काली छाया उसमें आत्मबल का संचार करतीं. कभी-कभी डर लगने लगता है कि कहीं वह घटते-घटते एक मामूली-सा कीड़ा न बन जाये और कोई उसको कुचल कर न रख दे.

कई दिनों से काम की अधिकता से रात्रि जागरण के कारण स्कूल देर से पहुंचता. आज फिर वही हुआ. प्रिंसिपल के सामने रोज-रोज की पेशी—वह आगे बढ़ा, धक्का-मुक्की जाने किसको उसकी कोहनी लगी, कुछ ज्ञात नहीं, बस पर चढ़ कर पूरे बोझ से किसी बच्चे का पैर दबाया.

इलाहाबाद स्वयं तो जा न सका पर अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल बहन का मन रखने की लिए उसने इंपोर्टेड नायलोन की दो साड़ियां खरीद ली. पिता का पत्र आया है. कम्मो के विवाह को ले कर उसे बुलाया है.

कल जाने क्यों, बैठे-बैठे फिल्म का मूड आ गया. वह भी सेकेंड शो में. पर दिल्ली में दिल चाहने से तो सब कुछ नहीं हो जाता है न? 'हाउस फुल' देख खिन्नता से बाहर आ कर खड़ा हो गया, तब ही किसी ने कहा—सुनिये, आपको टिकट चाहिए तो मेरे पास है.

—नेकी भी पूछ-पूछ? रमेश हंस दिया.

—मेरे दोस्त की अचानक तबीयत खराब हो गयी. मैं तो सोच कर आया था कि दोनों टिकट लौटा दूंगा पर आपका साथ भी बुरा न रहेगा, वह हल्के-से मुस्कराया. उसके व्यक्तित्व में आकर्षण के साथ एक तरह का सादापन था. जरा-सी बात ने उनको बहुत करीब ला दिया. फिल्म के बाद काफी देर तक 'क्वालिटी' में बैठे बातें करते रहे. संयोग की बात है कि वह उसके होने वाले बहनोई का मित्र निकला और कानपुर से आये हुए उसे तीन वर्ष हो गये हैं और स्वयं नरेश को छह साल. इस बीच वह केवल एक बार इलाहाबाद गया है. वह भी कम्मो की सगाई पर. उसके विपरीत प्रकाश तीन बार कानपुर हो आया है, इस बार छुट्टियों में वह पूरे घर वालों को दिल्ली ही ले आयेगा.

शाम को लौटते समय भीड़ क्या बढ़ती है, लगता है, भीड़ का समुद्र है जो हिलोरें ले रहा है. सुपर बाजार के सामने, मिनी बस, ग्रीनलाईस की लाइनें लगी थीं. टिकट जल्दी-जल्दी कंडक्टर दे रहा था, तब ही एक चीख उभरी—साले ने मार डाला! टिकट की लाइन भीड़ की शकल में जमा हो गयी. मिनी बस के पहिए के बीच किसी युवक की कुचली लाश पड़ी थी. खून फैल गया था और उस खून में डबल रोटी के ताजे टुकड़े तैर रहे थे—अरे यह तो कृषि भवन में काम करता है!

—पकड़ो साले को!

—अंधे हो कर चलाते हैं!

वह भी आगे बढ़ा, बिजली कौंधी. तीन मास पहले सिनेमा के सामने क्वालिटी का सब दृश्य सामने आ गये. उसके बाद फिर कभी मुलाकात ही न हुई और आज तीन मास बाद यूं. . . .वह आगे बढ़ा, तब ही कंडक्टर की सीटी गूंजी. 'चलो-चलो', शोर मचाती, गाली बकती भीड़ यंत्रचालित-सी सीटों पर जमने लगी. वह जड़ित-सा वहीं खड़ा रहा. एक ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा—वह आपका जान-पहचान का था क्या? उससे उत्तर न देते बना. केवल सूनी आंखों से उसने उस प्रश्न पूछने वाले की ओर देखा.

—मेरी मानिए तो फूट लीजिये, ड्राइवर-पुलिस जानें, बेकार में आप फंसियेगा. वह चौंका. अब भी उसके मस्तिष्क में विराम चिह्न जलबुझ रहा था.

—चलो भइया, पुलिस आती होगी, वरना बेगुनाह हम भी फसेंगे कि बयान दो. वह चौंका, नीली मिनी बस, काली सड़क, लाल खून, सफेद डबल रोटी के टुकड़े, गोश्त का बेजान पुतला. वह चौंक पड़ा. कानपुर में इसका कुटुंब? वह भाग कर चलती बस पर चढ़ गया. नहीं, नहीं, उसे नहीं रुकना चाहिए. १५ दिन बाद ही तो कम्मो का विवाह है. उसे भी तो छुट्टी चाहिए. वह धप से सीट पर बैठ गया. कहीं से आवाज उभरी :

—तुम बचाव की सोच रहे हो न?

—नहीं, बगावत की.

—एकदम, वरना भागे क्यों? तुम पत्थर नहीं हो?

—नहीं-नहीं, कभी नहीं. मैं पत्थर नहीं बल्कि भावनाओं व संवेदनाओं से बना इंसान हूं.

—झूठ, तुम केवल एक बुत हो.

—नहीं, मैं इंसान हूं. इंसान की भी इंसानियत की एक सीमा होती है, मजबूरी होती है

—हठ छोड़ दो. अरे मान जाओ कि तुम इस बुतखाने के केवल बुतमात्र हो.

—नहीं-नहीं मैं तमाशबीन नहीं हूं. मैं बुत नहीं हूं. आखरी दम तोड़ती कोशिश उसने की.

—बहस छोड़ो, तुम केवल एक बुत हो, वह भी इस बुतखाने का. और उसका सर एक ओर लुढ़क गया. □□□

द्वारा डा. आर. सी. शर्मा,
स्कूल आफ इंटरनेशनल स्टडीज,
न्यू मेहरौली रोड, नयी दिल्ली.

इम्तहान

• अजित

घर के सामने खेत की मेड़ पार करते सर्दी से ठिठुरे नंगे पांव में बड़े जोर की ठेस लगी. वह बुरी तरह लड़खड़ा गया. अचानक इस तीखे दर्द के लिए वह तैयार नहीं था. कुछ देर लगा कि पूरा बांया पैर एकदम सुन्न हो गया है. आह-ऊंह के साथ मुंह से निकली सिसकियां उसकी अपनी नहीं लग रही थीं. दिमाग में एक साथ कई खयाल, शकुन-अपशकुन उभर आए. थोड़ी देर बाद लंगड़ाते हुए वह धीरे से आगे बढ़ा. एक बड़े जोर की खीझ उसे एक साथ घरवाली, शिवालेवाले पंडित और शिवलिंग पर जल चढ़ाती गांव के उन ऊंचे घरों की औरतों पर आयी जो दोपहर में रोज लड़ती-झगड़ती या शिकायत-चुगली करती, शाम को अक्सर अपने-अपने मर्दों को कुछ देर भारी तनावों में खड़ी कर देती हैं. आज इन्हीं की वजह से उसे आधे घंटे तक इस कड़ाके की ठंडक में सुबह नंगे बदन लोटा लिये शिवाले के दरवाजे पर खड़ा रहना पड़ा गया. वह तो चाह रहा था कि घर के सामने वाले बरगद के नीचे ही जल चढ़ा दे, पर सुबास की मां माने तब तो! गांव के इस बड़े शिवाले में जल चढ़ाने से जाने कौन-सा बड़ा पुण्य हो जाएगा. वह पंडित ऐसे घूर रहा था जैसे कह रहा है, अरे, तू कब से बगला भगत बन बैठा रे! जल चढ़ाकर लौटती वे औरतें ऐसे चुभते हुए ताकते हुए गुजर रही थीं जैसे उसके सामने की हवा भी उन पर पड़ गयी तो फौरन सैकड़ों गाय मारने का पाप सिर चढ़ जाएगा. नहा-धोकर जल चढ़ाने के फिजूल बखेड़े में न पड़ कर वह तो सुबास के साथ ही निकल जाना चाहता था. मगर ससुरी इस घरवाली की कल रात ही से यही रट लगी रही कि बिना नहाए-धोए बेटे का 'रिजल्ट' सुनने कैसे चल दोगे?

घर से निकलते यही तो शुरू-शुरू मिला फल. बाछी के लिए कुट्टी काटना था और इसी तरह कई छोटे-बड़े काम करने को रह गए, जिसे यह औरत भला काहे को याद रखेगी! वैसे उसका स्कूल जाना भी फिजूल ही लग रहा था. बहुत से गार्जियन आज के दिन लड़कों के साथ जाया करते हैं, तो उनके पास उनके लिए वक्त होता है. अपने पास तो दम मारने की भी फुर्सत नहीं. तिस पर भी आज इस महंगी में खाने को लाले पड़ रहे हैं. लड़के को पढ़ाना-लिखाना क्या खाक होगा! अब आज स्कूल से घर लौटते-लौटते आधे दिन से ऊपर चढ़ जाएगा. तब दीपा साहू भला अपने खेत में आलू-कोड़ाई के लिए काम लगाने पर क्यों तैयार होगा?

अचानक वह रुक गया. पलट कर पीछे देखने लगा. अब वह बड़ी दूर निकल आया है वरना पत्नी से चल कर कह देता कि लड़की को लेकर तब तक वहीं दीपा के खेत में काम शुरू कर देती, फिर दोपहर तक वह भी आ जाता. हड़बड़ी में कहना भूल गया और अब तो सामने वाले बगीचे को पार करते सिर्फ एक ही मील रह जाएगा, लड़के का स्कूल. कोई इधर-उधर अपने पड़ोस का लड़का भी नहीं दीख रहा है कि यह खबर घर भिजवा दे. आगे-आगे दो तीन लड़के जो दीख रहे हैं, वे ऊंचे घरों के हैं, जिनसे कुछ कहना-सुनना भी बेकार है. शायद सामने इस तुलसीराम के बगीचे में कोई लड़का मिल जाए, यह सोच कर वह तेजी से मेड़ पार करता बगीचे में आया, मगर यहां भी कोई नहीं दीखा. बगीचे में एक किनारे मचान लगाए, तुलसी-राम दो तीन गांव के दोस्त मुहिम के साथ गांजे का दम लगा रहा था. बगीचे से सटे उसके कई खेत पड़ते थे. पूरब वाले खेत में लगे ईख के अगोरिया में इधर महीने भर से बगीचा गुलजार किये बैठा रहता है. बिना रुके ही वहां से निकल जाना चाहा, पर तुलसी के बगल में बैठे बंसी ने उसे देख लिया. उसने तुलसी को भी दिखा दिया और तुरत तुलसी उसे पुकार बैठा. यह सुनकर कि वह बेटे का रिजल्ट सुनने दरियापुर जा रहा है, तुलसी ठठाकर हंस पड़ा. एक साथ ढेर सारा धुआं मुंह-नाक से छोड़ते उसी में डूबे-डूबे बोला—हर दयाल-राम ! यह रिजल्ट लड़के का होगा. उसे सुनने लड़का गया होगा. इसमें तुम्हारा क्या काम?

—नहीं भाई, जरा आज के दिन खुद भी चले जाने से शायद मास्टर लोग ध्यान. . .

—मास्टर लोग क्या ध्यान देंगे? अपने से आज किसी को फुर्सत है जो कोई दूसरों पर और वह भी तुम्हारे जैसों पर ध्यान देगा. बताओ तो जरा हमें कि अभी तक तुम्हारे सुबसवा पर मास्टर लोग किस किस्म का कितना ध्यान दिया है ? उसे कौन-सी सुविधा मिली है? . . थोड़ी देर रुक कर तुलसी हरदयाल को ताकता रहा. फिर जरा आगे की तरफ झुका, हरिजन-फंड से हरिजन बच्चों के लिए जो सरकारी अनुदान आते हैं, क्या उसमें से कभी तुम्हारे लड़के को कुछ मिला है? केवल स्कूल में फीस नहीं भरते या स्कूल से मिला भी है कभी कुछ?

हरदयाल चुप खड़ा मुंह ताकता रहा. तुलसी तब तक दम मारने लगा.

—आओ काका, दो मिनट बैठ लो. हम भी चलेंगे. अपने छोटका का रिजल्ट सुनने. मचान पर एक तरफ थोड़ी जगह बंसी ने छोड़ी. अभी-अभी तुलसी 'का' पांडे-पुर वाले स्कूल का एक किस्सा सुना रहे थे. . .

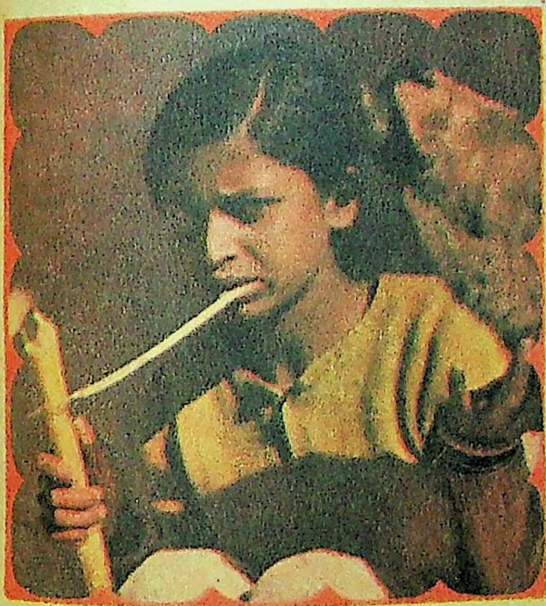
हरदयाल को याद आया कि कुछ साल पहले तुलसी पांडेपुर वाले स्कूल में चपरासी और जाने क्या-क्या, बहुत कुछ था. स्कूल की बहुत-सी बातें यह जानता होगा. काफी दिनों तक वहां रहा. थोड़ी तुनकमिजाजी में सुना था एक दिन हेड मास्टर से लड़-झगड़ कर हट गया. हरदयाल बैठ गया. पूछा—क्या किस्सा है भइया, तुलसी भगत ?

—कुछ नहीं , . . .चिलम बगल में बैठे हीरा को

बढ़ाते उसने अपनी छोटी-सी मूंछ सहलाई, वही हर जगह का दांवपेंच, पक्षपात, बेईमानी और दूसरा क्या?

—कैसा पक्षपात, कैसी बेईमानी? हरदयाल जैसे कुछ समझ नहीं सका.

—तुम्हें क्या मालूम, आंख मूंदे पैदा हुए और आंख मूंदे मर जाना, तुलसी थोड़ी झुंझलाहट में खिलखिलाया, अरे स्कूलों में तो वह सब चलता है जो शायद कहीं भी नहीं चलता. मास्टर लोग गुरू कहलाते हैं न. कोई कैसे जानेगा उन्हें! अब तू ही देखो, तू क्या जानता कि दरियापुर वाला स्कूल तेरे-मेरे लड़कों को पढ़ाने लिए खुला है? दरियापर वाले हेडमास्टर कल तक पांडेपुर वाले स्कूल में मास्टर रहे और आज वहां छोड़-कर एकदम बगल के गांव में दूसरे स्कूल को खोलने की क्या जरूरत पड़ गयी? क्या पांडेपुर वाले स्कूल में अगल-बगल चारों तरफ के गांवों के लड़कों के लिए कमी हो गयी थी? नहीं समझा तू अब भी इस जातिवाद को. . .अरे भई, बिलकुल साफ तो है कि पांडेपुर वाला



• ब्रह्मदेव

स्कूल अगर बांभनों का हुआ तो दरियापुर में ठाकुरों के लिए भी एक स्कूल खुलना चाहिए न! तब भला आज इसमें तेरे-मेरे लड़के की पढ़ाई-लिखाई पर कौन ध्यान देने जा रहा है? दूसरी यह बिलकुल साफ बात है और समय इतना गंदा हो गया है कि पहले की तरह बच्चों में पढ़ाई-लिखाई करनेवाले अब मास्टर रहे हीं कहां? तू जाकर अपने उस मित्र की दुम हरिहरवा से क्यों नहीं कहता जो यहीं का होकर भी ऐसी कोई व्यवस्था तुम लोगों के लिए क्यों नहीं कभी सोचता? सोचेगा कैसे? सोचना तो दूर रहा. राजधानी से जब कभी आना भी होता है तो यहां न आकर दरियापुर में ठाकुर के यहां ही ठहर लेता है. ठीक ही है. यहां क्या धरा है! यहां तुम्हारे-हमारे पास कौन-सा सलीका-तरीका है जो उसे ठहरा लें. ठाकुर की मदद से वह इत्ती दूर पहुंचा है कि हमने उसे क्या दिया जो हमारी बात पर सोचेगा? वह तो कभी-कभी थोड़ी-सी इसलिए सुन-सोच लेता है क्योंकि बदकिस्मती से हमारी-तुम्हारी जाति का है.

हीरा के बढ़ाने पर तुलसी दम मारने के लिए चिलम पर चिथड़ा ठीक करने लगा. हरदयाल को उसकी बातें घाव पर छनछनाते मलहम-सी लग रही थीं. वह जानता है कि तुलसी कितना सही आदमी है, केवल मुंह के फुहड़पन को छोड़ कर हालांकि उसे कभी इतनी भी फुर्सत नहीं मिली कि किसी बात पर कभी कुछ गौर से सोच सके. बस इसी तरह तुलसी या दो-एक उसी तरह के पड़ोसियों की देखादेखी वह अब तक सब कुछ करता आया. बंसी एकाएक उठ खड़ा हुआ. हीरा चिलम को उलट कर बांस की फट्टी पर झाड़ने लगा.

—अब चलो काका रिजल्ट सुनने, उसने हरदयाल की कुछ अंगुलियां पकड़ कर खींचीं, तुलसी 'का' की बातों में शाम तक उठने का नाम न ले सकोगे.

तुलसी भी एक दम उठ खड़ा हुआ—हां, भई, जाओ सुन आओ रिजल्ट, तब तक मैं देखूं कि ये क्या सुनाने आ गए, ईख. . .से सटे अपने दूसरे खेत में इशारा करता वह लाठी लेकर दौड़ पड़ा. हरदयाल ने देखा, गेहूं की नन्ही बालों पर एक सांड मुंह मारने लगा था. हीरा के साथ बंसी हंस रहा था. हरदयाल आगे बढ़ गया. हरिहर सचमुच अब इस गांव में एकदम नहीं आता. कुछ वर्ष पहले पांडेपुर वाले मिसिरजी के साथ ठाकुर किरपाल सिंह का 'पनवट' को लेकर जो झगड़ा चला था, उसमें ठाकुर साहब की हरिहर ने खूब मदद की थी. उसी साल तो दरियापुरवाला यह स्कूल भी नया खुला था. लेकिन यह तुलसी 'हरिजन-फंड' के बारे में क्या कह रहा था?

उसने बंसी की ओर देखा. वह ईख चूसते हुए कुछ अलग सोचता चल रहा था.

—अच्छा बंसी, मैं तो अनपढ़ ठहरा. कभी-कभी तुम लोगों की कोई बात मैं एकदम नहीं समझ पाता. यह तुलसी क्या कह रहा था हरिजन-फंड के घोटाले के बारे में . . . .

लेकिन बंसी अभी कुछ समझाने के मूड में नहीं था.

—अरे छोड़ो काका, यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आएगी. तुलसी 'का' की बातें उन्हीं से समझना. मैं तो खुद अपने छोटका को लेकर परेशान हूं. बाबू से कई मर्तबा कहा कि बेकार आटा गिला रहे हो. छोटका को कोई काम पर डाला जाय. पढ़ाई-लिखाई इसकी आज के स्कूल और मास्टरों से हो चुकी. मगर मेरी कोई सुने तब तो. यहां तो दिहात-गंवई में इन मास्टर लोगों का कुछ चल भी रहा है लेकिन शहर में तो लड़के अब इन्हें कुछ बूझते ही नहीं. हमेशा आग लगी, हड़ताल और अपनी तरह-तरह की मांगों से स्कूल-कालेज कंपाए हुए हैं. ऐसे में भला क्या सीखने के लिए बच्चों को स्कूल में दोगे? अच्छा छोड़ो, यह तो बताओ कि सुबसवा पास-वास करेगा? मेरा छोटका तो लगता है फेल कर दिया जाएगा. . .

—फेल कर दिया जाएगा. हरदयाल की भौंहे तन

गयीं. क्या मतलब ?

—मतलब भी समझाऊं, बंसी ने कुछ आवाज दबाई, मतलब यही समझ लो कि वहां एक मास्टर है, धर्मराजजी. वे ट्यूशन पढ़ाते हैं. छोटका से बोल रहे थे कि इस साल उनसे पढ़ा नहीं इसीलिए पास करने की उम्मीद कम है. बताओ भला, जरा इसका मतलब? स्कूल में बच्चे आखिर क्यों जाते हैं? फीस क्यों देते हैं? अब जिनके पास स्कूल फीस के अलावे ट्यूशन के पैसे होंगे, उन्हीं के बच्चे पास-वास करेंगे या पढ़ सकेंगे. यह तो शहरवाले अस्पताल जैसी हालत हो गयी.

* *

स्कूल नजदीक आ गया. कुछ लड़के दौड़-दौड़ कर स्कूल के अहाते की एक तरफ टूटी दीवार फांद कर भीतर जा रहे थे. बंसी के साथ हरदयाल गेट की ओर से होकर अहाते में घुसा. भीतर भीड़ थी, हर ओर लड़के और गार्जियन बिखरे हुए थे. जिनके लड़के इस स्कूल में नहीं थे, वे भी अपने कुछ मित्रों की वजह से आए हुए थे. इस तरह कई गांवों के लोग थे, जिनमें लगभग सभी को हरदयाल जानता था. सलाम-वंदगी हुई. कुछ मास्टर स्कूल के बरामदे में और कुछ बाहर लान में कुर्सियां डाले धूप सेंक रहे थे. कुछ मास्टर लोग इधर-उधर गार्जियनों से बातें करते टहल करते रहे थे. लेकिन सुबास कहीं नजर नहीं आया. बंसी के पूछने पर एक शिक्षक कुछ रूखा होकर कहने लगा कि उसका छोटका उसकी जेब में तो नहीं हो सकता, इन्हीं लड़कों के बीच उन्हें ढूंढ़ा जा सकता है. तभी सेदवा के मास्टर श्री भगवान सिंह ने मक्खी उड़ाने जैसी आवाज लगायी—लो हरदयाल! तुम्हारा सुबास तो नेता बन गया है. संघ के कार्यालय में हेड मास्टर साहब की चिट्ठी पहुंचाने शहर गया है.

हरदयाल ने हाथ जोड़ कर दांत निकाल दिये. मगर बंसी उसे दूसरी ओर खींच ले गया—काका मैं खूब पहचानता हूं इन लोगों की बोली. हेड मास्टर संघ का कुछ मंत्री-वंत्री भी है. स्कूल में चपरासी तो बस एक ही है और काम ढेर सारा. तुम्हें क्या मालूम कि ये कैसे-कैसे काम लड़कों से करवाते हैं!

हरदयाल ने इस बार जल्दी से बंसी का हाथ दबाते अलग खींचा—चुप भी रह भइया, सुबास कह रहा था कि पार साल यही चिट्ठी वाला काम एक ठाकुर का लड़का करता था इसीलिए उसे फेल होते हुए भी कुछ नंबर बढ़ाकर पास कर दिया गया.

फिर सोचने लगा, लेकिन आज तो सुबास अच्छी तरह जल्दीबाजी में कुछ खा-पीकर भी नहीं चला है. शहर दो-तीन मील पड़ता है. लौटते-लौटते उसका मुंह सूखकर चोंचा हो जाएगा.

तभी दरियापुर के नामी रईस बाबू झब्बनसिंह हाथी पर अपने साथ कुछ लोगों को लिये हेड मास्टर साहब के कक्ष के बंद दरवाजे पर आ खड़े हुए. झब्बनसिंह से लोग दूर-दूर तक कांपा करते हैं. चपरासी जो बंद दरवाजे के पास भी किसी को खड़े नहीं होने दे रहा, उनके लिए भीतर जाने का दरवाजा झट से खोल दिया. भीतर हेड मास्टर अपने सहयोगियों के साथ मिलकर तय करते हुए ऊंचे-ऊंचे वर्गों के परीक्षा-फल तैयार कर रहे थे और चपरासी को हिदायत थी कि दरवाजे के पास भी किसी को फटकने नहीं देना है.

—आओ काका, हम हेड मास्टर साहब के इस कमरे के पीछे वाली खिड़की की तरफ चलें, बंसी हरदयाल को घसीटे लिये जा रहा था, उस खिड़की की तरफ से हम छिप कर भीतर की बात तो कम-से-कम सुन ही सकते हैं.

हरदयाल को यह ठीक नहीं लग रहा था. कहीं उसमें से हेड मास्टर खुद झांक कर हरदयाल को देख लें तो. लेकिन जब सामने से घूम कर पीछे इस खिड़की के निकट हरदयाल ने दो-चार और लोगों को छिप कर कान लगाए खड़े पाया तो बंसी की खींच में उसने ढील दे दी. नजदीक जा कर भीतर की आवाजें एक दम साफ-साफ उसने सुनीं. कभी-कभी कई लोग आपस में कुछ इस तरह से बातें करने लगते कि बाहर शोर में मिलजुल कर एकदम गडमड हो जाती. पर कभी-कभी दो-एक आदमी जब बोलते और तमाम लोग चुप रहा करते तो कुछ पल्ले पड़ता. झब्बनसिंह की आवाज भारी और कड़कती-सी थी. बीच-बीच में हेड मास्टर की धीमी-सी आवाज भी सुनाई पड़ती. वह किसी बात पर समझा कर शायद झबनसिंह को राजी करना चाहता था. एक और आवाज जो बार-बार बीच में सुनाई पड़ती, हरदयाल को लगा जैसे बी. डी. ओ. साहब की है. झब्बनसिंह ने इस बात को कई बार दुहराया कि एक लड़के को किसी भी कीमत पर पास कर देना पड़ेगा. वरना वह नदी में डूबने चल देगा.

—डूब भी मरो तो अच्छा रहेगा, बंसी ने धीरे से कहा, इन ऊंचे लोगों ने नाज-नखरे भी बड़े गजब के होते हैं काका. . .

—अच्छा हटो अब जल्दी से, हरदयाल बंसी को खींच कर जिधर से आया था, उसी तरफ लौटने लगा. मगर बंसी अपना बकना जारी रखे रहा, काका, कान खोल के सुन लो, हमारे-तुम्हारे लड़के पढ़ने और पास करने के लिए नहीं पैदा हुए हैं क्योंकि हमें ये नाज-नखरे नहीं आते और अगर आएंगे भी तो कोई इन्हें बर्दाश्त नहीं करेगा.

* *

हेड मास्टर के गेट पर आ कर हरदयाल ने देखा झब्बनसिंह, हेड मास्टर और बी. डी. ओ. साहब एक ही पत्ते पर से पान और चूना वगैरह उठा रहे हैं. हरदयाल को याद आया कि बी. डी. ओ. साहब उसी की जाति के हैं. तीनों पान मुंह में डाल कर सींक से चूना एक ही पत्ते से उठा रहे थे. झब्बनसिंह का चेहरा कुछ इस तरह खिला हुआ था जैसे खून के केस में बेलाग डिग्री हुई हो.

सबको प्रसन्न पा कर हरदयाल आगे बढ़ा और बरामदे पर चढ़ गया—सरकार, हमारे सुबसवा का क्या हुआ?

हेड मास्टर ने कुछ पहले तो अनसुनी जैसा रवैया दिखाया पर हरदयाल के दुबारा पूछने पर उसकी कनपटी की नसें तन गयीं और लाल आंख किये उसने उसे घूर कर देखा. फिर जाने क्यों झटपट तिरछी नजर फिरायी—देखिए भाई, ये क्या कह रहे हैं?... फिर बी. डी. ओ. के साथ बाहरी गेट की तरफ बढ़ गया. कुछ लोग उसके पीछे-पीछे लपके. हड़बड़ाए, से एक शिक्षक ने हरदयाल को धूप में बैठे शिक्षकों की तरफ इशारा किया और यह कहते हुए हेड मास्टर के पीछे दौड़ गया—तुम्हारे लड़के का 'रिजल्ट' हो गया. वहां ओझाजी बैठे हैं, उन्हीं से पूछो.

हरदयाल ओझाजी की तरफ बढ़ा. बंसी शायद हेड मास्टर साहब के पीछे वाली भीड़ में आगे निकल चुका था. एकाएक हरदयाल को मुख्य गेट से आता हुआ सुबास दिखलाई पड़ा. उसके हाथ बंसी का छोटका भी था. हरदयाल उसी की तरफ मुड़ा लेकिन जल्दीबाजी में मेंहदी की बाड़ के साथ लिपटे कांटेदार तारों से उसकी धोती बुरी तरह उलझ कर 'चर्र' से फट गयी.

—कहां चला गया था रे, हरदयाल ने सुबास की कलाई पकड़ ली, इतना हांफ क्यों रहा है? चल, उधर ओझाजी तुम्हारा 'रिजल्ट' बताएंगे.

ओझाजी हाथ पर खैनी मल रहे थे. उनके बगल में अपने गांव के मास्टर नरेशलाल कुछ इस तरह मुंह फेरे बैठे थे जैसे हरदयाल कुछ कर्ज मांगने आ पहुंचा हो. ओझाजी सुबास को देखते ही आंखों में उदासी भरे हुए होंठ बिदोरकर सिर हिलाने लगे.

—क्या, सरकार, यह फेल हो गया है? हरदयाल को डंक मारने जैसा झटका लगा.

—हां जी, गलत काहे कहूंगा, ओझाजी ने खैनी ठोककर मुंह में फक्की जैसी झोंक मारी. फिर रजिस्टर के पास रखे एक पुलिंदे पर झुके—लो खुद ही देखो.

—अब क्या होगा सरकार? हरदयाल एकदम कातर हो गया.

—मैं क्या कहूं, अब तो कुछ भी नहीं होने का, ओझाजी अब कुछ झुंझलाए, अब फाइनल 'रिजल्ट' सुना दिया गया. तभी किसी वर्ग से लड़कों की तालियां और 'जय हिंद' के नारे सुनाई पड़े. वहीं पर एक मास्टर के साथ हंसते हुए बंसी भी दीखा. उसे देख कर छोटका उसकी तरफ दौड़ा. इसी बीच हेड मास्टर अपने सहयोगियों के साथ उस वर्ग से निकला और सबको वहीं छोड़ कर अकेला बाहर खड़ी बी. डी. ओ. की जीप की तरफ बढ़ चला. इधर मास्टर नरेशलाल अपने सामने वाले एक नए मास्टर से अंग्रेजी में जाने क्या-क्या बतियाने लगे. उनकी आवाज में तीखापन था और हरदयाल को लगा जैसे कहीं-न कहीं से उनकी बातों का विषय वही तो नहीं है, क्योंकि जो दूसरे मास्टर थे, वे कभी कभी बीच-बीच में उसे और सुबास को देख लेते थे. तभी नरेश लाल के बगल में बैठे हेड पंडितजी ने सुंघनी का डिब्बा निकाला और सुबास की तरफ चुटकी लेने की अंदाज से ताका—कहां चले गए थे कि अब आ रहे हो 'रिजल्ट' सुनने, कहीं ताड़ी-भंग पी रहे थे क्या?

—ना सरकार, हरदयाल ने तेजी से हाथ जोड़े, यह सब बुरी आदत इसमें नहीं. संघ में हेड मास्टर साहब की चिट्ठी पहुंचाने चला गया था. काफी रात-रात तक पढ़ा करता था. कैसे फेल हो गया हजूर?

—सब यही कहते हैं, पंडितजी छींकने लगे.

—नहीं माई-बाप, जो सौंगंध कहिए खा लं जो झूठ कहूं, हरदयाल ने उनके घुटने छूने झुकना चाहा, पर तुरत रुक कर हाथ जोड़ लिये. पंडितजी का स्पर्श हरिजनों के लिए कैसे हो सकता है? उसी तरह खड़े-खड़े कहने लगा, सरकार, संघ में चिट्ठी पहुंचाने का काम भी इस साल यही करता था. सुना था कि इस काम को करनेवाले लड़के पर विशेष ध्यान दिया जाता है.

इस बार ओझाजी बिगड़ पड़े.—वाह, अच्छी कही तुमने! एक यही चिट्ठी पहुंचाने वाला है कि सैकड़ों लड़के हैं. हेड मास्टर साहब के सामने यह कहोगे तो अच्छी सुन लोगे. यह काम इस पर लादा थोड़े गया होगा. वैसे अगर तुम्हें तसल्ली नहीं हो रही है तो जरा देर और ठहर लो. शायद हेड मास्टर साहब लौट कर आवें.

हरदयाल ठहर गया. बरामदे में एक खंबे से सटकर सुबास के साथ जा बैठा. कुछ गार्जियन अपने बच्चों को लेकर उन शिक्षक लोगों के पास आते रहे, जाते रहे. कुछ लोग पास होन की खुशी में मिठाइयों का दोना भी लाते रहे. चपरासी या खुद वे लड़के ही दौड़-दौड़ कर गिलास भर-भर कर पानी लाते रहे. हरदयाल सुबास को यह सब देखते हुए देखता रहा और भीतर-भीतर लगातार कुछ-न कुछ टूटते हुए संभालता रहा. धीरे-धीरे सब खत्म होने लगा. भीड़ गायब हो गयी. मास्टर लोग चल दिये. धूप ढलने लगी.

कुछ देर बाद कुर्सी-टेबल भीतर बंद कर और सभी कमरों के ताले खींच-खींच कर देख लेने के बाद चपरासी हरदयाल के पास आ खड़ा हुआ. इस तरह वह दो-तीन बार पहले भी खड़ा हो चुका था. पर इस बार उसके चेहरे पर व्यंग्य नहीं था—अरे अब उठो, जाओ भइया, शाम डूबने को आयी. अब का आवेंगे हेड मास्टर साहब! बड़े दिन की छुट्टी बीतने के बाद ही अब उनसे भेंट हो सकेगी. घर पर भी अब उनसे भेंट न हो सकेगी. हां, शहर पहुंच कर संघ में चाहो तो उनसे मिलने जा सकते हो...

हरदयाल उठ खड़ा हुआ. पैर झनझना रहे थे. सुबास के चेहरे पर नजर डालते और झनझनाने लगे. उसका खून जैसे एकदम सूख गया हो.

—चल बेटा, घर चलें, डबडबायी आंखों को बेटे से छिपाते हरदयाल ने उसे सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाया. □□□

तरी महल्ला, आरा (बिहार)

कितना दुख

• प्रेमचंद सहजवाला

ट्रेवेन की आंख खुली तो कुछ देर यूं ही बस्तर पर लेटा रहा. रात भर काफी पानी बरसता रहा. बीच में बारिश की आवाज के कारण कई बार उसकी नींद खुली. लेकिन इस समय बारिश बहुत कम, लगभग नगण्य है.

बिस्तर से उठ कर वह बाहर आया और गुसलखाने में लोटा उठा कर आंखों पर पानी के छींटें मारते हुए उसने सोचा, आज सबसे पहले स्टेशन जा कर दफ्तर के स्टोर का वह पार्सल छुड़वाना है जिसकी कल बिल्टी आयी थी. वह रोज इसी प्रकार आंखों पर छींटें मारते समय ही सोच लेता है कि आज दफ्तर का क्या-क्या काम करना है.

कमरे में पहुंच कर उसने आंखें पोंछीं और कुर्सी पर बैठ कर, मेज पर रखी सिगरेट की डिब्बी से एक सिगरेट निकाल कर सुलगाई. साथ के कमरे में चपरासी केशव की पत्नी शायद नाश्ता बना रही थी. उसने सोचा, अभी केशव को बुला कर सख्त-सी आवाज में आदेश दे दे कि जल्दी से जल्दी तैयार हो जाए लेकिन उसे लगा केशव नहीं चलेगा. रात सोने से पहले उसने केशव से सुबह रेलवे स्टेशन चल कर पार्सल छुड़वाने की बात कही तो केशव उसकी बात सुनी-अनसुनी कर के बोला था—देखूंगा जी, बारिश न हुई तो चल्या चलूंगा.

कोने में स्टोव पर चाय बनाते समय उसे एक क्षण के लिए अनायास स्वयं पर खीझ हो आयी कि वह जाने क्यों, लोगों के साथ जरूरत से ज्यादा नर्मी से पेश आता है. उसने कई बार सोचा है कि केशव के खिलाफ रिपोर्ट लिख कर मेज दे कि वह गैरकानूनी तौर पर दफ्तर के दो कमरों में अपनी बीवी और तीन बच्चों समेत रह रहा है. लेकिन उसे लगा है —शायद वह ऐसा नहीं कर पाएगा. अपनी नौकरी के दौरान यह बात उसने बड़ी गहराई से अनुभव की है कि जहां-जहां वह अपने आचरण में एक सही व्यक्ति रहा है या उसने कहीं गलत हो रहे कुछ के खिलाफ कदम उठाया है, वहां-वहां वह नितांत अकेला पड़ गया है. पर गलती के साथ स्वयं भी समझौता करना उसने कभी गवारा नहीं किया. अलबत्ता गलत लोगों के प्रति एक तटस्थता या उपेक्षाभरी विरक्ति का नजरिया उसे अधिक सम्मानजनक लगा है.

नहा-धो कर तैयार होने के बाद दफ्तर के मुख्य कमरे में आ कर उसने उपस्थिति-रजिस्टर में हस्ताक्षर किये. जिस कंपाउंड में उसने चालीस रुपए किराए पर कमरा ले रखा है, उसी में चार कमरे दफ्तर के भी हैं, जिनमें से दो केशव ने घेर रखे हैं. इस शहर में उसके ट्रांसफर से काफी पहले से ही केशव यहां रहता था. इस छोटे से दफ्तर में मात्र दो कर्मचारी हैं. वह, मुख्य अधिकारी, केशव चपरासी.

हस्ताक्षर कर के वह अपने कमरे में आ गया. केशव की पत्नी अपने कमरे में चारपाई पर बैठी ही-ही कर के हंस रही थी और तहमद-बनियान पहने खड़ा केशव अपने आठ महीने के मुन्ने को कंधे पर बिठा नचा रहा था. उसने सोचा इस समय अगर वह केशव को बुला कर स्टेशन चलने को कहे तो केशव चौंक कर पूछेगा, इस बारिश में ? ऐसे कि जैसे वह पागल हो. और अंदर ब्लाउज-पेटीकोट पहन कर बैठी उसकी बीवी ही-ही कर के हंस पड़ेगी.

—मैं तो कैत्ता ऊं जी, आप भी जाओ मत. अब आप वां पौंचें और बारिश पड़े जबर्दस्त . . . अभी कुछ दिन पैल्लैई तो आप की तबियत ठीक हुई है . . . दो दिन बाद चल्ये चलेंगे जी. दफ्तर का पार्सल है, कौन भाग्या जा हो ऐ. केशव मुन्ने को कंधे पर उठाए, उसके बुलाए बिना ही कमरे में आ टपका था और अब उसे 'सलाह' दे रहा था, मैं तो कैत्ता ऊं जी आप भी जाओ मत . . .

—नहीं, उसने बड़ी सख्त-सी आवाज में कहा और उठ खड़ा हुआ. कम से कम अपने लिए वह एक जिद्दी आदमी है. बेहद. बारिश लगभग नगण्य थी जिसमें आदमी चाहे तो बिना छाते ही दूर-दूर तक जा सकता है.

स्टेशन पर पार्सल रूम के दरवाजे उढ़के हुए थे और बाहर नीली वर्दी में बैठे दो-तीन आदमी बीड़ी फूंकते गप्पें हांक रहे थे. उन्होंने उसे बताया कि पार्सल वाला बाबू अभी आया नहीं. शायद आधे घंटे से पहले न आए. वहां से लौट कर दो प्लेटफार्मों वाले इस छोटे-से स्टेशन पर आधे प्लेटफार्म को ढंक पाने वाली छत के नीचे आ खड़ा हुआ. प्लेटफार्म पर बहुत भीड़ थी और एक अजीब कोलाहल-सा मचा हुआ था. यहां से दिल्ली और पानीपत जाने वाली गाड़ियों के मुसाफिर जैसे बौखलाए हुए जोर-जोर से बातें कर रहे थे. कई लोग उचक-उचक कर कंट्रोल रूम के बाहर लगे श्यामपट्ट पर लिखी सूचना बार-बार पढ़ रहे थे—दिल्ली से आनेवाली और दिल्ली की तरफ जाने वाली सभी गाड़ियां अनिश्चित काल तक स्थगित. लोगों की बातों से पता चला कि आगे बहुत पानी बरस जाने के कारण कोई पुल टट गया है. वह सिगरेट के कश खींचता सामने मुंडी के ऊपर के आसमान को देख रहा था. इस समय बारिश नहीं थी, लेकिन आसमान में काले-घने बादलों की तहें दर तहें बड़े भयावह ढंग से एक दूसरे पर जम-सी रही थीं. चिलचिलाती धूप और दोजख जैसी गर्मी से जब दो महीने होश उड़े रहे तो इसी बारिश की प्रतीक्षा में जैसे आंखें पथरा गयी थीं. पहले दिन आसमान में मंडराते बादल और ठंडी हवा देख मन मोर की तरह नाच उठा था. पर अब जोंक की तरह चिपक जानेवाली इस बारिश ने अजीब बेजार-सा माहौल पैदा कर दिया है. चार दिन से लगातार पानी बरस रहा है. कुछ गाड़ियां कल भी कैंसिल हुई थीं. आज सब कैंसिल

वह मुड़ कर फिर पार्सल रूम की तरफ गया. बाबू अभी आया नहीं था.

इस बीच वह स्टेशन से एकाध फर्लांग दूर चुंगी दफ्तर से भी निपट आया. चुंगी दफ्तर से इस बात का प्रमाणपत्र लाना था कि पार्सल सरकारी है इसलिए चुंगी माफ हो. वहां एक 'कांम्प्लीकेशन' यह आ गया कि एकदम नया चुंगी बाबू उसके दफ्तर के नाम से सर्वथा अपरिचित था और उसे पता नहीं लग रहा था कि इस दफ्तर के पार्सल की चुंगी माफ हो सकती है कि नहीं. बाबू काम करने के मूड में नहीं था शायद. वह कुछ देर सोफे पर बैठा रहा. मैला सफेद कमीज पहने बाबू मेज पर टांगे फैलाए मजे में केवेंडर्स सिगरेट फूंक रहा था और दो आदमियों से गप्पें हांक रहा था. उसके दो-तीन बार याद दिलाने पर उसने सरसरी निगाह बिल्टी पर डाली और हरियाणवी अंदाज में कहा——जे चुंगी माफ नहीं होग्गी जी.

उसके समझाने पर वह हर बार कहता——सो-तो ठीक ऐं जी पर जे चुंगी माफ नहीं होग्गी.

उसे बड़ी झुंझलाहट हुई. उसने बड़ी सख्त-सी आवाज में कहा——तो फिर इस एप्लीकेशन पर लिख दो कि माफ नहीं होगी ?

बाबू नर्म पड़ गया——तो बैठो जी फिर. अभी सुपरिंटेंडेंट साहब के दफ्तर जा कर गजेट में देखणा पड़ेगा कि आपके दफ्तर का नाम चुंगी माफ लिस्ट में है कि नहीं.

वह सोफे पर बैठ गया. चुंगी सुपरिंटेंडेंट का दफ्तर वहां से कुछ दूर नगरपालिका भवन में है. बाबू जाने के मूड में नहीं था. कुछ देर बैठा रहा और अब फिर कहने लगा——आप कल आ जाणा जी, मैं देख के रक्खूंगा.

उसने सोफे से उठ कर मेज पर एक मुक्का मार कर बाबू को सीधा खड़ा कर दिया——यह मुझे अभी चाहिए, उसे लगा पूरे के पूरे शहर को अकर्मण्यता ने अपाहिज कर दिया है.

पार्सल रूम के पिछवाड़े वाला दरवाजा स्टेशन की बाहरी सड़क की तरफ खुलता है. सामने छोटा-सा चौराहा है और दुकानों के पीछे कई एक-मंजिला, दो-मंजिला मकान भी. इसी दरवाजे के बाहर एक तंग-सी छत के नीचे वह खड़ा है. अपना अभी-अभी छुड़वाया हुआ पार्सल पास रखे हुए, और सामने बारिश है. बारिश भी कोई ऐसी-वैसी नहीं, मूसलाधार शब्द शायद इस बारिश को अभिव्यक्ति दे पाने में अक्षम हो. आंखें बंद करने पर आवाज से उफनते समुद्र में आए ज्वार का आभास हो, ऐसी बारिश. सड़क की सतह पर पानी और हवा की मिली-जुली क्रुद्ध लहरें क्रुद्ध सर्पिणियों-सी फुंफकारती एक जगह से दूसरी जगह जा रही हैं. लगता है, बारिश बाढ़ की तरह चौराहे के इस टुकड़े को ही अपनी जगह से हिला कर कहीं बहा ले जाना चाहती है. दूर-दूर तक दुकानों मकानों की छतें उफनते पानी से रिस रही हैं . . .



फो. एस. अग्रवाल

. . .और वह सिगरेट के कश खींचता इस बारिश को देख रहा है. जैसे देख नहीं रहा, इस सारी परिस्थिति को तौल रहा है . . .

उसे अनायास अपने कालेज के दिन याद आ गए और अगले क्षण उसने अपने शरीर में एक अजीब थ्रिल-सा महसूस किया. ऐसी ही मूसलाधार बारिश थी और प्रोफेसर कंवर का पीरियड सुबह साढ़े सात बजे था. कालेज उसके घर से चार-पांच किलोमीटर दूर था. मां के मना करने के बावजूद वह एक हाथ में छाता और दूसरे हाथ में साइकल का हैंडल थामे कालेज के लिए निकल पड़ता. ऐसी बारिश में प्रोफेसर कंवर की कक्षा में केवल दो विद्यार्थी पहुंचते थे. एक वह स्वयं, एक जितेंद्र कौर जो उसके पड़ोस में ही कहीं रहती थी. परे कालेज की कक्षाओं में केवल सन्नाटा होता क्योंकि ऐसी बारिश में प्रोफेसर भी क्यों आएं. लेकिन प्रोफेसर कंवर आते थे. कभी उसे देर हो जाती तो जितेंद्र प्रोफेसर कंवर से कहता, कुछ देर वेट कर लें, सर, देवेन आता ही होगा. कभी जितेंद्र न आयी होती तो वह कहता जितेंद्र अभी आ जाएगी, सर. प्रोफेसर कंवर कहते, दरअसल अगर हम क्लास में तुम जैसे दो-एक विद्यार्थी न होते तो मैं कब का यह प्रोफेसरी छोड़ चुका होता. तुम दोनों ही तो मेरी साधना का संबल हो.

★ ★

वह दस पंद्रह मिनट इसी प्रकार खड़ा रहा. उसे ध्यान आया, अभी दफ्तर में भी काफी काम है. सामने चौराहे के एक किनारे पंद्रह-बीस रिक्शे खड़े भीग रहे थे. रिक्शे वाले लगभग सभी वहां से गायब, शायद किसी चाय की दुकान में जा छिपे थे. वह सोचने लगा, इस वक्त कौन रिक्शे वाला यह चालीस किलो का बक्सा ले जाने को तैयार होगा? वह भी देवनगर! अच्छे-खासे दिनों में भी कभी कोई रिक्शेवाला स्टेशन से देवनगर जाने को बड़ी मुश्किल से तैयार होता है.

स्थानीय कालेज की पिछली लंबी दीवार के बाहर ऊबड़-खाबड़ से रास्ते पर कई छोटे-बड़े खड्डे हैं और पत्थर. फिर दफ्तर की ओर जाने वाली लंबी गली ढेरों मिट्टी और गारे से भरी रहती है. बारिश में यही मिट्टी आटे-सी गुंथ-गुंथ कर लबालब कीचड़ बन जाती है. दफ्तर वाले मकान की दीवार के समानांतर पानी का तालाब भी बन गया है. यह हिस्सा पार करने के लिए गेट से निकलते ही दीवार की तरफ मुंह कर के, उससे लिपट-लिपट कर धीरे-धीरे चल कर जाना पड़ता है. कौन जाएगा ऐसी जगह, इस बारिश में?

तभी उस की नजर एक रिक्शे पर पड़ी. केवल कच्छा और आधे खुले बटनों वाली फटी कमीज पहने एक रिक्शे वाला बाहर रिक्शे की सीट पर ही बैठा था और बड़ी मस्ती में पैडल उल्टा घुमा रहा था. बारिश का उस पर कोई असर ही नहीं. कैसे मजे से सीट पर ही उछलकूद रहा है! उसे लगा किसी न किसी स्तर पर उसमें और इस रिक्शेवाले में कुछ साम्य है जरूर.

इधर बायीं तरफ उसी तर छत के नीचे चारपाई पर पार्सल रूप के ही दो-चार कुली छोकरे बैठे थे. उसने एक से पूछा——यह रिक्शे वाला चलेगा. इस वक्त?

——चलेगा सा'ब चलेगा. . .बनवारी ईई ई. . . छोकरे ने दो-चार तालियां बजा कर रिक्शेवाले को आवाज दी.

बनवारी पैदल ही रिक्शा बड़ी तेजी से दौड़ाता सामने आ खड़ा हुआ——हां जी सा'ब, किधर चलना है? उसने बड़ा हिचक कर बताया-देव नगर.

——चलेंगे सा'ब क्यों नईं चलेंगे?

* *

रिक्शे की बंद छतरी के अंदर बैठे उसके सामने की तरफ दाएं-बाएं दो छोटे-छोटे पर्दे लटका कर बनवारी ने उसे पूरी तरह से ढंक दिया. उसके सीट पर बैठने से पहले उसने रिक्शे की सीट उखाड़ कर अंदर से एक कपड़ा निकाला और सारी सीट पोंछ दी. लेकिन पोंछने के बाद भी सीट गीली रही. अंदर फर्श पर रखे पांच-छः पुराने पिचके हुए टायरों के ऊपर पार्सल का बक्सा ऊंचाई के बल टेढ़ा-सा रखा था. चलना शुरू करने से पहले बनवारी, अभी आया सा'ब' कह कर दौड़ता गया और किसी साथी से दो जगह फटा एक पुराना छाता ले आया. वह छाता बनवारी ने किसी प्रकार अपने कंधे के सहारे टिका दिया. रिक्शा धीरे-धीरे डगमगाता हुआ चलना शुरू हुआ. तूफान में थपेड़े खाती नाव की तरह. बारिश की घमासान आवाज से रिक्शे की छत बज रही थी. वही समुद्र में आए ज्वार जैसा शोर.

उसने अंदर एक सिगरेट सुलगा ली और पीने लगा. हवा के कारण पर्दे किसी-किसी क्षण बाहर की तरफ उड़ जाते. स्वयं को पानी से बचाने की पूरी कोशिशों के बावजूद वह कहीं-कहीं से भीग रहा था. पैंट के घुटनों पर काफी पानी गिरा और गर्दन पर पानी की एक मोटी-सी धार पता नहीं कहां से निरंतर टपक रही थी. वह सिगरेट का एक कश खींच कर अनायास मुसकरा दिया. जैसे यह सारी परिस्थिति अगर झेली जा सकती है, तो केवल मुसकरा कर.

उसे किसी किसी क्षण बाहर की थोड़ी-बहुत झलक मिलती. वैसे उसे अधिकांश केवल बनवारी की रिक्शा खींचती टांगें नजर आ रही थीं. पैडल के साथ ऊपर-नीचे होती टांगें, जैसे वे लोहे की बनी हों और रिक्शे का ही एक अंग हों. शुरू करते समय बनवारी ने यूं ही पूछा था— बक्से का वजन कितना है सा'ब?

——चालीस किलो.

——बअअअअस!

वह हंस दिया था——पर पूरे साठ किलो मेरा भी है, भाई.

* *

रिक्शा रेलवे फाटक से कुछ दूरी पर था. बनवारी उतर कर पैदल ही रिक्शे को चढ़ाई पर खींचने लगा, अड़े हुए बैल को रस्सी से घसीट कर अपने साथ ले जाने की तरह. उसने देखा. बनवारी ऊपर से नीचे बुरी तरह भीग रहा है. जगह-जगह पानी की धारें उसके शरीर पर रेंग रही हैं उसने यूं ही बनवारी से पूछा——ऐसे इतना भीग कर बीमार नहीं पड़ जाते?

बनवारी हांफ-हांफ कर रिक्शा खीचता हुआ बोला——बीमारी-सी मारी तो. . .आत्ती रैत्ती रोजी. . . पर. . .

वह दिल्ली जब अपने घर था, तब भी ऐसी ही लापरवाही और जिद के कारण कभी-कभी बीमार पड़ जाता. खास कर ऐरी बारिशों में या कड़ाके की ठंड में. मां बहुत चिंतित रहती. बुखार के दिनों में रात नौ बजे ही दूध पिला कर, रजाई उढ़ा कर जबर्दस्ती सुला देती. लेकिन आधी रात उसकी आंख खुलती तो देखती, बत्ती जली हुई है और वह रजाई से मुंह निकाले गोद में रखी पुस्तक पढ़ रहा है. मां करवट बदलते-बदलते कहती —तूं बड़ा जिद्दी एं देबू. कहीं किसे ही मन्या बी कर! फिर दूसरी तरफ मुंह कर के शांत हो जाती. वह केवल मुसकरा देता. और ऐसे में बुखार के बावजूद पढ़ते रहने के दौरान उसे एक अजीब-सी तृप्ति का एहसास होता, जैसे सोचता हो, कितना सुख मिलता है. विरोधी से विरोधी परिस्थितियों में भी अपनी साधना जारी रखे रहने में! मां इस बीच एकाध करवट और बदलती. वह देखती वह शांतचित्त काफी देर पढ़ता रहेगा. इसी अंदाज में उसके दिवंगत पिता कभी सुबह-सुबह उठ कर गुरबाणी पढ़ते और उनके चेहरे पर भी ऐसी ही तृप्ति का भाव होता.

इस क्षण उसे अनायास एक बार फिर केशव का ध्यान हो आया. अभी कहीं पैरों से ऊपर तक पानी से भरी सड़कों, कालेज की पिछली दीवार के बाहर ऊबड़खाबड़ दुर्गम पथ और दफ्तर वाली कीचड़ भरी गली पार करता रिक्शा दफ्तर से कुछेक मकान

पहले जा कर रुकेगा, जैसे तूफान में थपेड़े खाती नाव किनारे आ लगी हो. रिक्शे से उतर कर बक्सा बनवारी के सिर पर रखवाते समय शायद सामने, दफ्तर के जिस कमरे में केशव रहता है, उसकी चौड़ी जालीदार खिड़की की जाली के पीछे से एक चेहरा चिपका नजर आएगा. यह केशव की बीवी का चेहरा होगा तो अब 'ही ही', 'ही-ही' कर के इधर ही देखने लगेगी. फिर केशव और उसके दोनों बच्चों के चेहरे भी जाली से चिपक जाएंगे. और फिर इस तमाशे से वंचित न रह जाने के लिए पीछे से एक चेहरा और आगे लाया जाएगा. . .केशव का आठ महीने का मुन्ना. इसी दफ्तर में जब केशव को यह मुन्ना हुआ था, तब केशव लड्डू बांट रहा था और वह केवल यही सोच रहा था कि केशव का परिवार बढ़ रहा है. . .दफ्तर के कमरे में बक्सा उतरवा कर बनवारी का छाता एक तरफ रख कर अभी वह हांफता हुआ खड़ा होगा कि केशव धड़धड़ाता हुआ कमरे में गाएगा, अरे! आप भीग गए सारे? मैं तो कैता थाजी आप मी जाओ मत. दफ्तर आपको तनख्वाह के सिवाय दे देता है कुछ?

वह केशव की बकबक को अनसुना कर तौलिए से सिर पोंछने लगेगा. उपलब्धि के तौर पर उसके भीगे बदन में केवल पूर्ण संतुष्टि की एक ठंडी सिहरन ऊपर से नीचे तक दौड़ जाएगी. केशव बकता रहेगा—दफ्तर से कोई देखने आएगा जी कि आप इस बारिश में यह पार्सल ले आए? किसको पता लगेगा. . .वह कुछ न कह कर जैसे केशव पर ही तरस खा कर केवल मुसकरा भर देगा. कोई ऐसे समय उसकी कर्तव्य-परायणता का कभी साक्षी भी बने, यह कामना उसने कब की. . .?

रिक्शा इस समय रेल की पटरी के ठीक ऊपर था. छोटा-सा पर्दा हवा में फरफराता बाहर की तरफ उड़ा. उसने पर्दा पकड़ कर अंदर की तरफ कर दिया. बाहर की एक झलक मिली. ऊपर आकाश में काले भयावने बादलों का एक गिरोह बड़ी तेजी से कहीं जा रहा था. नीचे दूर तक जाती रेल की पटरियां थीं और रेलवे सिगनल, अपाहिज-से अपनी जगह खड़े भीग रहे थे. और सामने भीग रहे पेड़ों के झुरमुट के पीछे से कई मकानों को भेद कर काफी ऊंचाई तक जाता तार-दफ्तर का रडार इस समय पूर्णतः अपाहिज बन चुका था. यह माहौल साक्षी है तो केवल अपने अपाहिजत्व का. उसने पर्दा ठीक से लगा कर स्वयं को ढंक दिया. बनवारी रेलवे फाटक पार होने के बाद सीट पर बैठ चुका था और अब रिक्शा पैरों से काफी ऊपर तक के पानी वाली सड़क की चपेट में था. उसे अब फिर केवल बनवारी की टांगें नजर आ रही थीं. इस समय इस निष्काम निःस्वार्थ एक दुर्गम यात्रा में उसकी एक मात्र साक्षी ! एकमात्र संबल ! !

□□□

१५, एल मॉडेल टाउन,
सोनी पत, हरियाणा

लघुकथा

ब्राह्मण, चोर और राक्षस

एक गांव में एक ब्राह्मण रहता था जो दूसरों के दान पर जीवनयापन किया करता था.

किसी को उस पर दया हो गयी और उसने उसे दो बछड़े दिये. ब्राह्मण अब उनके लिए भी भिक्षा मांगने लगा और खिला-पिला कर उन्हें मोटा-ताजा बना दिया. एक चोर ने उन्हें देखा तो ललचा गया. रात को उसने रस्सी उठायी और बछड़ों की चोरी करने निकल पड़ा.

रास्ते में उसे एक अन्य व्यक्ति मिला जिसके पैने-पैने दांत तथा लंबी नाक थी. उसकी भुजाएं बलिष्ठ थीं किंतु गालों में गड्ढे पड़े हुए थे. शरीर अग्नि के समान पीला था. उस पर नजर पड़ते ही भय के मारे चोर पूछ बैठा—आप कौन हैं ?

उस व्यक्ति ने कहा—मैं राक्षस हूं. अब बताओ, तुम कौन हो ?

चोर बोला—मैं तो एक चोर हूं. मैं एक निर्धन ब्राह्मण के दो बछड़े चुराने जा रहा हूं.

राक्षस यह सुन कर आश्वस्त हुआ और उसने कहा—प्रिय मित्र, मैं तीन दिन में एक बार भोजन करता हूं. आज मेरे भोजन करने का दिन है, सो मैं ब्राह्मण को अपना आहार बनाऊंगा.

दोनों साथ-साथ चलने लगे और गंतव्य स्थान पर पहुंच कर छिप गये. ब्राह्मण के सोने के लिए जाते ही राक्षस उसे खाने के लिए आगे बढ़ा किंतु चोर ने उसे देख लिया और बोला—प्रिय मित्र, यह उचित नहीं. जब तक मैं बछड़ों की चोरी नहीं कर लेता, तब तक तुम ब्राह्मण का आहार नहीं कर सकते !

इस पर राक्षस बोला—बछड़ों की आवाज सुन कर ब्राह्मण जाग जायगा. तब मेरी मेहनत बेकार जायगी.

यह सुन कर चोर उबल पड़ा— यह तो बिलकुल उल्टी बात है ! तुम ब्राह्मण का आहार करने लगोगे तो मैं बछड़ों को नहीं चुरा पाऊंगा. पहले मुझे बछड़े चुरा लेने दो!

दोनों में वाद-विवाद होने लगा, प्रत्येक का कहना था—पहले मैं! पहले मैं!

हल्ला-गुल्ला सुन कर ब्राह्मण जाग गया.

चोर बोला—यह राक्षस तुम्हें खा जाना चाहता है !

राक्षस बोला—यह चोर तुम्हारे बछड़े चुरा ले जाना चाहता है!

यह सुन कर ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ. मंत्रोच्चार करके उसने राक्षस से अपनी जान बचायी. उसके उपरांत उसने एक डंडा उठाया और चोर से बछड़ों की रक्षा करने में भी सफल हुआ.

('पंचतंत्र' से) □□□

किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का

• संजीव

न जाने किस मनहूस घड़ी में मैंने पीयरलेस जनरल इंस्योरेंस कंपनी का एजेंट बनने का फैसला किया था. फैसला! —जी, शायद यह गुरु-गंभीर शब्द मेरे जैसे अतिसामान्य जन के मुख से धृष्टता लगे. फैसला करना और बदलना तो समाज की स्थापित और प्रतिष्ठित हस्तियां ही किया करती हैं. यूं कहूं, सनक सवार हुई. सच-सच कहूं, तो मुझ जैसे शिक्षित बेरोजगार युवक को बेकारी के रेगिस्तान में नौकरी की मरीचिका के पीछे काफी धूल फांकने के बाद रोजगार के नखलिस्तान का यह भूत सवार हुआ. दुर्भाग्य से फील्ड ऑफीसर मेरा दोस्त निकला. एक दिन जब उसने मेरे ज्ञान-चक्षु खोलते हुए अपने तर्क की कैंची से मेरी बेकारी-जनित आत्महीनता के झाड़-झंखाड़ को कतर-कतर कर जमीन पर लिटा दिया तो डिबेटिंग-कंपिटीसन में अपने फर्स्ट आते रहने का गरूर जाता रहा. उसकी बातें अभी भी दिमाग में टंकी पड़ी हैं—हर पढ़ा-लिखा युवक अगर नौकरी ढूंढ़ेगा, तो कहां से आयेंगी इतनी सारी नौकरियां! नौकरी की ऐसी जरूरत भी क्या है जब कि रोजगार की अन्य उन्नत संभावनाएं सामने पड़ी हों. युवकों का उसूल कुछ इस तरह होना चाहिए—ऐसा रोजगार जो स्वार्थ और परमार्थ दोनों का साधन हो; बल्कि दूसरों के भले में ही अपना भला देखना. लोगों को उनकी परेशानियों से और मनमाने खर्च से आगाह करो. बचत की जरूरत और अनिवार्यता बताओ, कनविंस करो और खुद उनके आशीर्वाद और कंपनी के विकास के साथ-साथ आर्थिक स्वावलंबन के पायदानों पर एक-एक कर चढ़ते चलो—एजेंट, फील्ड ऑफीसर, सब-आर्गनाइजर, आर्गनाइजर, इंस्पेक्टर. फिर स्कूटर, कार, बंगले, टेलीविजन और न जाने क्या-क्या!

अपनी टूटी खाट पर बैठे-बैठे मैं कहां-कहां उड़ चला था! उस दिन अपने को भारी लगनेवाला मैं कितना हल्का हो गया था!

हां, तो मैंने काम शुरू कर दिया. बाकायदा एजेंट बनकर, एक पोर्टफोलियो बैग में चंद पंफ्लैट्स, गाइड पुस्तिकाएं, फार्म इत्यादि भर कर दर-दर भटकने वाला मैं अब जनता का उद्धारक बन कर बिचरने लगा. लेकिन कुछ ही दिन में हौसले ढीले हो गये. बरसात में उगने वाले छत्रकों की तरह जिसे देखता, पीयरलेस का एजेंट ही नजर आता. एजेंटों की पलटन देखने पर मुझे भ्रम होता कि कहीं बीमा कराये व्यक्तियों से एजेंटों की संख्या ही अधिक तो नहीं है. साल भर में कम से कम बारह केस तो करने ही थे. दो माह गुजर गये. एक भी नहीं कर पाया. कैसे कर पाता? प्रायः एक ही दिन, एक ही व्यक्ति के पास मैंने दो-दो, तीन-तीन एजेंटों को धावा बोलते देखा था. बड़ा टफ कंपिटीसन था. तीर्थ स्थानों में पंडों और स्टेशनों पर कुलियों का एक ही व्यक्ति पर हक जतलाने और फिर तू-तू मैं-मैं के बाद की कोम्प्रोमाइज को यहां एक नया आयाम दिया गया था. दो महीनों तक निरर्थक टापते रहने के बाद एक दिन उदास और विरक्त होकर अपना बैग, कागज-पत्र अपने मित्र फील्ड ऑफीसर के सामने पटकने लगा तो उसने समझाते हुए कहा—तुम युवकों में धैर्य कब आयेगा? अरे भई, अभी तक कोई केस नहीं मिला तो क्या हुआ, तलाश करो. अब तक के प्रयास में कहीं न कहीं खोट जरूर है. भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं. जिसने बिल्ली बनायी है, उसने चूहे भी बनाये हैं, जिसने तुम्हें एजेंट बनाया है, उसने तुम्हारा शिकार कहीं न कहीं जरूर बनाया होगा.

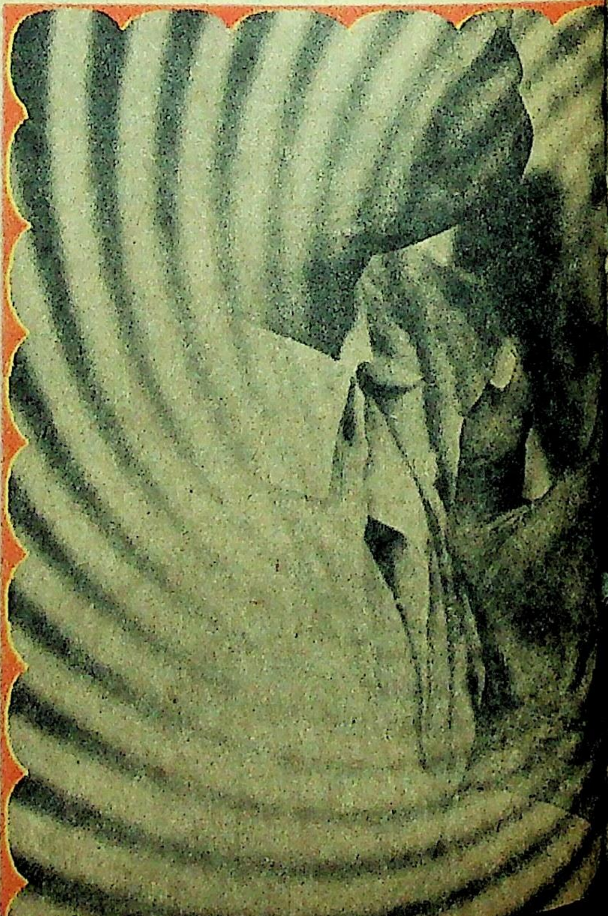
—लेकिन कमबख्त एक आदमी भी तो मिलना चाहिए था, मैं झुंझला कर बोला.

—तुमने अपने दोस्तों को एप्रोच किया?

—दोस्त! एक तो तू ही रहा.

—बाकी?

—बाकी! बाकी तेरे जैसे ही स्वयं मुड़वाने की बजाय दूसरों को मूड़ने में व्यस्त हैं.



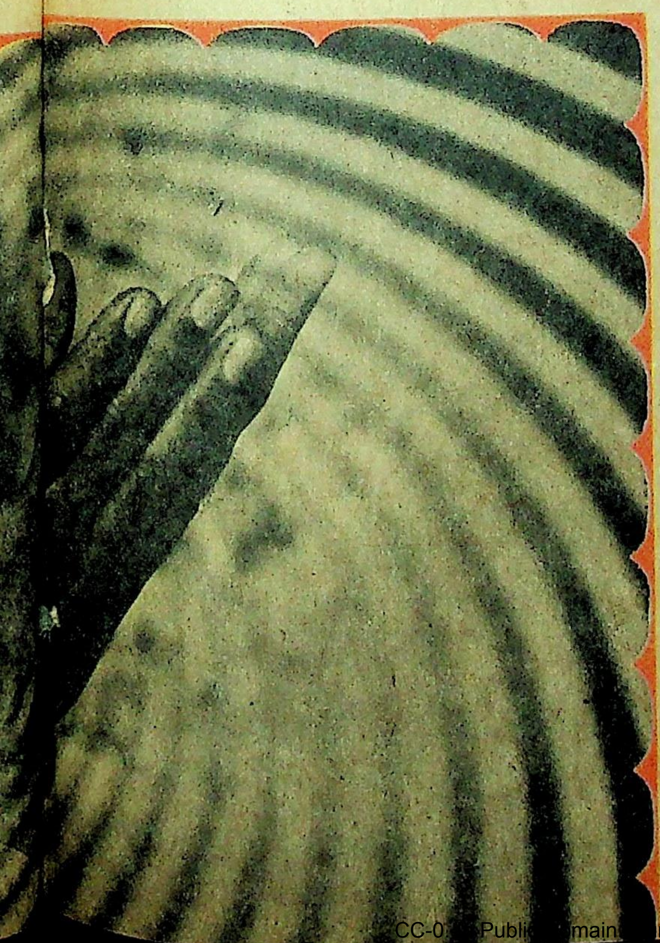
—हूं! कह कर वह गंभीर दीखने का उपक्रम करने लगा. फिर कुछ सोचता हुआ बोला पड़ा, अच्छा पहले यह तो बता तेरे घरवाले किसी स्कीम में बीमा करा चुके हैं कि नहीं ?

—नहीं.

—अरे तब तो कहना ही क्या! वह ऐसे आवेश में चिल्ला उठा कि मैं सकते में आ गया. अपने भाई साहब, भाभी साहिबा और भतीजे के नाम पर एक-एक स्कीम खोल दो. वैसे यह एक बोगस पालीसी है लेकिन चैरीटी बिगिंस एट होम.

—सच ! मुझे तो अब तक सूझा ही नहीं था. मैं चहकने लगा और इन तीनों केसों को पकड़ने के बाद मैंने अपने 'अकारथ जनम' को पहली बार सार्थक महसूस किया.

इस सफलता से नया आत्मविश्वास लेकर मैंने काम शुरू किया. मैं रात में बैठ कर जिस क्षेत्र में जाना होता, उसके एप्रोच करने योग्य लोगों की सूची बनाता, उनको कनविंस करने के नये-नये तौर-तरीकों की खोज करता और दूसरे दिन चाय पीकर, चप्पल घसीटते हुए मैं जनसेवा के लिए निकल पड़ता . जो तंबाकू खाते, उनके लिए जेब में तंबाकू रखता, जो पान खाते, उनके लिए अच्छा-सा मसाला, जो जिस ढंग की सिगरेट पीते, उन्हें फंसाने के लिए उस दिन मेरी जेब में वह बंसी के कांटे की तरह पड़ी होती. मैं उस समय उनकी राजनीतिक पार्टी में रंगा होता, उनकी हॉबीज मेरे लिए प्रशंसा की वस्तु होतीं. उनके गम में अपनी खुशी खो बैठता और उनकी खुशी में अपने गम......



रमेश शुक्ला •

लेकिन जैसे ही उनसे निवृत्त होता, अपना मुखौटा उतार कर रख देता. अब मैं नया मुखौटा पहने हुए दूसरे किस्म का इंसान होता जो अपने नये ग्राहक के रंग में रंगा और ढंग में ढला होता. मुझे पहले तो लोग बड़े ध्यान से सुनते पर बात का असली मतलब सूंघते ही ऊंघने लगते या उन्हें जम्हाइयां आने लगतीं. धीरे-धीरे उनकी ऊबन और जम्हाइयों का सीजंड होता चला गया. मैंने अपना प्रचार कार्य अव्याहत रखा और चौथे महीने तक मैं सचमुच हौआ बन गया. मुझे देख कर मेरे दोस्त कन्नी काट जाते, परिचित गली में मुड़ जाते. हालत यहां तक आ गया कि अब खिड़कियां और दरवाजे तक बंद होने लगे.

अपनी आत्मा के विरुद्ध कितने ही काम मुझे करने पड़े, उनकी क्या गिनती करूं! एक का जिक्र काफी होगा. मुझे शास्त्रीय संगीत से चिढ़ है. मेरे अपने क्षेत्र के एक्सप्लोरेसन के बावजूद एक मालदार सज्जन बचे पड़े थे जो शास्त्रीय संगीत के प्रेमी थे. उनके इस विशिष्ट गुण की ही महिमा थी कि डर के मारे कोई एजेंट वहां नहीं जा सका था. उन्हें रिझाने के लिए ताल, लय और रागों को मुझे रटना पड़ा और उनके कंठ स्वर को भाड़े के या चाटुकार समालोचक की तरह अपने रागों के ज्ञान की कसौटी पर कस कर अद्वितीय बताना पड़ा. सारे दिन उनके आलाप के प्रलाप, टप्पें की ठोकर और ठुमरी पर ठुमकता रहा, उनके विलंब और द्रुत के आरोह-अवरोह में डूबते-उतराते सांस फूल गयी पर असली मतलब समझते ही उसने मुझे चाय तक से वंचित कर दिया.

ऐसी ही घटना एक लड़की के 'केस' पकड़ने के चक्कर में घटी जो सौभाग्य से नौकरी करती थी और अविवाहिता थी और दुर्भाग्य से असुंदर और मनहूस. मैंने हिंदी फिल्मों से सीखे कई फार्मूले अपनाये और न जाने कितने पापड़ बेल कर उसके रूखेपन में चिकनाहट पैदा की और उसके अंदर की विलुप्त नारी को आविर्भूत किया. मेरी संवेदना की आंच पाकर वह पिघल रही थी और पिघलने के बाद स्वभावतः मुझसे चिपक रही थी. मैंने क्रिटिकल वक्त समझ कर एक दिन उससे अपना हाले दिल बयां किया तो उसकी चिकनाहट सूखकर चिटक गयी और फिर तो इतना ही बताना काफी है कि 'बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले' की आशिकी की उपलब्धि ही मुझ जैसे निराश आशिक के पल्ले रह गयी.

★ ★

जब मेरे फील्ड ऑफीसर को मेरी संघर्ष-कथा की चरम व्यथा मालूम हुई तो संवेदना का लेप लगाने लगे मेरे जले पर. मेरी बची-खुची झेंप मिटाकर मुझ में नया आत्मविश्वास भरने के लिए उन्होंने एक वार्षिक मीटिंग में मुझे आमंत्रित किया. एक प्रसिद्ध होटल में तरह-तरह के युवक इकट्ठे थे. वह जश्न था कि कुछ न पूछिये. पेग पर पेग शराब के उड़ रहे थे. लाख, दस लाख और करोड़ों की बातें उछल रही थीं. मैं पलक झपकाते हुए कभी इधर तो कभी उधर ताक

रहा था. जब प्रतिशत का ही सवाल है तो एक बार एजेंसी का पौधा लगा दो. पहले वर्ष की प्रीमियम के एक चौथाई अंश से भी अधिक को रिच हार्वेस्ट लो. फील्ड आफीसर तक पहुंचने पर स्वयं एजेंट बहाल करते हुए अपनी शाखा-प्रशाखा फैला दो, फिर उनसे मिलनेवाले फूलों-फलों में भी तुम्हारा शेयर होगा.. और इसके बाद सब-आर्गनाइजर, आर्गनाइजर और इन्सपेक्टर तक पहुंचते न पहुंचते तो चांदी ही चांदी है. मुझे तो पीयरलेस की एजेंसी रक्तबीज से भी अधिक प्राणवान लगी. केवल बेरोजगार ही क्यों, कलाकारों और निठल्लुओं के लिए भी इससे उत्तम कोई बिजनेस नहीं है. दो-तीन वर्षों की मेहनत के बाद कला के जंगल (या दंगल) में निर्द्वंद्व घूमो, वाद-प्रवाद के प्रवर्त्तक या अपवर्तक बनने, गुट बनाने या छूट करने, अपनी दमित या सोयी भावनाएं जगाने, बहुत सारे लोगों की कृतियां देख-सुनकर कहीं से भी अपनी 'नायाब चीज' गढ़ने और उन्हें स्थापित करने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है.

वहां से आने के बाद दुनिया मेरे लिए और खुल चुकी थी. यारों ने मुझे जो घुट्टी पिलायी, उससे मेरी मृत्यु की अवधारणाओं में क्रांति आये बिना न रही. मैं अब कनविन्स कर सकता था कि मौत तब तक मौत नहीं है जब तक डॉक्टर उसे सर्टिफिकेट न दे दे. अपने समाज की जाति-व्यवस्था की तरह ही मौत की भी श्रेणियां और उपश्रेणियां हैं. और सभी श्रेणियों की मौतों को बीमा कंपनी के मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है. कभी-कभी तो उस तथाकथित ईश्वर पर काफी गुस्सा आता है जिसने न जन्म लेना अपने वश में छोड़ा, न मनचाही मौत मरना. अब उसको कौन बताये कि जैसे-तैसे जन्म लेने पर (तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठित वंश में जन्म न लेने पर) भी सरकार विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देकर उसे उबार लेती है लेकिन जैसी-तैसी मौत मरने पर यह बीमा कंपनी कोई रियायत नहीं करती.

मीटिंग में बड़ी-बड़ी हस्तियों ने यह बताया था कि संभावनाओं की अमित दिशाएं इस क्षेत्र में अभी भी हैं, उनका दोहन करना चाहिए. मैं अपने क्षेत्र की दुधारू गाय का लात खा चुका था अतः दोहन के लिए मैंने एक कोलियरी अंचल को चुना . इसी चक्कर में अपने बचपन के मित्र भोला से मुलाकात हो गयी. बातों ही बातों में उसने बताया कि वह अब ट्रेड यूनियन का लीडर हो गया है. उसने मेरी आफत सुनकर कहा—अरे भोला के रहते हुए तू काहे को मरा जा रहा है? संयोगवश उस दिन पेमेंट का दिन था. उसने चुटकी बजा कर कहा—तेरी समस्या यूं हल किये दे रहा हूं. पान की डबल गिलोरियों को जबड़े में दबोच, एक चार मीनार सुलगा कर उसने पेमेंट लेकर जाते हुए मजदूरों को यूं बुलाना शुरू किया जैसे सूदखोर महाजन कर्जदारों को बुलाते हों. और फिर कहा—निकाल अपना फारम-वारम. एक-एक कर भरता चल.

मैंने आव देखा न ताव, अपना शिकार हड़पने लगा. कुल मिला कर बीस पालिसियां उसी दिन बन गयीं. क्वार्टरली प्रीमियम के मेरे पास इतने पैसे जमा हो गये कि मैं उत्साह में ठीक से गिन भी नहीं पा रहा था. तीन महीनों तक वह जनून सवार रहा कि मैं किसी भी भाग्यवान व्यक्ति से तुलना करना अपनी हेठी समझता था लेकिन तीसरे महीने जब दूसरे प्रीमियम के लिए कोई पैसा जमा कराने नहीं पहुंचा तो मेरा माथा ठनका. मैं जब उनसे मिला तो कोई ताड़ी-शराब में डूबा हुआ था, कोई महाजन द्वारा सारे पैसे छीन लिये जाने का रोना रो रहा था, किसी ने सारा पैसा अपने गांव के आश्रित परिवार को मनी आर्डर कर दिया था. मेरा बेड़ा भी गर्क किया. भोला से मिला तो उसने डांट कर कहा—पेमेंट के दिन ले लिया कर.

लेकिन मैं तो 'भोला' नहीं था अतः मुझसे न हो सका.

उन्हीं गर्दिश के दिनों में पीयरलेस की महिमा से मेरा मुंडन-संस्कार भी संपन्न हुआ. एक दिन अगले दिन का प्रोग्राम और चार्ट बना ही रहा था कि कल किन-किन लोगों को एप्रोच करना है और कैसे कि अपने मुहल्ले का एक लड़का बुलाने आया—आप ही पीयरलेस के एजेंट हैं?

—मैंने कहा-हां-हां! और हवा का रुख अंदाजने लगा.

—मेरे घर पर कुछ लोग आपका इंतजार कर रहे हैं, उसने बताया.

आज कहां से सूरज पश्चिम में उगा है, यह सोचते हुए मैं अपना बैग-वैग समेटते हुए चल पड़ा. लेकिन वहां तो मुहल्ले के दादा लड़के जमा थे, भाग नहीं सकता था. उन्होंने जाते ही मुझे घेर लिया और तरह-तरह की जिरह करने लगे. हुआ यह था कि एक रामावतार सिंह नामक सज्जन ने किसी सयाने एजेंट से इंश्योरेंस करवाया था जो पहले साल की प्रीमियम की 'रिच हार्वेस्ट' लेकर फिर झांकने नहीं आया. कुछ दिन बाद अचानक एक्सीडेंट में वे चल बसे तो उनकी विधवा और अनपढ़ पत्नी को पैसे नहीं मिले. दादा लोगों ने सुना तो उनकी मानवता एकाएक कराह उठी. मैंने लाख समझाया कि मैं वह एजेंट नहीं हूं लेकिन मुझे ही प्रतीक मान कर मेरी मरम्मत शुरू की. बीसियों एजेंट, फील्ड आफीसर, आर्गनाइजर वगैरह उस क्षेत्र में मरे पड़े थे पर मुंडन-संस्कार का सौभाग्य तो मेरी ही तकदीर में लिखा था. मैंने वायदा किया कि उनका पैसा दिलवा कर ही छोड़ूंगा, तब कहीं जान बची. अब उन्हें लेकर डिवीजनल आफिस में चेष्टा की, क्लर्क से लेकर चपरासी तक के पांव पकड़े लेकिन मेरी आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह पर फड़फड़ा कर रह गयी. यह तो कृपा हुई मेरे मित्र फील्ड आफीसर की, जो उन दिनों सब-आर्गनाइजर बन गया था जिसकी पैरवी पर दर्खास्त ली गयी और तीन महीनों के बाद आने को कहा गया.

* *

एक दिन प्रीमियम जमा करने आसनसोल जा रहा था कि कोई मेरा नाम लेकर चिल्ला उठा. आंखें मल-मल

कर देखा. उसकी आंखों के युवतीनुमा विन्यास को पहचान न सका. उसने मुस्कराते हुए कहा—अरे यार प्रसाद, मुझे घोषाल को भूल गये? मुझे अब हल्का-हल्का याद आया कि घोषाल नाम का एक लड़का भी मेरे साथ कालेज में पढ़ता था जिसके लिए मैं मनहूस था और मेरे लिए वह बोदा. मैंने देर में पहचानने के कारण उससे क्षमा मांगते हुए सरक कर अपने पास स्थान दिया. उसके हाथ में एक ब्रीफ केस था और शक्लो-सूरत से वह संपन्न दीख रहा था. पता चला कि वह भी आसनसोल ही जा रहा है. बातों की सीढ़ियां चढ़ता हुआ मेरा अंतरंग बन चुका था. मुझे आग्रह कर एक प्रसिद्ध कैफे में लिवा गया. मेरे मन में बार-बार इच्छा हो रही थी कि काश, पैसे होते तो इतने मोटे आसामी को मैं स्वयं ऐसे कैफे में लाकर पटा पाता! उसने मेनू कार्ड देख कर एक से एक अच्छे आर्डर देने शुरू किये. कैफे का फर्श शतरंज के खानों की तरह कलात्मक डिजाइन का बना हुआ था. मेरे दिमाग में यह बात कौंध गयी कि वह भी शतरंज का नामी खिलाड़ी था. शतरंज के प्रश्नों पर हुई मेरी मस्केबाजी पर रईसों की तरह उसने मुझे 'हां,' 'हूं' के गोलमटोल उत्तर दिये. फिर एकाएक शतरंज की बाउंड्री से छलांग लगा कर मेरी प्राइवेट जिंदगी के अहाते में पिल पड़ा.

—प्रसाद, तेरी शादी-वादी हो गयी लगती है?

—हां, और तेरी?

—अभी नहीं, और तेरे बच्चे-वच्चे?

—दो हैं, बड़े होने पर 'बाबी फिशर' बनाने उन्हें तेरे पास भेजूंगा, मैंने फिर शतरंज की बिसात पर घसीटा.

—वो तो जब होंगे, तब होंगे. तब तक तुझे ही क्यों न सिखाना शुरू करूं, उसने पैंतरा बदला.

—अच्छा यही सही. कब शुरू करूं?

—आज और अभी. देख शतरंज की पहली शर्त है कि आनेवाले भविष्य के लिए शानदार प्लानिंग. अनाड़ी की तरह बेतरतीब चाल चले कि पिट जाओगे.

मैंने बेवकूफ की तरह पलक झपका कर उसे और शह दी.

—मान लो तुम, प्रतिदिन खा-पीकर एक पैसा बचा लेते हो तो साल में ३ रुपये ६५ पैसे होते हैं. दस पैसे प्रतिदिन बचाओ तो ३६ रुपए ५० पैसे और एक रुपए प्रतिदिन बचा पाओ तो ३६५ रुपए. अभी से बचत का पाठ शुरू कर देना चाहिए ताकि नाके-नाके पर तुम्हारा मुहरा प्रतिद्वंद्वी के मुहरे को पीट सके. तू कुछ करता है कि नहीं.?

—नहीं, मैं जरा चौंकते हुए बोला, मगर...

—नहीं! क्यों नहीं? उसने मेरे 'मगर' को उभरने का मौका ही न दिया और डांटते हुए अपना वक्तव्य जारी रखा, मैं यह नाइंसाफी बर्दाश्त नहीं कर सकता. आज हो, कल नहीं रहो तो इस बड़ी दुनिया में भाभी और बच्चों को किसके सहारे छोड़ जाओगे? देखो यह एक बचत की स्कीम है....

मैं पैंतरा बदल ही रहा था कि उसका हमला हो चुका था. सिकंदर के तीरंदाजों से घायल हो पुरु की तरह मेरे हाथी-घोड़े मेरी पैदल सेना को रौंदते हुए भाग चले थे. इसके पहले कि मैं कुछ बोलूं वह मुझे सब कुछ बता गया—पीयरलेस कंपनी की महिमा और जनगण सेवा का व्रत, अनुषांगिक रूप से राष्ट्र का उत्थान. अंत में उसने एक परचा निकालते हुए कहा—तुझे दस हजार की एक पालिसी करानी ही है.

मैंने कई बार कहा—जरा मेरी भी तो सुनो, लेकिन उसे तो जैसे कहने का भूत सवार था. उसने कागज आगे बढ़ाया और बेफिक्री से बेयरे को बिल लाने का आदेश दिया.

—एक बात मैं कब से कहना चाह रहा था पर तेरा हांकना बंद हो तब तो, मैंने कहा.

—बोल!

—मैं कोई नौकरी-वौकरी नहीं करता. तेरी ही तरह पीयरलेस का एजेंट हूं.

कहते-कहते मैंने अपने फार्म-वार्म उसके सामने रख दिये.

—यह क्या? वह चिहुक पड़ा. बेफिक्री का स्थान अब झुंझलाहट ने ले लिया.

—साले, मैंने तो समझा था कि अच्छी एकेडेमिक कैरियर के कारण तू आज तक जरूर किसी अच्छे ओहदे पर होगा. मेरा सारा प्लान बेकार गया.

—मैंने भी तुझे अच्छा-खासा बिजनेसमैन समझ कर मस्केबाजी शुरू की थी. तूने मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया.

उसने मुझे सिकंदर की तरह चबा जाने वाली खिसियायी नजरों से देखा और आंखों ही आंखों में सवाल किया—बोल बेटा, तेरे सथ कौन-सा सुलूक किया जाय?

और मैं पुरु की तरह एजेंसी के शौर्य से दमकते हुए अंदाज में ताकता रहा—जैसा एक एजेंट दूसरे एजेंट के साथ करता है.

बेयरा बिल लेकर आ चुका था—बीस रुपए, साठ पैसे का बिल. इस बार वह थोड़ा हिचकिचाया, फिर तन गया.— तूने मेरा मूड आफ कर दिया. अब प्रायश्चित के लिए यह बिल तुझे ही अदा करना होगा.

और इसके पहले कि मैं उसे टोंकता, वह बाहर जा चुका था. लाचारी में मैंने पाकेट टटोले तो भैया के प्रीमियम का पैसा निकल आया. बिल अदा कर खुदरे पैसों का टिप देकर मैं जब बाहर आया तो अब पीयरलेस के दफ्तर जाना बेकार था.

अभी-अभी मेरे मित्र फील्ड आफिसर की जो अब आर्गनाइजर बन गया है, कार धूल उड़ाते हुए बगल से गुजर गयी है. मेरी आंखों में कुछ कसक रहा है, पता नहीं वह अभी-अभी उड़ कर पड़ी हुई किरकिरी है या स्वयं कार की आकृति. किरकिरी तो निकल जायेगी लेकिन वह कार शायद नहीं निकल पायेगी. और मैं आंखें मलते-मलते यह सोच रहा हूं कि मुझे उस विषय पर फिर से सोचना चाहिए. □□□

मुख्य प्रयोगशाला,
इंडियन आयर्न ऐंड स्टील कं, पोस्ट कुलटी, जि. वर्द्धमान

दरिंदे

• केशव

ट्रींग. . ट्रींग. . ट्रींग. . .

—हाथ बढ़ा. रिसीवर कान से आ लगा.

—हॅलो! प्रिंसिपल डिग्री कालिज, दिस साइड.

—मैं सी. एम. ओ. बोल रहा हूं. दूसरी ओर से आवाज आयी.

—कहिए, प्रिंसिपल के मुंह से एक सूखी आह निकल कर माउथ पीस में घुस गयी.

—देखिए, हास्पिटल में एक एमरजेंसी केस आ गया है. उसे खून की सख्त जरूरत है. बहुत देर से मुंह में भरे हुए शब्द इधर के कान में आ गिरे.

—मेरे लिए क्या हुक्म है? इधर के कान खड़े हो गये.

—कालिज से कुछ लड़के भेज दीजिए. बस, काम बन जायेगा. उधर की आवाज ने पैंतरा बदला.

इधर कुछ पल की खामोशी.

—ठीक है. इधर शब्द खूंटी से उतर कर माउथ-पीस में खो गये और रिसीवर क्रैडिल पर. खटाक्.

टेबल के नीचे पांव घंटी पर पड़ा.

चपरासी भीतर.

—प्रोफेसर बतरा को बुलाओ.

चपरासी के निकलते ही प्रिंसिपल ने एक फाइल खिसका कर सामने कर ली. चश्मा लुढ़क कर नाक पर. आंखें टाइप हुए अक्षरों पर बौखलाये चूहों की तरह दौड़ने लगीं.

—आपने मुझे बुलाया? प्रोफेसर बतरा भीतर पहुंचते ही बोले.

—ओह. . .हां. . .हां. . . चौंकने का सफल अभिनय हुआ प्रिंसिपल की ओर से.

प्रोफेसर बतरा ने मन-ही-मन तारीफ की इस अभिनय की. रोज ही तो देखने को मिलता है यह अभिनय. पर आज तो सचमुच आसमान छू रहा था.

—आपका लड़कों में उठना-बैठना है—प्रिंसिपल की चुंधियाई आंखों से चापलूसी का एक फव्वारा निकला.

—हास्पिटल की बैन आती होगी. कुछ लड़कों को हास्पिटल भेज दीजिए.

—मगर किसलिए?

प्रिंसिपल की छोटी-सी गर्दन तन गयी. आंखें जले हुए पटाखे-सी. प्रोफेसर बतरा अप्रभावित. हर रोज घूम-फिर कर आने-जाने वाले ये रंग अब उन्हें बेहद बासी और फीके लगते थे.

—एक ऐमरजेंसी केस के लिए फौरन खून की जरूरत है. मटर की सूखी फलियों की तरह प्रिंसिपल की आवाज खड़खड़ायी.

—बेहतर है. और प्रोफेसर बतरा बाहर निकल आये क्लास में जा कर लड़कों से कहा. उनमें होड़-सी लग गयी. अधिकांश जाना चाह रहे थे. समझा-बुझा कर कुछ लड़कों को तैयार किया. तभी बैन आयी और लड़कों को ले कर चल दी.

बैन हॉस्पिटल के गेट पर ही रुक गयी.

—उतरो. ड्राइवर दरवाजा खोल कर नीचे उतर आया. लड़के उतर कर सी. एम. ओ. आफिस की ओर चल दिये. तंग गैलरी में आफिस के बाहर दिन के बारह बजे ही, चपरासी स्टूल पर ऊंघ रहा था. लड़कों ने शरारत से एक दूसरे की ओर देखा. आंखों ही आंखों में इशारे हुए. और सबसे आगे खड़े लड़के ने चपरासी के कान के पास मुंह ले जा कर जोर से कहा—रात जगराते में गये थे क्या?

चपरासी ने हड़बड़ा कर आंखें खोल दीं. और लड़के को फाड़ खाने वाली नजरों से घूरने लगा. तभी उसकी नजर गैलरी के आखिरी सिरे तक गयी. इतने लड़के देख कर चपरासी का गुस्सा हिरन हो गया.

—क्या बात है? चपरासी अपनी टोपी संभालता हुआ बोला.

—हम सबको जुकाम हो गया है. एक लड़के ने कहा. गैलरी में एक सम्मिलित ठहाका लगा.

तभी घंटी बजी. चपरासी पर्दा उठा कर भीतर लपका.

—यह कैसा शोर है? सी. एम. ओ. की आवाज में गुस्से से अधिक खीझ थी.

—जी, कुछ लड़के हैं. चपरासी फौजियों की तरह तन गया.

—लड़के? ओह, अच्छा. . . अच्छा. उन्हें लेबोरेटरी में मिस्टर शर्मा के पास ले जाओ.

—जी साहब. चपरासी ने मुस्तैदी दिखायी.

—मेरे पीछे आओ. बाहर आते ही चपरासी ने एक सरसरी नजर लड़कों पर डाली और गैलरी से बाहर.

लड़के पीछे हो लिये.

—स्साला सी. एम. ओ. बाहर क्यों नहीं आया? एक लड़का उत्तेजित हो रहा था.

—अंदर कोई मरीज होगी. एक ओर से उत्तर आया. और एक अट्टहास.

—चपरासी ने पीछे घूम कर देखा. बुरा-सा मुंह बनाया. और चाल तेज कर दी.

लड़कों ने लेबोरेटरी पर हमला-सा कर दिया. मक्खियों की तरह शर्मा के इर्द-गिर्द भिनभिनाने लगे.

—ऐसे नहीं, शर्मा की भद्दी तीखी आवाज उभरी.

—इनको कमरे के बाहर लाइन में खड़ा करो. चपरासी को हुक्म हुआ.



● संतोष कुमार

—खून भी दो! और फटकार भी सुनो. बाहर निकलते लड़कों में से एक फुंफकारा.

—खून दो, फटकार लो. एक लड़का चीखा.

फिर हास्पिटल में हंगामा-सा मच गया.

सभी कंठ चीखे —खून दो, फटकार लो!

शर्मा घबराया हुआ अपनी ढुलमुल पेंट संभालता बाहर निकला.—अरे भई, क्यों मेरी नौकरी के पीछे पड़ गये हो? शर्मा ने बदहवासी में चारों ओर नजरें घुमायीं. भीड़ जुड़ गयी थी. सभी आंखों में कौतूहल लहरा रहा था.

—आ जाओ . शर्मा ने सबसे आगे खड़े लड़के को बांह से पकड़ कर अंदर कर लिया. और खुद कुर्सी पर धम्म से बैठ गया.

★ ★

जिन दो लड़कों का ग्रुप 'ओ' निकला, उनमें से एक को रोक लिया गया. बाकी मुंह लटकाये हास्पिटल के कंपाउंड में इधर-उधर बिखर गये.

लड़के का नाम था सुनील. गेहुंआ रंग. कद लंबा. औसत देह. लेकिन चेहरा उम्र के लिहाज से तनिक उदास-गंभीर . सुनील को आप्रेशन थियेटर के बाहर कुछ देर इंतजार करना पड़ा. बाकी लड़के भी वहां जमा हो गये थे.

तभी दरवाजे से एक सिर बाहर निकला—आपमें से जिसको खून देना है , भीतर आ जाये. और सिर गायब.

सुनील का चेहरा लाल हो रहा था. आंखों में चमक. उसे अजीब-सी पुलक का अहसास हो रहा था अपने भीतर. जिस टेबल पर उसे लिटाया गया, उसे चार डाक्टरों ने घेर रखा था. जैसे आप्रेशन उसीका होना हो.

उसने थियेटर में चारों ओर नजरें घुमायीं. आप्रेशन रूम किसी तहखाने-सा लग रहा था. अजीब कसैली-सी गंध भरी हुई थी भीतर.

तभी उसकी बांह नंगी हुई. और दर्द की एक पतली तीखी रेखा उसके भीतर रेंग गयी. उसने होंठ भींच लिये. फिर सब कुछ शांत. वह निश्चल लेटा रहा. धीरे-धीरे उसकी आंखें स्वतः मुंद गयीं. उसे लगा, वह टेबल पर न हो कर किसी झूले में लेटा हुआ है. उसे गुमान भी न था कि वह कभी किसीको नया जीवन देने का कारण बनेगा. उसने तंद्रा-सी में देखा—वह खून दे कर बाहर आया है. एक डाक्टर उसकी पीठ थपथपाते हुए कह रहा है—वेल डन ब्वाय. यू हैव सेव्ड ए लाईफ. देश को तुम्हारे ही जैसे नौजवानों की जरूरत है. बाहर भीड़ ने उसे कंधों पर उठा लिया है. कृतज्ञता-सनी कुछ आंखें उसे बराबर देखे जा रही हैं. और वह भीड़ के कंधों पर मछली की तरह तैर रहा है. वह बेहद खुश है. तभी अचानक भीड़ में से निकल कर लड़के के मां-बाप ने उसे गले लगा लिया है. उसकी पीठ थपथपाई जा रही है. वह चाह रहा है, ऐसे मौके बार-बार आयें.

तभी दर्द की एक और लहर उसके बदन में

उठी. उसने घबरा कर आंखें खोल दीं. कमरा वैसे ही पत्थर की ठंडी सिल-सा पड़ा था. उसकी बांह से सिरिंज निकाल ली गयी थी. डाक्टर धीरे-धीरे बतियाते हुए हंस रहे थे. वह कुछ पल निश्चल पड़ा इंतजार करता रहा. लेकिन उसे उठने के लिए नहीं कहा गया.

तब उसने बुझे हुए स्वर में कहा—डाक्टर, मैं उठ सकता हूं. सभी ने चौंक कर उसकी ओर देखा.

—हां. एक डाक्टर ने औपचारिकता निबाही.

वह बुझ-सा गया. कुछ देर पहले उसके भीतर दौड़ने वाली उत्साह की तरंग न जाने कहां खो गयी. उसे बेहद खाली-खाली-सा लगा. लगा, वह टेबल पर न हो कर किसी ठंडी सिल पर लेटा हुआ है. और जैसे उसकी देह निचुड़ गयी है. वह खुद को बेहद कमजोर महसूस करने लगा. किसी तरह जोर लगा कर उठा. जिस थैली में उसका खून भरा गया था वह सफेद कपड़े से ढंकी हुई थी. उसकी इच्छा हुई, थैली में भरा हुआ अपना खून देख ले. डाक्टर शायद उसका इरादा भांप गये थे.

—नो नो, तुम ऐसा नहीं कर सकते. एक डाक्टर ने हिदायत की.

—तुम अब बाहर जा सकते हो. दूसरे डाक्टर ने झपट कर कपड़े समेत थैली को हाथों में उठा लिया. सुनील को अपने जिस्म में जगह-जगह सुइयां-सी चुभती हुई जान पड़ीं. वह भारी कदमों से बाहर आ गया.

बाहर लड़कों के साथ प्रोफेसर बतरा भी थे.

—क्यों क्या बात है? उसका उतरा हुआ चेहरा देख प्रोफेसर बतरा ने पूछा.

उसने आहत नजरों से प्रोफेसर बतरा की ओर देखा. बोला कुछ नहीं.

प्रोफेसर बतरा ने समझा, शायद लड़का कमजोरी महसूस कर रहा है. उन्होंने बढ़ कर उसकी बांह थाम ली.

—नहीं, मैं ठीक हूं. उसने जिद की और हौले से अपनी बांह छुड़ा ली.

—मैं अभी आता हूं. कह कर सुनील कनसलटेशन रूम की ओर बढ़ गया.

दोपहर का एक बज चुका था. सभी मरीज एक-एक कर जा चुके थे. कनसलटेशन रूम के बाहर बरामदा अब सूना था. दाहिनी ओर बने वार्डों में से कभी कोई इक्का-दुक्का आदमी बाहर भीतर आता-जाता दिखाई पड़ता था.

सुनील दरवाजे पर एक पल ठिठका. फिर पर्दा उठा कर भीतर घुस गया.

भीतर उनमें से दो डाक्टर हीटर के पास जमे हुए बतिया रहे थे. एक डाक्टर की पीठ दरवाजे की ओर थी. दूसरा दरवाजे की ओर मुंह किये बैठा था. सुनील पर नजर पड़ते ही सामने वाले डाक्टर ने तनिक रुखे स्वर में कहा—अब क्या है?

सुनील तनिक लड़खड़ाया. उसे लगा, वह गिर पड़ेगा. लेकिन उसने संभल कर हिम्मत बटोरी. और खुद को संभाल लिया.

दूसरे डाक्टर ने भी अनिच्छापूर्वक उसे देखा और आंखें हीटर पर गाड़ दीं.

—मैं डाइट वगैरा की पूछने आया था. सुनील की आवाज काफी कमजोर थी.

—कोई खास जरूरत नहीं. अगर चाहो तो दूध ले लेना. डाक्टर का स्वर सपाट था.

तभी पर्दा हटा कर प्रोफेसर बतरा भीतर दाखिल हुए. सुनील को खड़ा देख कर डाक्टर से बोले—आप इसे बैठने के लिए तो कहते. डाक्टर को प्रोफेसर बतरा का अचानक हस्तक्षेप शायद रुचा नहीं. उनके चेहरे तन गये.

—ड्यूटी ऑफ हो चुकी है. हम जाने ही वाले थे कि यह आ गया. कह कर वे सचमुच ही उठ खड़े हुए.

प्रोफेसर का मन हुआ कि बढ़ कर डाक्टर के गालों पर एक जोरदार चांटा जड़ दे. इतने रूखे ढंग से पेश आने का मतलब? एक तो लड़के ने खून दिया, तिस पर एक शब्द सहानुभूति का भी नहीं. आदमी हैं या दरिंदे? लेकिन उन्होंने अपनी इस भावना पर किसी तरह काबू पा लिया.

—लड़कों को ले जाने के लिए मेहरबानी कर के वैन भिजवा दीजिए, प्रोफेसर बतरा ने शब्दों को चबाते हुए कहा.

—यह क्या कांसटीट्यूशन में लिखा है कि जिसे वैन लेने जाये उसे छोड़ भी आये? एक डाक्टर ने उकता कर कहा.

सुनील चुपचाप खड़ा यह सब देख रहा था.

प्रोफेसर को वहां अधिक देर रुकना अपमान लगने लगा. उन्होंने आग्नेय नेत्रों से डाक्टर की ओर देखा और सुनील का हाथ थामते हुए बोले—आओ अब यहां से चलें.

और वे डाक्टरों के निकलने से पहले ही बाहर आ गये.

* *

—डाक्टर्स हैव नॉट बिहेव्ड विद अवर ब्वाय. कालेज पहुंचते ही प्रोफेसर बतरा ने प्रिंसिपल से कहा.

प्रिंसिपल ने सरसरी नजरों से प्राफेसर बतरा की ओर देखा. सर को एक झटका दिया. और अपना सर कछुए की तरह कंधों की ओर सिकोड़ लिया. ऐसा करते ही उनकी छोटी-सी गर्दन एकाएक गायब-सी हो गयी. सिर धड़ पर एक पत्थर की तरह रखा हुआ लगने लगा. प्रोफेसर बतरा बेचैनी और क्रोध से कुर्सी पर पहलू बदलने लगे. एक तो वह पहले से ही जले-भुने हुए थे. तिस पर प्रिंसिपल का यह तिरस्कार! वह लगभग चीख-से पड़े—अगर उनकी ओर से हम इस कदर उदासीन हो गये तो भविष्य में किसी ऐसे नाजुक मौके के लिए उनको तैयार कर सकेंगे हम?

प्रिंसिपल का सर एकाएक सेल से निकल आया. चुंधियाई आंखों में मेंढक की तरह कुछ उछलने लगा. चेहरा फिर गिरगिट की तरह रंग बदलने लगा.

—उनका हक छीन कर हम अच्छा नहीं कर रहे. प्रोफेसर बतरा ने अपनी आवाज पर काबू पा लिया

था.--द रिकोगनीशन आव दयर इमोजनल नीड्स इज मस्ट. उन्हें गुमराह होने से बचाने का यही तरीका है.

--ठीक है, मैं सी. एम. ओ. को टेलीफोन कर के उसे सर्टीफिकेट दिला दूंगा. प्रिंसिपल ने जैसे पीछा छुड़ाने के लिए कहा. और व्यस्त-सा दीखने लगा.

प्रोफेसर बतरा को अब और बहस करना फिजूल लगने लगा. वह कुर्सी छोड़ कर बाहर निकल आये.

प्रोफेसर बतरा के बाहर निकलते ही प्रिंसिपल ने छुटकारे की सांस ली. रिसीवर उठा कर सी. एम. ओ. का नंबर मांगा. उधर कुछ पल घंटी बजती रही.

--सी. एम. ओ. स्पीकिंग. आवाज आयी.

--प्रिंसिपल डिग्री कालिज. आप उस लड़के को कुछ दे दिला देते.

--ईवनिंग में लड़के को हास्पिटल भेज दें. सर्टीफिकेट दे दूंगा.

--थैंक्यू. प्रिंसिपल ने रिसीवर क्रैडिल पर कुछ इस तरह से पटका मानो बहुत बड़ी मुसीबत से छुटकारा पा लिया हो.

घंटी बजी. चपरासी भीतर.

--थर्मस से चाय कप में डाल दो. और बी. ए. थ्री में से सुनील को बुला लाओ.

चपरासी ने खूंटी से थर्मस उतार कर चाय कप में ढाल दी. और कप प्रिंसिपल की ओर सरका दिया.

प्रिंसिपल कप में से चाय सुड़कने लगा.

चपरासी चला गया.

चाय का घूंट भरते ही कमरे में सड़ाप की ध्वनि गूंजती. प्रिंसिपल चाय पीता है या गीला चमड़ा पीटता है. स्टाफ रूम में कई बार कहकहे लगते थे.

--मे आई कम इन सर? सुनील ने दरवाजे से हांक लगायी.

--एस, कम इन. चाय का एक लंबा घूंट भर कर प्रिंसिपल ने कहा.

--शाम को हास्पिटल जा कर सी. एम. ओ. से सर्टीफिकेट ले लेना, प्रिंसिपल ने अपनी ड्यूटी निभायी. कछुए-सी गर्दन गर्व से तन गयी. चाय के घूंट के साथ हाजमे की गोली की तरह संतोष गटक लिया.

--यह बात नहीं है सर, आखिरकार कुछ तो. . .

प्रिंसिपल ने सुनील को बीच में ही टोक दिया--इतना ही जरूरी है तो. . . प्रिंसिपल ने अपनी बात अधूरी छोड़ कर जेब की ओर हाथ बढ़ाया.

--इसकी जरूरत नहीं है सर. और सुनील एक झटके से आफिस से बाहर निकल आया.

* *

शाम को जब सुनील हास्पिटल पहुंचा तो पांच बज रहे थे. उसका आने को मन नहीं हो रहा था. होता भी कैसे, उसे हलाल कर उसकी रगों पर रेगमार चलाया गया था. वह बेहद उखड़ा-उखड़ा-सा महसूस कर रहा था. उस दिन उसका व्रत था. सर फोड़े की तरह दुख रहा था. रह-रह कर आंखों के सामने चिंगारियां उड़ने लगती थीं.

सी. एम. ओ. आफिस के बाहर दो-तीन मरीज खड़े थे. भीतर भी दो-एक लोग जमे हुए थे. उसने चपरासी से अपने आने की सूचना भीतर भिजवा दी.

उसे काफी देर इंतजार करना पड़ा. भीतर वाले उठने को ही नहीं आते थे. बाहर खड़े मरीज भी आपस में बड़बड़ाने लगे थे. उसे खड़ा रहना काफी कठिन लग रहा था. लेकिन गैलरी में एक ही स्टूल था, जिस पर चपरासी आसीन था. उसने दीवार के सहारे टिक कर आंखें मूंद लीं. पता नहीं कितनी देर वह वैसे ही निश्चल खड़ा रहा.

तभी उसके कानों में जैसे बहुत दूर से आता हुआ स्वर पड़ा--डाक्टर साहब बुला रहे हैं.

उसने खुद को बटोरा और लड़खड़ाता हुआ-सा भीतर घुस गया.

भीतर सी. एम. ओ. के सिवा सिर्फ एक ही आदमी और था. वह जल्दी-जल्दी पलकें झपका रहा था. और हाथों से टेबल पर तबला बजा रहा था.

सी. एम. ओ. ने टेबल की दराज में से टाइप किया हुआ एक कागज निकाल कर सुनील की ओर बढ़ा दिया-- यह रहा सर्टीफिकेट. और फिर उसी दराज में से एक सफेद लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया-- इसमें सौ एनर्जी टेबलट्स हैं. और बीस रुपये.

सुनील का मन हुआ कि यह कागज चिंदी-चिंदी कर के कमरे में उड़ा दे. और लिफाफा सी. एम. ओ. के मुंह पर दे मारे. साले इसमें भी एहसान जता रहे हैं. उसका मन कड़वाहट से भर गया. उसने चाहा यह सारी कड़वाहट सी. एम. ओ. के चेहरे पर थूक दे.

उसने लिफाफा खोल कर नोट निकाले और सी. एम. ओ. की ओर बढ़ा कर तिरस्कार से बोला-- रेडक्रास फंड में मेरी ओर से जमा कर लेना.

सी. एम. ओ. ने नोट बाज की तरह झपट लिये. सुनील जब दरवाजे से निकल रहा था तो सी. एम. ओ. ने पीछे से पुकारा-- सुनो.

वह ठिठक कर पीछे घूम गया.

--तुम्हें स्टेट की ओर से सर्टीफिकेट दिलाने की भी कोशिश करूंगा. डिप्टी कमिश्नर से प्रशंसा पत्र तो मिलेगा ही. शायद कोई इनाम भी मिल जाये. सी. एम. ओ. बिछा जा रहा था.

इस अचानक आने वाले परिवर्तन ने सुनील को चौंका दिया. वह विस्फारित नेत्रों से सी. एम. ओ. को देखने लगा.

सी. एम. ओ. हंस दिया. एक निहायत चापलूस हंसी.

--कल अपने दूसरे साथी को भी भेज देना. हमें खून की सख्त जरूरत है.

सुनील ने मुंह बिचका दिया. और फिर बिना एक पल भी वहां ठहरे आफिस से बाहर निकल आया.

बाहर अंधेरा धीरे-धीरे बढ़ रहा था. मेन गेट की सबसे निचली सीढ़ी पर एक कुत्ता लेटा हुआ था. सुनील ने एक जोरदार लात कुत्ते के जमायी. कुत्ता चीत्कार करता हुआ भाग खड़ा हुआ. वह रास्ता टटोलता हुआ उस अंधेरी गली में आगे बढ़ने लगा. □□□

उप संपादक, लोक संपर्क विभाग, शिमला-२

आत्मरचना (२९)

गर्दिश के दिन

• श्रवणकुमार

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरूआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवीं, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शा पुष्प, राजेंद्र यादव तथा दीप्ति खंडेलवाल की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है——इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं, इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी कथाकार श्रवण कुमार की यह आत्मरचना

● ●

कभी-कभी लगता है जैसे जीवन में एक अजीब-सा ठहराव आ गया है. फिर लगता है, जैसे हमें गठरी में बांध कर एक ओर पटक दिया गया है. जैसे कि हम निरीह, निश्चेष्ट प्राणी हैं और हमें किसी ओर भी ठोकर मार कर ढुलकाया जा सकता है. लेकिन हमारे अंदर कुछ है जो हर वक्त करवटें लेता रहता है, जो हर वक्त बेचैन रहता है, और कुछ कर गुजरने पर मजबूर करता रहता है.

मैं अपने दिमाग पर जोर देता हूं. ऐसा क्यों है कि अकसर चारों तरफ साजिशों का ही एहसास होता रहता है? क्या यह भी एक साजिश नहीं है कि मेरे व्यक्तित्व में वह तीखापन नहीं आ पाया जिसकी कभी अपेक्षा की गयी थी? और क्या यह भी एक साजिश नहीं है कि अक्सर मेरे अस्तित्व को भी नकारने की कोशिश की जाती है?

मैं मुड़कर समूची स्थिति का जायजा ले लेना चाहता हूं. लेकिन मुड़ कर देखने की फुरसत किसको है? जो एक बार छूट गया, सो छूट गया. जिंदगी की रफ्तार कुछ ऐसी बेढंगी है, परिवेश में कुछ ऐसा बेहूदापन है, जो हर वक्त हमको भींच कर एक सांचे में बंद कर देना चाहता है. बचपन में 'शाह दौला की चुहिया' कहे जाने वाले 'जीव' देखा करते थे. मुंह-सिर-शरीर सब आदमी का, लेकिन उनके मस्तिष्क को कुछ इस तरह से दबा दिया जाता था, कि जहां उनका सिर अनुपात में बिल्कुल छोटा रह जाता था, वहां उनके शरीर के अंग भी अवरुद्ध हो जाते थे. कुल मिला कर वे बौनों के बड़े भाइयों का एहसास देते थे. क्या हमारी दशा भी लगभग वैसी नहीं है?

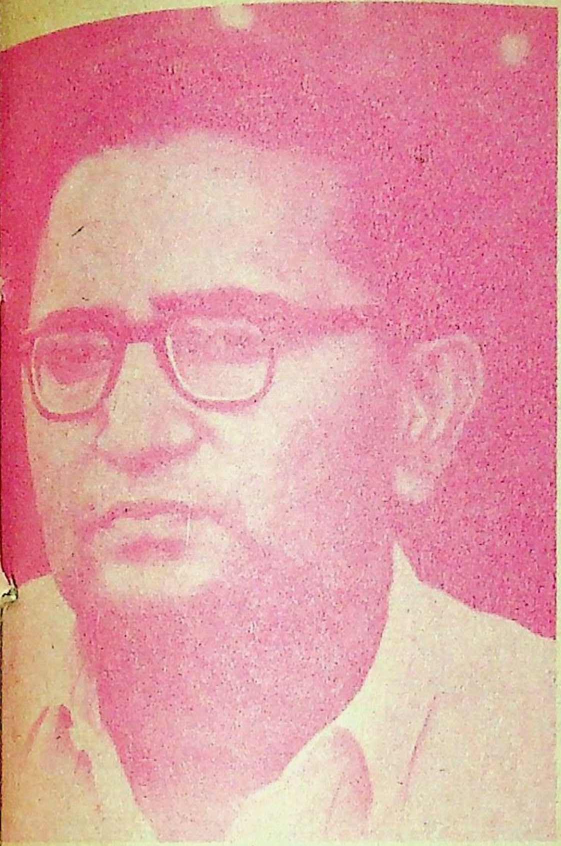
मैं अक्सर सोचता हूं. कौन है इस साजिश के पीछे? किसने हमें दगा दिया? क्योंकि इस साजिश का शिकार मैं ही नहीं हूं, मेरे जैसे वे असंख्य लोग भी हैं, जो आराम खरीद नहीं सकते, जिन्हें जिंदगी की छोटी-से-छोटी जरूरत के लिए बेहूदा जद्दोजहद करनी पड़ती है और जिन्हें अकसर फालतू करार दे दिया जाता है. ये सब वे लोग हैं, जिन्हें हम दूसरे शब्दों में 'अनप्रिविलेज्ड' या मामूली लोग कह सकते हैं. मेरे लघु उपन्यास '**प्रेत**' में एक ऐसे ही बेहूदा स्थितियों से कशमकश करने वाले पात्र का जन्म हुआ है. वह पात्र इन स्थितियों को बराबर ललकारता रहता है, लेकिन ये स्थितिया ऐसी 'चालाक' हैं कि हर बार उसे झांसा देकर उसकी पकड़ से बाहर हो जाती हैं. मेरी '**चालाक**' कहानी में भी ऐसी ही वाहियात स्थितियों का चित्रण है.

★ ★

मां कहती है कि मैंने सहक-सहक कर लिया है. वह कहती है कि मैंने करतारपुर में 'सुक्खा' था कि हे बाबा, जे तू सच्चा हैं वे ते . . . . बाबा सच्चा ही निकला क्योंकि मेरा जन्म हुआ, चार लड़कियों के बाद, और घर में काफी खुशियां मनायीं गयीं. कहते हैं बचपन में मेरे गले में सोने की एक चेन भी रहती थी, कोई दो तोले की, जिसे कहते हैं हमारे किरायेदार की बीवी ने चुपके से उतार लिया था और जिसे पुलिस में रिपोर्ट करने के बावजूद बरामद नहीं किया जा सका था.

जाहिर है कि मेरे जीवन का आरंभ अभाव में नहीं हुआ. पिताजी पहले कभी स्कूल मास्टर रहे थे, जिसकी वजह से उनके पुराने परिचित उन्हें 'मास्टरजी' कहकर ही पुकारते थे. बाद में वह रेलवे-मुलाजिम हो गये और आखिर तक रेलवे-मुलाजिम ही रहे. पिताजी थे, इसलिए क्या कहूं, पर यह मुलाजिमत थी लाजवाब. आज मैं भी कितना चाहता हूं कि काश, यह क्लास वन अफसरी न हो कर कहीं इंस्पेक्टरी होती! और इस महंगाई और अभाव के युग म तो इंस्पेक्टरी के प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी है.

मेरा जन्म गुजरांवाला में हुआ. मेरी जन्म-तिथि शायद १ अगस्त १९३१ है. सही जन्मतिथि जानने की बात मेरी शादी तय करते समय उठी थी. तभी मेरी जन्म-पत्री भी बनी. जन्म-पत्री में कई उत्साहजनक बातें थीं. शायद उन्हीं से प्रभावित हो कर मेरे सास-ससुर



ने यह रिश्ता पक्का किया था. लेकिन अब . . . ? गुजरांवाला अब पाकिस्तान में हैं, पर गुजरांवाला की कई यादें अब भी वैसे की वैसी बनी हुई हैं. कुछ यादों को मैंने अपनी एक कहानी **'मामूली लोग'** में पिरोया है, कुछ यादें अब भी बिन-पिरोयी हैं. मसलन, मैंने अपनी रचनाओं में उन लोगों का कभी कोई जिक्र नहीं किया, जिनसे मेरा परिवेश बना था; मेहनतकशी और जफाकशी जिनका जीवन था, और उसके बावजूद जिनके घरों के चूल्हे अक्सर ठंडे पड़े रहते थे. हां, कुछ ऐसे जीवन-प्रसंग भी हैं जिन्हें मैं और किसी रूप में बयान नहीं कर पाया. मसलन यह कि मेरी मां सिख परिवार की है और मुझे भी उसने सिख बनाना चाहा था. शुरू के चार-पांच वर्षों तक, जैसा कि मुझे अब बताया जाता है, मेरे नाम के साथ 'कुमार' की जगह 'सिंह' भी जुड़ता रहा, पर फिर 'सिंह' की जगह' कुमार कब हो गया, इसका मुझे इल्म नहीं.

मेरी प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली में शुरू हुई. चाहें तो जिस मोहल्ले में हम रहते थे, उसका नाम भी बता दूं, पर उससे फायदा कुछ नहीं होगा. हां, इतना जरूर कहूंगा कि इस मोहल्ले में हर किस्म के लोग रहते थे, अमीर-गरीब दादा-दब्बू, कुम्हार-कहार. लेकिन जिन लोगों से मेरी दोस्ती हुई, तकरीबन सब गरीब, यानी कुम्हार-कहार ही थे. इनमें से कुछ मेरे सहपाठी थे. जैसे वे तख्ती-स्लेट लटका कर स्कूल जाते थे, वैसे मैं भी जाता था. जैसे वे तख्ती पोतते थे, वैसे मैं भी पोतता था. मुझे इस दोस्ती का एक खास फायदा (!) भी हुआ. वह यह कि मैंने कम उम्र में ही कई 'बातें' सीख लीं. हां, मुझे जो बात नहीं भूलती, वह थी एक कुम्हार-परिवार में हुक्को का निर्ममता से प्रायः हर रोज पीटा जाना, और उसका क्रंदन करना. हुक्को की पिटाई भी हाथों से नहीं, लाठी से होती थी. दरअसल हुक्को, एक कुबड़ा, अपंग युवक था, जिसके सौतेले भाई-बहन तो बाकायदा घर में रहते थे और उसे नसीब हुई थी एक सीखची-मढ़ी, जमीनदोज कोठरी जो जानवरों के लिए शायद ज्यादा उपयुक्त होती. अपंग होने के कारण हुक्को अपने आप कोठरी में से बाहर नहीं निकल पाता था और हाजत के लिए चिल्लाता रहता था और जब मजबूर हो जाता था तो वहीं गंदा कर देता था और फिर सिलसिला शुरू होता था, उसकी पिटाई का. मैं अक्सर सोचता—क्या गरीब भी एक-दूसरे के प्रति इस कदर निर्मम हो सकते हैं?

लेकिन मेरी गर्दिश? हो सकता है, मुझमें खुद्दारी का माद्दा अधिक रहा हो कि मैं किसी भी हालत में किसी प्रकार की पर-निर्भरता सहन नहीं कर सकता था. प्राइमरी की शिक्षा पूरी हुई तो फिर गुजरांवाला लौटना पड़ा. खुद्दारी क्योंकि मुझमें अब तक पूरी तरह जग चुकी थी, इसलिए मुझे यह भी गवारा नहीं नहीं था कि मैं क्लास में सबसे आगे न रहूं. इत्तेफाक ऐसा था कि जब तक मैं गुजरांवाला में पढ़ता रहा, स्कूल का सर्वग्र विद्यार्थी माना जाता रहा. और शायद यही कारण था कि घर से खर्चा पूरा न मिलने पर मैंने दो सहपाठियों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था. लेकिन इसका अर्थ यह भी है कि मेरे भीतर विद्रोह की भावना ने जन्म लिया था.

पाकिस्तान बनने पर हमें गुजरांवाला छोड़ना पड़ा. लाखों-करोड़ों में हम भी थे. किसी प्रकार का जानी नुकसान तो न हुआ, पर वैसे सब कुछ मिसमार हो गया. कुछ दिनों तक फगवाड़ा में शरण ली (पिताजी तो रिटायर होने के बाद वहीं बस गये). मैं उन दिनों दसवीं कक्षा में था. मां से बात-बात प ठन जाती थी. वह किसी न किसी बात को ले कर चिंता-ग्रस्त रहती. वह पाकिस्तान बनने से पहले भी चिंता-ग्रस्त रहती थीं. पिताजी भी अधिकतर मां की ही तरफदारी करते. या कभी-कभी पिताजी खुद ही कुछ उलटा-सीधा कह देते. मुझे अकसर अपने माता-पिता पर दया भी आती. बेचारे, गरीब लोग! जाने यहां तक भी किस तरह पहुंचे हैं! खैर, मैं फगवाड़ा छोड़कर दिल्ली चला आया, और यहीं बड़ी बहन के पास रह कर हायर सैकेंडरी करने लगा.

पिताजी की नौकरी बहाल हो चुकी थी. इसलिए वह परिवार को ले कर खड़गपुर चले गये. मैंने भी हायर सैकेंडरी पूरी की और दिल्ली छोड़ पहले वाराणसी और फिर कलकत्ता चला गया. पिताजी का रिटायरमेंट अब बिल्कुल करीब था. उन्होंने इस बीच यही चाहा था कि पढ़ाई-लिखाई छोड़ उन्हीं के कार्यालय में लग जाऊं. इससे पहले मां ने भी यही चाहा था कि मैं 'ढंग से कमाने लगूं. बल्कि एक तरह से तो वह शुरू से ही मेरी शिक्षा के हक में नहीं थी और चाहती थी

कि मैं कोई 'धंधा' करूं.

खैर, मैं भी बजिद था. मुझे अपने ऊपर पूरा एतकाद था. बल्कि दिल्ली और वाराणसी में भी मैं अग्रणी विद्यार्थियों में रहा. कलकत्ता में टर्मिनल परीक्षाओं में तो ठीक रहा, पर अंतिम परीक्षा में लुढ़क गया. किसी को विश्वास ही न होता था कि मैं परीक्षा में असफल हो सकता हूं. कहां तो यूनिवर्सिटी का रिकार्ड तोड़ने की बात और कहां यह असफलता! जिन दिनों रिजल्ट निकला, उन दिनों मैं फगवाड़ा में था. मां तो पहले ही कलपती रहती थी, अब और कलपने लगी. पिता जी को चिढ़ इस बात की थी कि मैं अपने पाठ्यक्रम की ओर ध्यान न दे कर 'फिजूल' की चीजें पढ़ता रहता हूं. दरअसल, हुआ भी कुछ ऐसा ही था. जब कभी पिता जी कलकत्ता में होस्टल में मेरे पास आये, उन्होंने मुझे वॉल्तेयर, शॉ, दोस्तोएवस्की, खलील जिब्रान, आंद्रे जीद या ऐसे ही किसी लेखक को पढ़ते पाया.

लेकिन यहां मुझे थोड़ी और साफगोई से काम लेना होगा. ठीक-ठीक कहूं तो जब तक मैं क्लास का, और स्कूल का भी, अग्रणी विद्यार्थी रहा, तब तक मुझे साहित्य नाम की किसी चीज का इल्म नहीं था, पर दिल्ली लौट कर बात कुछ और हो गयी. हमारे एक अध्यापक थे, थम्मन. उनसे ही पहली बार गोर्की और जोला का नाम सुना, और उन्होंने ही हमें बताया कि **'गाइड टु मॉडर्न थाट'** (सी. ई. एम. जोड) एक उपयोगी पुस्तक है. फिर उन्हीं से हमने **'हिंट्स टु सेल्फ-कल्चर'** की बात सुनी, और शायद उन्हीं की बदौलत मैंने पहली बार ऑलिवर गोल्डस्मिथ की नकल में कुछ लिखने की कोशिश की.

यहां एक मित्र (दरअसल मित्र के बड़े भाई) हरिकृष्ण मिट्टू का भी जिक्र करना चाहूंगा (आजकल वह हिमाचल प्रदेश सरकार के जन-संपर्क विभाग के निदेशक हैं.) जिन दिनों का मैंने ऊपर जिक्र किया, उन दिनों हम सब दिल्ली के एक ही मोहल्ले में रहते थे. हरिकृष्ण बला के जहीन आदमी थे. उन दिनों गर्दिश के शिकार थे. बुरी तरह. पर उन्होंने हाथ से हिम्मत न जाने दी. उन्हीं से पहली बार 'सैटायर' का अस्त्र के रूप में प्रयोग और उस अस्त्र को सशक्त रूप से चलाने वाले योद्धा वॉल्तेयर का नाम सुना और उन्हीं की प्रेरणा से मैं **'कंदीद'** तथा **'जा दीग'** पढ़ गया. मुझे याद है, कलकत्ता में मैंने एक कवि से कहा था कि बिना 'सैटायर' का उपयोग किये हमारा लेखन भोथरा ही रहेगा. और शायद यही कारण है कि कलकत्ता के एक अंग्रेजी साप्ताहिक **'द ओरियेंट इलस्ट्रेटिड वीकली'** में मैंने जब एस. के. चड्ढा के नाम से **'द ग्लिम्पसिज ऑव कलकटा'** लेख लिखा था, तो उसका अवलंब भी 'सैटायर' ही था.

* *

घर वालों को मुझसे एकदम विरक्ति हो चुकी थी. पिता जी को मेरा पत्रकारिता तथा लेखन की ओर रुझान बिल्कुल सह्य नहीं था. इसलिए घर में एक दिन खासा बवंडर मच गया. मैंने तहैया कर लिया कि घर की एक-एक चीज को तिलांजलि दे कर अपने तईं जीवन शुरू करूंगा. हुआ भी यही. मैं सब कुछ छोड़ कर घर से भाग खड़ा हुआ (पिता जी तब तक रिटायर हो चुके थे) पर मां के कलपने-कुरलाने की आवाजें मेरा अब भी पीछा कर रही थीं. मैं मां की इन आवाजों की जद से दूर हो जाना चाहता था. पिता जी को पता चला तो वह मेरी छोटी बहन को साथ लिये रेलवे स्टेशन तक ढूंढ़ते-ढूंढ़ते चले आये. मेरे सामने अब एक ही विकल्प था, और वह था बंबई. बहन और पिता जी ने जबरदस्ती मेरी मुट्ठी में दो सौ रुपये ठूंस दिये.

४४–वर्षीय श्रवणकुमार का जन्म गुजरांवाला (पाकिस्तान) में हुआ. श्रवणकुमार अपनी रचनाओं में निरंतर विकासशील रहे हैं और सामान्य जीवन की कहानियां लिखना उन्हें अच्छा लगता रहा है. अब तक दो कहानी-संग्रह, एक लघु-उपन्यास तथा कुछ संपादित पुस्तकें प्रकाशित.

बंबई में एक-एक अखबार के दफ्तर की खाक छानी. सपना था पत्रकारिता के माध्यम से लेखक बनने का. कोई रास्ता बनता नजर नहीं आता था. मुल्कराज आनंद, कृष्णचंदर, सब से मिल लिया था. मुल्कराज आनंद से थोड़ा रिश्ता भी था, क्योंकि उनके भाई की लड़की उन दिनों मेरी मंगेतर थी. पर मुल्कराज आनंद ने सबसे अधिक निराश किया. उन्होंने पहले तो मुझे एक लंबा-चौड़ा भाषण पिला डाला, और इस बात पर विशेष बल दिया कि यदि मेरे पास कहने को कुछ विशेष है तो लिखूं, वरना 'स्क्राइब' बनने से कोई फायदा नहीं. उनका यह भी कहना था कि किसी भी हालत में बी. ए. की डिग्री जरूर प्राप्त कर लूं. सोचता हूं यदि उनकी बात न मानी होती तो जीवन ने शायद दूसरा ही मोड़ ले लिया होता.

बंबई से मैं दिल्ली चला आया था. दिल्ली में मेरी दो बड़ी बहनें थीं. अब मैं कभी बड़ी बहन के यहां रहता, कभी उससे छोटी के. सब कहते थे कि स्टेनोग्राफी और टाइपिंग सीख कर कहीं लग जाओ. अधिकतर लोगों की नियति तो यही है. वे इससे परे सोच भी नहीं सकते. पर मैं अडिग था. इस बीच कलकत्ता के मेरे दो मित्र मुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आ निकले. एक ने बिरला एयरलाइंस में नौकरी कर ली थी—इसलिए उसके पास कुछ पैसा था. दूसरा मित्र मेरी तरह ही खाली था, पर मुझसे कुछ बेहतर हालत में था. मेरे मित्र मेरी स्थिति से बखूबी वाकिफ थे. उन्होंने कहा, चिंता मत करो, सब ठीक हो जायेगा. वे, दरअसल, मसूरी का कार्यक्रम बना कर आये थे. इसलिए मुझे भी साथ लिवा ले गये. कुछ दिन तो अच्छे बीत गये, पर फिर वही चिंता. अब पिता जी मेरी किसी भी कीमत पर मदद करने को तैयार न थे,

और उधर मेरे पास पैसे के नाम पर एक कौड़ी भी न थी. गनीमत यह थी कि कलकत्ता से मेरे उन दोनों मित्रों का पत्र आ गया. उन्होंने कलकत्ता में मेरे लिए नौकरी की व्यवस्था कर ली थी और मुझे बुला भेजा था. मैं किसी-न किसी तरह कलकत्ता पहुंच गया और एक हिंदी दैनिक में सौ रुपये माहवार की नौकरी करने लगा. नौकरी तो मिल गयी. पर हिंदी मुझे नाम-मात्र को ही आती थी.

★ ★

मैंने अभी-अभी जिन दो मित्रों का जिक्र किया है, उनमें से एक ने ही नौकरी की थी. दूसरे ने एम. ए. करने की सोची. मेरे इस मित्र का नाम था जगदीशप्रसाद खंडेलवाल. हिंदी में खूब रवां था, इसलिए मेरी कई बलाएं अपने ऊपर ले लेता था. मसलन, जब मुझे किसी न्यूज आइटम का अनुवाद लेना होता, तो मैं या तो उसका सहारा लेता या शब्दकोश का. हिंदी के प्रति मेरी रुचि जगाने का जिम्मा भी उसी के सिर है.

पर नौकरी मिल जाने से हमारी मुश्किलात का हल नहीं हुआ, बल्कि मुश्किलात ने एक तरह से नया और उग्र रूप ले लिया. जगदीश के फूफा पहले जगदीश से थोड़ा परेशान थे. मेरे वहां होने से उनकी परेशानी और बढ़ गयी. उन्हें शायद उतनी आपत्ति न थी, जितनी उनके भाई को थी. इसलिए फूफा ने जब बाहर किया तो हम दोनों को ही कर दिया. हां, इतना जरूर किया कि घरसे बाहर करने से पहले उन्होंने हमारे लिए अपनी दुकान के पास ही एक कमरा (बल्कि एक कमरे का तिहाई) तय कर दिया. किराया था बीस रुपये माहवार. कमाने वाला मुख्यतः मैं ही था. स्टोव मैं साथ ले ही गया था. इसलिए खाना हम स्वयं ही बनाने लगे. जगदीश को खाना बनाने में अधिक रुचि थी. इसलिए वह खाना बनाता और साथ में कविताएं भी लिखता रहता.

लेकिन यह खाना बनाने का सिलसिला कायम न रह सका. खाना मैं भी बना सकता था, पर खाना बने तो किससे? कभी स्टोव में तेल नहीं है तो कभी दाल नहीं है. किसी-किसी दिन चाय की पत्ती भी नहीं होती थी. चाय की पत्ती का इंतजाम होता तो दूध का चूर्ण नदारद. दूध का चूर्ण लाते तो चीनी गायब हो जाती. यह सब क्यों हो रहा था? मैं परेशान था, जगदीश परेशान था. नौकरी करते एक महीना बीत गया था, पर तनख्वाह के नाम पर बीस रुपये हाथ में थमा दिये गये थे. अब कार्यालय जाऊं भी तो कैसे? हुगली पार करवाने के नाव वाला दो पैसे लेता था. ट्राम पर शायद तीन पैसे लगते थे. पर बिना पैसे के ट्राम या नाव पर कौन बैठने देता? जेब तो खाली होती ही थी, अब पेट भी खाली रहने लगा. कभी रुलाई आती, कभी लड़ने को मन होता. एक बार मैं अपने पत्र के संपादक और मैनेजर से भिड़ भी गया था. मैं दया का पात्र नहीं बनना चाहता था. अजब हालत थी. मेरा इंजर-पिंजर सब खस्ता होता जा रहा था. पहचानने वाला मुझे मुश्किल से ही पहचान पाता. इसी से मेरी बीनाई इतनी कमजोर हो गयी कि चश्मे के शीशे और-और मोटे होने लगे.

इधर खाली पेट और उधर जमीन पर सोना. सोने को होते तो खटमलों की कतारों की कतारें हम पर चढ़ाई कर देतीं. बड़ी कुढ़न हो गयी थी उन दिनों मन में मेरे. ऐसे में क्या पढ़ें और क्या जियें!

मन अच्छा होता तो सब अच्छा लगता, वरना सब बेमानी दीखता.

इस संकट ने मेरे मन पर कई घाव छोड़े, पर इस संकट ने मेरी अभिव्यक्ति को नये प्राण भी दिये. उन दिनों जिस तीव्रता से जो कुछ झेल रहा था, उसी तीव्रता से उसे शब्दचित्रों का रूप देने लगा. प्रायः हर रोज पत्र में 'दिव्य' उपनाम से इस किस्म का कुछ-न कुछ छपने लगा. **'भिखमंगे'** उन्हीं दिनों की देन है.

इम्तिहान सिर पर था. इसलिए अब जगदीश मेरी जगह काम करने लगा था और मैं उसकी जगह. इसके साथ-साथ हमें रामगोपाल के रूप में एक मित्र, संरक्षक भी मिल गया था, क्योंकि जब कभी रामगोपाल हमारा स्टोव ठंडा देखता, उसे गरम करने की वह कोई-न कोई तरकीब भिड़ाता. जितना संरक्षण हमें उससे मिला, उतना ही पड़ोस के (हमारे कमरे के बाकी दो-तिहाई में रहने वाले) बंगाली परिवार से मिला. उस परिवार के पास अपने लिए चाहे कोई जुगाड़ हो या न हो, हमारे लिए कुछ-न कुछ कर ही देते थे. दूसरे, जाने क्यों, सब ने अपना दांव मेरे इम्तिहान पर लगा रखा था. दरअसल, इस परिवार से हमारा संबंध काफी बढ़ गया था, जिससे मालिक-मकान तथा उसके परिवार के लोग मारे ईर्ष्या के अंगारा हो उठे थे. परिणाम स्पष्ट ही था. हम सबको वह जगह खाली करनी पड़ गयी.

★ ★

पिता जी को मेरे हालात का किसी तरह पता चल गया था. इसलिए उन्होंने मुझे बड़ा मिन्नत-समाजत भरा पत्र भेजा और साथ में कुछ पैसे भी. मेरी भी हिम्मत अब जैसे टूट चुकी थी. हर रोज की कशमकश मुझे कुंठित करने लगी थी. मुझमें अब वह धार न थी. इम्तिहान खत्म हुए कुछ दिन बीत चुके थे. इस बीच मैंने दो-एक अंग्रेजी दैनिकों में भी कोशिश की थी, पर कामयाब नहीं हो सका था. हां, उनमें से एक ने मेरे दो-तीन अनुवाद जरूर छापे थे. अब जिस कमरे में मैं (क्योंकि अब जगदीश मेरे साथ नहीं था) रहता था, वह बिल्कुल लबे-सड़क था और था भी चौ-मंजिले पर. ट्रामें नीचे से गुजरतीं तो लगता जैसे मुझमें बिजली का करंट छोड़ती जा रही हों. मैं रह-रह कर चौंकता. जीवन एकदम असुरक्षित हो गया था. प्रांतीयता वाले गुंडों की हमेशा आशंका बनी रहती.

दिल्ली लौटने को हुआ तो काफी आंसू बहे. वह बंगाली परिवार नहीं चाहता था कि मैं दिल्ली लौटूं. उन्हें मेरी गरीबी भी मंजूर थी. लेकिन मुझे दिल्ली लौटने में ही सुरक्षा दीखती थी, इसलिए मैं लौटने को मजबूर था. बहरहाल, एक हथ-रिक्शा में

ही सारा सामान समा गया था. सामान था भी क्या? मुश्किल से एक सूटकेस और एक छोटा-सा विस्तर. बस! रिक्शा में बैठा तो मन में एक कहानी चलने लगी जो गाड़ी में बराबर चलती रही. दिल्ली पहुंच कर मैं सबसे पहले उससे ही निबटा. वह एक तरह से मेरी पहली कहानी थी–'जीवन का सार'. यह १९५३ की बात है.

दिल्ली में मैं अपनी बड़ी बहनों के पास ही रहता था, पर कुछ भी न होने का एहसास मुझे बराबर कुतरता रहता. अब यह जरूर था कि दोनों वक्त की रोटी मिल जाती थी (कमा कर नहीं), पर शर्मिंदगी मेरा साथ न छोड़ती थी. जाने कब पिता जी अपनी साइकल दिल्ली में छोड़ गये थे, जिसका मैं अब भरपूर इस्तेमाल करता. हर रोज बीस-पच्चीस मील का चक्कर लगाना हस्ब-मामूल बन गया था. अगर कहीं कोई काम मिलता भी तो एक-आध महीने के लिए, इससे ज्यादा नहीं.

यहां मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है. बहनोई के घर में उनके बड़े भाई भी आ गये थे. वह बहनोई पर बाप जैसा हक जमाते थे. मेरा वहां रहना उन्हें बिल्कुल गवारा नहीं था. साथ में उनके एक दूर के रिश्ते की उनकी बहन भी थी. एक दिन मैं साइकल पर चक्कर लगा कर पसीने से तर-बतर लौटा तो वह बहन बोली––ऐनक ला (उतार) छड (छोड़ो). अक्खां नूं हवा लग्गन दे. उसका इससे अभिप्राय असल में यह था कि मैं चश्मा उतारूंगा, तो बिल्कुल अंधा हो जाऊंगा. इन लोगों के अनुसार मेरे चश्मा लगा होना तथा मेरा नौकरी न करना मेरे बहुत बड़े दोष थे, और इसी कारण बिरादरी वाले मुझे अपनी लड़की देते हिचकते थे. (पहले वाला रिश्ता अब तक टूट चुका था.)

उसी रात शायद बहनोई के भाई ने दूध मांगा. दूध शायद बिल्ली पी गयी थी. इस बात का पता चलने पर वह तुरंत बोले––मुझे पता है कौन कुत्ते-बिल्लियां दूध पीते हैं! उनका इशारा स्पष्ट ही था. इसलिए मुझे सुबह ही कहीं और इंतजाम करना पड़ा.

इस बीच मैंने काफी जद्दोजहद की थी, लेकिन धीरे-धीरे मैं काफी छपने लगा था. अज्ञेय उन दिनों **'थॉट'** के साहित्य-संपादक थे. रामसिंह (**'थॉट'** के संपादक) ने मुझे उन दिनों की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित मुख्य कृतियों की हर महीने समीक्षा तैयार करने को कहा था, पर अज्ञेय ने उसे आगे न बढ़ने दिया.

★ ★

लेकिन अब मैं क्या हूं? यह एक बड़ा मार्मिक प्रश्न है. कहने को मेरे दो कहानी-संग्रह, एक लघु उपन्यास और दो-तीन अनुवाद - पुस्तकें छप चुकी हैं, अनेक पत्र-पत्रिकाओं में चर्चित भी रहा हूं. ढेरों पाठकों की आत्मीयता भी प्राप्त कर चुका हूं, पर फिर भी लगता है कि मंजिल अभी मीलों दूर है. कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है कि जहां से शुरू किया था, वहां पहुंच गये हैं. मेरे कुछ-एक लेखक बंधु हैं और वे मामूली आदमी की चिंताओं से दूर भागते रहते हैं. कुछ-एक मामूली आदमी की बात करते हैं, पर उनके लिए एक मामूली आदमी वह प्राणी है जो अनिवार्य रूप से झोपड़ी में रहता हो–यानी वे बाकी के 'अनप्रिविलेज्ड' वर्ग से आंखें मूंद लेना चाहते हैं. कुछ ऐसे भी हैं जो और कुछ नहीं तो 'काउंटर वर्ल्ड' (प्रति संसार) की दुहाई देते हैं. लेकिन यह सब सच्चाई से मुंह मोड़ना है, या एक नकाब के बाद दूसरा नकाब पहनना है. उन्हें मेरे फ्लैट से चिढ़ है. उन्हें मेरे स्कूटर से भी चिढ़ थी (उसे तो कर्ज चुकाने के लिए बेचना पड़ा.) उन्हें मेरा फ्रिज, कूलर, सोफा सेट, पलंग, स्टील की अलमारी, सभी कुछ खलते हैं. डाइनिंग टेबल, राइटिंग टेबल भी उन्हें आभिजात्य के प्रतीक लगते हैं. उनके शब्दों में मैं यों ही घुटन और 'बदहवासी' की दुनिया में रहता हूं! लेकिन क्या ये चीजें हम सब के पास नहीं होनी चाहिए? क्या मैं अपनी यह तथाकथित संपन्नता किसी तरह अपनी झोपड़ी में रहने वाले देशवासियों के साथ बांट सकता हूं? वैसे ये सब सामान कभी-कभी विसंगत भी लगता है. जैसे-डाइनिंग टेबल है, पर उस पर बैठ कर खाने लायक खाना नहीं. कूलर है, पर पॉवर का खर्च बरदाश्त करने की ताब नहीं...

मामूली आदमी को दूसरी तरह परिभाषित करने वाले अतिवादियों के लिए मैं एक संपन्न व्यक्ति हूं. तनख्वाह कट-कटा कर मिलती ही क्या है? जो मिलती है, दो-चार बिल चुकाने में ही हवा हो जाती है. तब हर महीने कुछ-न कुछ चालाकी से काम लेना होता है––इस महीने उसके रोके, दूसरे महीने दूसरे के. एतबार बना हुआ है, इसलिए किसी-न किसी तरह चल जाता है. पर कई बार उलाहना भी मिल जाता है––चलो, हम तो एक महीना और इंतजार कर लेंगे, पर मुश्किल तो अगले महीने आपको आयेगी! वाकई, बनिया ठीक कहता है. घर पहनने के लिए अपने एक ही पाजामे से चला लेता हूं, पर बच्चे की स्कूल-ड्रेस तो बनवानी ही पड़ेगी. नहीं बनवा पाते तो सिर पर आफत-सी मंडराने लगती है. और यह आफत तब और भयावनी हो जाती है, जब उनके जूते फटते हैं. तीन बच्चे, तीनों स्कूल जाने वाले. उधर फगवाड़ा में मां और साथ में एक बहन. (पिता जी का देहांत हुए तेरह-चौदह वर्ष हो गये.) उन्हें कुछ नहीं भेजें तो लगता है जैसे कोई जुर्म कर रहे हों.

लेकिन ये मेरी व्यक्तिगत मजबूरियां नहीं हैं. मेरी ये मजबूरियां साझी हैं. यह एक आम आदमी की मजबूरियां हैं. मैं जानता हूं सच और झूठ के बीच अब भेद कर पाना बहुत कठिन हो गया है. मैं यह भी जानता हूं कि तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर हमारे सामने पेश करना एक कला बन गया है, लेकिन स्थितियों से जूझना आम आदमी की नियति है और उसे हम झेले जा रहे हैं.

नहीं, मेरी गर्दिश खत्म नहीं हुई. शायद यह कभी खत्म होगी भी नहीं, क्योंकि मेरी सृजनशीलता भी इस गर्दिश से जुड़ी हुई है. दरअसल, मैंने जो कुछ पाया है, इस गर्दिश में से ही पाया है. □□□



• नरेंद्र सक्सेना

टुकड़ा-टुकड़ा मौत

• योगेंद्र दत्त

मेरा खयाल है, आप उसे जानते होंगे. हो सकता है, आप उसे उसी नाम से न जानते हों, जिससे मैं जानता हूं. बहुत मुमकिन है कि वह आपके कस्बे अथवा शहर में अपना नाम बदल कर रहता हो. शायद आप उसे रोशन, आतम, बिसनू, सम्मन अथवा ऐसे ही किसी नाम से पुकारते हों. हमारे शहर के लोग उसे मुसद्दी के नाम से जानते हैं.

वह राज-मजदूरी का थोड़ा-बहुत काम जानता था. किसी बड़े राज के साथ वह बेलदारी का काम भी कर लेता था. इसके अलावा वह कभी गुब्बारे बेचते, कभी मूंगफली, गजक, रेवड़ी का खोमचा लगाते हुए पाया जाता था. गरज यह कि वह कोई भी काम मुस्तकिल तौर पर नहीं करता था. इसके बावजूद वह राज-मजदूरी का काम करते अक्सर देखा जाता था.

उससे मेरी जान-पहचान लगभग पांच साल पहले हुई थी. यों कोई खास जान-पहचान भी नहीं थी. बस यों ही अपने मकान की मरम्मत के सिलसिले में पिछले पांच सालों में कोई पांच-छह बार उससे मिलता रहा हूं. इन मुलाकातों के अलावा भी करीब दो-तीन बार मैं उससे बाजार में सैर करते वक्त मिला हूं.

खैर, ये सब बातें अवांतर हैं. दरअसल, मैं उसके बारे में अपनी सारी जानकारियां देने का लोभ इस-लिए संवरण नहीं कर पा रहा हूं, कि उससे मेरा संबंध अनजाने ही किसी खास किस्म की संवेदना पर आकर टिक गया था.

हुआ यह कि आज से लगभग पांच साल पहले हमारे मकान की छत, बारिश के दिनों में छलनी होकर चूने लगी थी और एक दिन किसी विपदा की गाज की तरह धड़ाम से नीचे आ गिरी थी. मैं एक ऐसे मजदूर की तलाश में था जो सस्ते में छत का काम निबटा दे. मास्टर होने के नाते इक्नामिकल होने की मेरी अपनी विवशता थी. मुझे अधिक तलाश नहीं करना पड़ा. हाट में वह अकेला ही रह गया था. अन्य मजदूरों को शायद काम मिल गया था और वे जा चुके थे.

—क्यों भई, कुछ काम करोगे मरम्मत का? मैंने उससे पूछा.

—वाह बाबूजी, काम करना तो म्हारा पेशा ही है. मजूरी नीं करें तो पेट कहां शै भरेगा? तम काम बोलो! बड़ी बेबाकी से उसने उत्तर दिया.

उसकी बात से मैं बुरी तरह झेंप गया, लेकिन जल्दी ही स्थिति को संभाल गया.

मैं उसे अपने घर ले आया.

—यह काम कब तक निबट सकता है? टूटी छत दिखाते हुए मैंने पूछा.

—बश, शाम लौं ही निबट लेगा, उसने बड़े इत्मीनान से कहा और बीड़ी सुलगाने लगा.

—तुम्हारा नाम क्या है?

—मुशद्दी कह देवैं जी! 'स' को 'श' कहना उसकी आदत थी, यह उससे थोड़ी-सी बातचीत के बाद ही मुझे मालूम हो गया था.

—शिलीमन्ट-रेत्ता (सीमेंन्ट-रेता) तो होंगे ही, उसने पूछा.

—हां-हां सब लाकर रख दिया है. काम शुरू कर दो.

इसके बाद वह काम में जुट गया.

रात के दस बजे के करीब छत बनकर तैयार हो गयी. हाथ-मुंह धोकर उसने बड़ी बेतकल्लुफी से रोटी मांग ली. मेरी पत्नी को यह बात नागवार गुजरी, वह नाक-भौं सिकोड़ने लगी. एक तरफ ले जा कर उसने मेरे कान में कहा—इसकी मजदूरी तो दे दी, अब रोटी किस बात की? और फिर दिन में तो दे ही दी थी. अब रात की रोटी भी मांग रहा है. अच्छा बंधा रहा यह तो! यहां कोई खैरात बंट रही है क्या?

उसने शायद मेरी पत्नी की बात भांप ली थी. उसकी ओर संबोधित होते हुए वह बोला—बीवीजी, घर में मैं और मेरी मां है. मेरी शादी तो हुई नीं. बुढ़िया पै तो रोटी पोई नीं जातीं. मुझे ही पोनी पड़ें. ग्यारह बजे लौं पहुंचूंगा तो बड़ी मुश्किल हो जागी. यहां कुछ खा लूंगा तो बुढ़िया के लिओं डबल रोटी ले जाऊंगा.

थोड़ी-सी न-नुच के बाद मेरी पत्नी ने उसे खाना दे दिया. खाना खा कर वह चला गया.

बाजार से गुजरते हुए किसी की आवाज सुनकर मैं ठिठक गया. मुड़कर देखा, मुसद्दी था. मेरे नजदीक आकर उसने उसी आवाज में 'नमस्ते बाबूजी' कहा और हाथ जोड़ कर होंठों पर भीगी हुई मुस्कराहट बिखेरते हुए बोला——पिछाना नीं बाबूजी, आपकी छत्त डाली थी मैंने, उसके हाथ अभी तक जुड़े हुए थे.

—पहचान लिया, भई! मुसद्दी हो न! कहो, अभी शादी-वादी हुई या नहीं?

—एक पहाड़न कर लाया हूं बाबूजी! रोटी-वोटी का तनक आराम हो गया है!

—अच्छा कब?

—चारेक महिने हो गये, जी! उसके चेहरे पर चमक आ गयी.

—चलो अच्छा हुआ! कहकर मैंने जेब से सिगरेट निकाल कर उसे पिलायी और आगे बढ़ गया.

उसके बाद कई दिनों तक उससे मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई.

अगले साल जब बरसात का मौसम शुरू हुआ, तो वह नयी बनी छत फिर चूने लगी. इसी सिलसिले में हाट में मुसद्दी को देखने गया, मगर वह मिला नहीं. वहां खड़े एक-दो लोगों से उसके घर के बारे में मालूम किया. जब मैं उसके घर पहुंचा, वह खाना बना रहा था. मुझे देखते ही वह तपाक से उठा और अपने पुराने अंदाज में 'नमस्ते बाबूजी' कहते हुए बोरी उठा लाया और जमीन पर बिछाते हुए बोला—बैठो बाबूजी!

—नहीं-नहीं, बस ऐसे ही ठीक है.

—हां जी, कुर्सी पै बैठने वाले बोरी पै क्यूं बैठने लगे भला!

—लो भई, बैठ जाता हूं! अपनी झेंप मिटाते हुए मैं बोरी पर बैठ गया

—रोटी खा लो बाबूजी, गरम-गरम! वह अपने अतिथि-सत्कार का परिचय देते हुए बोला.

—खाओ भई! क्यों आज खुद ही खाना बना रहे हो? तुम्हारी घरवाली कहां चली गयी?

मेरी बात सुन कर वह उदास हो गया. उसकी आंखों में अजीब-सा दैन्य तैर आया. फिर अचानक ही उस दैन्य को झाड़ते हुए वह इधर-उधर देखने लगा. अपनी आवाज को किसी अंधे कुंए से निकालते हुए बोला—बाबूजी, शब कर्मों के लेखे हैं. वो पहाड़न तो भाग गयी. एक लड़की हुई थी, उशै यहीं छोड़ गयी. मेरे पीछे घर के शगले बर्तन-भांडे उठा ले गयी. या लड़की की देख-भाल भी मेरे ही जिम्मे आ गयी. बुढ़िया पै तो कुछ काम-धाम होता ही नहीं नीं, कहकर वह चुप हो गया, एक उखड़ी हुई मुस्कराहट उसके चेहरे पर उभरी और झुर्रियों में धंस गयी.

—ओफ्फो.लेकिन मुसद्दी इससे तो तुम्हारे काम पर भी असर पड़ रहा होगा!

—हां, महिने में दश-पंद्रह दिन काम कर लूं, बाकी का भगवान मालिक! उसने बड़ा अजीब-सा चेहरा बना कर एक ओर लटका दिया.

छत के बारे में बात करने की हिम्मत मुझमें नहीं रह गयी थी. थोड़ी देर यूं ही बैठे रहने के बाद मैं उठ खड़ा हुआ.

—अच्छा मुसद्दी, अब चलूं!

—अरे बैठो तो थोड़ी देर! आज कैशे तकलीफ की? रोटी सेंकते हुए वह बोला.

—यूं ही, इधर से गुजर रहा था. सोचा तुमसे मिलता चलूं.

—और कोई खिदमत? उसके हाथ फिर जुड़ गये.

उसकी बात का कोई उत्तर दिये बिना ही मैं घर लौट आया.

हमारे पडोस में ही बन रहे एक मकान में उसे बेलदारी का काम मिला. मकान बनने के दौरान वह दो-तीन बार मिलने आया. उसका स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था. उसके चेहरे की झुर्रियां गहरी होती जा रही थीं. आंखें गड्ढे में धंसती चली जा रही थीं. मकान अभी अधूरा ही बन पाया था, एक दिन सुना कि काम में सुस्ती दिखाने की वजह से ठेकेदार ने मुसद्दी की छुट्टी कर दी.

फिर बाजार से गुजरते हुए दो-तीन बार उसे मूंगफली की ठेली लगाये देखा. उसके बाद एक दिन उसे सड़क के किनारे पटरी पर गजक, रेवड़ी और बच्चों के लिए मिठाई की गोलियां इत्यादि लगाये देखा. मैं उसके पास गया.

—कहो मुसद्दी, तुम्हारी उस ठेली का क्या हुआ?

एक नंगी विवशता उसके चेहरे पर नमूदार हो आयी. बढ़ी हुई दाढ़ी की फुनगियों पर दर्द रेंगने लगा.

—बाबूजी, ठेली का किराया जुटाता या अपना पेट पालता? एक रूपा रोज का किराया कहां से लाता? ठेली वाला अपनी ठेली ले गया और मेरी मूंगफलियां भी. मां की हंशली (हंसुली) बेचकर ये गज्जक, रेवड़ियों का खोमचा लगाया है. गरीब का जीना भी कोई जीना है, बाबूजी? इशशे तो अच्छा, रामजी उठा ही लें!

उसकी हालत पर तरस खाकर कुछ सौदा मैंने ले लिया. पैसे देने लगा तो वह बोला—अजी रहने भी दो बाबूजी! बच्चे ही तो खायेंगे, जैशै आपके, वैशै मेरे!

मैंने दो का नोट जबरन उसके हाथ में रखा और चल दिया.

* *

करीब एक महीने के बाद वह मेरे घर आया और चार रुपये मांगने लगा. मैंने कारण पूछा तो बोला—बाबूजी कुछ गुंडे खोमचा उठाकर ले गये. छै रुपै का जुगाड़ तो हो गया, चार रुपे और चाहियें.

चार रुपये देकर उसे विदा किया.

लेकिन चैन उसके भाग्य में शायद था ही नहीं. कुछ लोगों की जिंदगी हमेशा घिसटते रहने के लिए ही होती है. मुसद्दी उन लोगों में से था, जिनकी जिंदगी में मौत के कई पड़ाव होते हैं, मौत जिन्हें एक झटके के साथ नहीं आती, तरसा-तरसा कर आती है. लोहूलुहान आदमी की टुकड़ा-टुकड़ा मौत जिंदगी का अभिन्न अंग बन जाती है.

मैं अपने कालेज के ग्राउंड में अन्य अध्यापकों के साथ धूप सेंक रहा था कि जमीन पर लाठी पड़ने

की जोरदार आवाज से चौंककर सिर उठाया. लाठी लिये मुसद्दी खड़ा था. उसके कंधे पर एक लड़की बैठी थी. उसके सारे कपड़े फटे हुए थे—यहां से हटो, शाले ये हमारी जमीन है, मुसद्दी हमसे कह रहा था. वह विक्षिप्त हो चुका था. उसने एक-दो बार लाठी जमीन पर पटकी और चल दिया. मेरा मन हुआ, उसे रोकूं, लेकिन न जाने क्या सोचकर चुपचाप अपनी कुर्सी पर ही बैठा रहा.

—शाले आ जाते हैं धकियाने! तुम्हारे बाप की जमीन है? भागो, यहां कोई खोमचा नहीं है. उसके बड़बड़ाने की आवाज मेरे कानों से अभी तक टकरा रही थी. उसके विक्षिप्त हो जाने का कारण जल्दी ही स्पष्ट हो गया.

मेरे एक साथी गुप्ता आजकल उसी मुहल्ले में रहने लगे हैं जिसमें मुसद्दी रहता था. एक दिन उनके घर गया तो रास्ते में एक और हादसा हुआ जिसने मेरे दिमाग को झनझना दिया.

एक निहायत ही दुबला-पतला आदमी अपनी दोनों कुहनियां पेट में धंसाये, हाथ जोड़े, सिर लटकाये सड़क के एक तरफ उकड़ूं बैठा था. उसका चेहरा पिचके गुब्बारे की शक्ल में बहुत ही बेहूदा और भयानक मालूम होता था, जिस पर बालों का चितकबरा झंखाड़ था. उसकी बदहवास संवेदनशून्य आंखों में भीगा हुआ दैन्य था. कपड़े फटे हुए और मैले थे. उसके दांत बहुत छीदे और पीली चिपचिपाहट लपेटे हुए घिनौनेपन को बढ़ा रहे थे. सिर के रूखे बाल मूंज-से लगते थे. कमजोर टांगें आबनूस की छीपटी की तरह काली और पतली थीं.

उसके चारों तरफ बच्चों की भीड़ जमा थी. वह पागल नहीं था, क्योंकि न तो वह किसी को गाली दे रहा था और न ही पास पड़े ईंट पत्थर उठाकर किसी पर मार रहा था. आवाज के नाम पर उसके पास केवल फुसफुसाहट भर थी.

काफी देर तक उसे देखता रहा. उसकी शक्ल में से कोई परिचित चेहरा उभर रहा था. बहुत कोशिश के बाद भी वह परिचित चेहरा मेरी चेतना पर अपनी कोई पहचान अंकित नहीं कर सका. आखिर उस दृश्य को झटका देकर मैं गुप्ता के घर चल दिया.

रास्ते में मुसद्दी का घर पड़ा जिसके बाहर ताला लटक रहा था. सहसा मुसद्दी का चेहरा मेरी चेतना में उभरा और सड़क पर बैठे उस आदमी के चेहरे से टकरा कर गड्ड-मड्ड होता हुआ एक निश्चित आकृति लेकर कौंधने लगा. तो क्या बाहर बैठा आदमी मुसद्दी ही है, मैंने सोचा

गुप्ता के यहां पहुंच कर मालूम हुआ कि वह आदमी मुसद्दी ही था.

—तुम इसे जानते हो ? गुप्ता ने पूछा.

—हां. . .ऽ, कई बार मिला हूं. मैंने जवाब दिया.

—फिर तो तुम उस हादसे को भी जानते होंगे, जो इसके साथ गुजरा है.

—कैसा हादसा? हां, पिछले दिनों विक्षिप्त हो गया था, मगर ऐसी कोई गंभीर बात तो नहीं थी.

—विक्षिप्त होने के बाद तो ठीक भी हो गया था, उसके बाद का नहीं मालूम ?

—नहीं तो, क्या बात हुई ?

—होना क्या था ! गरीबी जो करा ले, वही ठीक है. घर में पैसा तो था नहीं. कुछ काम-धाम भी नहीं था. पैसे के लालच में यह ब्लड-बैंक में अपना खून दे आया. शरीर में दम तो पहले ही नहीं था, तिस पर अपना खून और निकलवा दिया. बस तभी से ऐसा है. खड़ा भी नहीं हुआ जाता, कमर झुक गयी है. बस यों ही बैठा रहता है.

—लेकिन उसकी मां और बेटी भी तो थीं, उनका क्या हुआ ? मैंने पूछा.

—बुढ़िया उस लड़की को लेकर मांगने निकल जाती है. जो कुछ मिलता है, उसमें से थोड़ा-बहुत इसे भी दे देती है. कभी-कभार मुहल्ले वाले भी कुछ खाने को दे देते हैं.

गुप्ता की बात सुनकर मैं भीतर तक सहम गया.

* *

आज सुबह मुसद्दी के मरने की खबर मिली है. सोचा था, कालेज जाते हुए उसके अंतिम दर्शन करूंगा, लेकिन कर नहीं पाया. शाम को लौटते हुए उधर से गुजरा, तो सड़क साफ मिली. सड़क को धो दिया गया था. मालूम हुआ, रात को उसे खूनी कै हुई थी, जिसके उसका मृत शरीर भी औंधा हो गया. सुबह लोगों ने देखा, उस पर मक्खियां भिनक रही थीं. कमेटी वाले सुबह ही उसे उठा कर ले गये थे. सड़क को इसीलिए धोया गया था.

रात को खाना खाने बैठा, खाया नहीं गया. उठ खड़ा हुआ. मेरी पत्नी हैरत से देखती रही. उसने पूछना चाहा, मगर मुझे चुप देख कर कुछ नहीं बोली.

इस वक्त रात के ग्यारह बजे हैं मैं लेट गया हूं. करवटें बदलने के बावजूद नींद नहीं आ रही. आंखें मींचता हूं तो मुसद्दी का घिघियाता चेहरा सामने आकर ठहर जाता है और फीकी-सी हंसी फेंकता हुआ कहता है—

गरीब का जीना भी कोई जीना है, बाबूजी! इससे तो अच्छा, राम जी उठा ही लें.

मैं चौंक कर उठ बैठा हूं. मुझे लग रहा है, मुसद्दी अभी मरा नहीं है. मौत के पिछले पड़ावों की तरह शायद यह भी एक पड़ाव हो. यह भी तो संभव है कि वह नाम बदल कर इसी अथवा किसी दूसरे शहर में रहने लगा हो. □□□

१६१, मुहल्ला कन्हैयालाल,
गाजियाबाद (मेरठ)

फरिश्ते की मौत

मनीषराय यादव

आज से मैं पत्रकारिता छोड़ रहा हूं. पिछले १५ वर्ष इस पेशे में गुजारे. जाने कितने उतार-चढ़ाव देखे' कभी सच लिखा, कभी तिल को ताड़ बनाया. पर आज आखिरी बार आपसे कुछ नहीं छुपाऊंगा. जो कुछ लिखूंगा सच लिखूंगा, और सच के सिवाय कुछ नहीं लिखूंगा.

आज मैं जिस स्थिति में हूं, आपसे छुपा नहीं है. एक निजी प्रेस, बंगला, कार यह अटूट मान-सम्मान, यह सब इस पत्रकारिता के कारण है. जिस पेशे ने इतना दिया हो, उसे छोड़ते कितना दुख होगा, पर मृतक महेंद्रनाथ की डायरी ने मुझे यह पेशा छोड़ने पर मजबूर कर दिया है. डायरी ने मेरी आंखें खोल दी है.

पत्रकारिता के क्षेत्र में मैं अनायास ही आ गया था. कभी सोचा भी नहीं था कि यह पेशा मुझे इतना मान-सम्मान और पैसा देगा, उस समय तो सोचने जैसी स्थिति में भी नहीं था. बी. ए. करने के बाद दो वर्ष की बेकारी ने मुझे मजबूरन निडर बना दिया था. मैं तब कोई 'रिस्क' लेने से नहीं डरता था. 'मरता क्या-क्या न करता', की स्थिति थी. तभी अनायास मेरी मुलाकात एक प्रतिष्ठित पत्र के संपादक से हो गयी थी. बातचीत के दौरान वह मुझसे प्रभावित हो गये थे और मुझे अपने पत्र का संवाददाता बना दिया था. उत्साह तो था ही. मैंने बड़े-बड़े रहस्योद्घाटन किये. जनता की प्रशंसा, शुभ-कामनाएं अर्जित कीं. भ्रष्ट अधिकारी, मुनाफाखोर व्यापारी मेरे नाम से कांपते थे. वैसे कई से मेरा 'मंथली' हिसाब तय था, जिस माह जिसका हिस्सा नहीं आता, वह शहर के गली-चौराहों पर नंगा हो जाता था.

★ ★

जिन दिनों जिलाधीश महेंद्रनाथ की पोस्टिंग मेरे जिले में हुई थी, जिले में मेरी धाक जम चुकी थी. झुग्गी-झोंपड़ी से उठ कर मैं सरकारी बंगले में आ गया था. सरकारी कोटे से स्कूटर भी मिल गया था. तभी दो-तीन कमाऊ मामले हाथ आ गये थे और मैं लगे हाथ अपना प्रेस डालने के चक्कर में था.

महेंद्रनाथ ने जिले में आते ही तहलका मचा दिया था. उसके चर्चे बिना अखबारी पब्लिसिटी के लोगों की जबान पर थे—आज कलेक्टर साब देहाती बन कर, राशन की लाइन में खड़े हो गये. डीलर ने जब सदा की तरह कम तौला तो उसे जेल में भेज दिया गया. कभी सुनाई पड़ता, आज वह थाने में रात के समय ऊंघते पहरेदारों की बंदूकें उठा कर ले गये और जब पहरेदार बंदूकें लेने गये तो उनकी ड्रेस उतरवाली. आज फलां व्यापारी के यहां छापा पड़ा. आज फलां अधिकारी रिश्वत लेते पकड़ा गया. जितनी जबान उतने किस्से. इन सबका नतीजा यह हुआ कि जिले में आवश्यक वस्तुओं के भाव गिरने लगे थे, सरकारी काम धड़ाके से चलने लगा था. भेंट-पूजा पर बहुत कुछ अंकुश लग गया था. मेरा धंधा भी चौपट हो गया था.

और उन्हीं दिनों जब मुझे महेंद्रनाथ का बुलावा मिला तो मैं अंदर-ही-अंदर दहशत से भर गया था. मुझे अच्छी तरह याद है. वे ठंड के दिन थे. मुझे नौ बजे महेंद्रनाथ से मिलने जाना था पर मैं सात बजे ही उनके बंगले पर पहुंच गया था. सोचा था सात बजे ही जा कर बंगले पर हाजिरी लगा आऊंगा. कहने को हो जायेगा कि उनके आदेश का पालन कर दिया है वैसे सही बात यह थी कि मैं उनसे मिलना नहीं चाहता था.

मैं जिस समय बंगले पर पहुंचा, सुबह की खुशनुमा हलकी धूप निकल आयी थी. मुझे फाटक पर चौकीदार को आवाज देने की जरूरत नहीं पड़ी थी. फाटक खुला हुआ था और पट्टे का पैजामा पहने एक नवयुवक बगीचे में पानी दे रहा था.

मैंने उस नवयुवक को पुकारा था—सुनो भाई माली, मैं कलेक्टर साब से मिलना चाहता हूं. पर वे अभी आराम कर रहे होंगे. उन्हें जगाने की जरूरत नहीं है. कह देना सुधीर वर्मा पत्रकार आये थे मिलने, मैं एक सांस में कह कर लौटने ही वाला था कि यह सुन कर—मैं हूं महेंद्रनाथ, आप नौ बजे की बजाय सात बजे कैसे आ गये? मुझे ठंड में भी पसीना आ गया. उन्होंने मुझे घबराहट से उबार लिया था—खैर, कोई बात नहीं, आप बैठिए मैं अभी आया. वह अंदर चले गये मुझे ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा. वह कपड़े बदल कर जल्दी आ गये थे. तब भी उन्होंने मुझे बोलने का अवसर नहीं दिया था. उन्होंने इतना ही कहा था—देखिए मिस्टर वर्मा, आप बहुत लूट चुके. आपकी हिस्ट्री शीट बन चुकी है. आप अपनी हरकतें सुधार लीजिए. अन्यथा मुझे आपको सुधारना पड़ेगा. अब आप जा सकते हैं.

इसके बाद जो कुछ हुआ आप सब जानते ही हैं. मैंने उन्हें अखबारों में उछालने की कोशिश की. उनके लिए नुक्कड़ सभाएं कीं. उनकी गुमनाम शिकायतें कीं. पर जाने वह किस मिट्टी के बने हुए थे. उन पर कोई असर ही नहीं हुआ. मैंने भी ठान लिया कि जब तक इनका बोरिया-बिस्तर नहीं बंधवा दूंगा, चैन से नहीं बैठूंगा. भले ही बाद में जेल में क्यों न सड़ना पड़े. तभी एक दिन फिर उनका बुलावा आया था, जिसके लिए संभवतः मैं तैयार बैठा था. जाते समय मैं घर के लिए पूरी व्यवस्था करके गया. पत्नी से बोल कर गया कि अब मैं साल-दो साल शायद ही लौट सकूं.

इस बार भी उन्होंने मुझे बोलने का अवसर नहीं देते हुए कहा था—मिस्टर वर्मा, जिस अधिकारी की जड़ें जनता में हों और जिसे अपने काम पर भरोसा हो, उसे तुम जैसे टुटपुंजिये पत्रकार नहीं उखाड़ सकते. मुझे एक बात की जरूर खुशी हुई कि तुमने पहली मुलाकात से अब तक सिवाय मेरे ऊपर कीचड़ उछालने

के और कोई गलत काम नहीं किया है. मुझे और खुशी होती यदि तुम सचमुच मेरी कमजोरियां जनता के सामने रखते, जिससे संभवत: मैं सुधर सकता, तुम्हें ईश्वर ने कलम दी है, संवेदनशील हृदय दिया है. जाओ, इसका सदुपयोग करो.

मैं एक शब्द भी नहीं बोल पाया था पर मेरा मन जानता है उस दिन से मैं बिल्कुल बदल गया. मानव स्वभाव भी अजीब इंद्रजाल है, जब कोई शक्ति से झुकाना चाहता है तो झुकता नहीं और सहानुभूति के आगे पानी की तरह बहने लगता है.

इसके बाद महेंद्रनाथ के बंगले पर जाने का काम ही नहीं पड़ा. वैसे मैं लोगों से सुना करता था कि वह मेरा प्रशंसक बन गया है उसने मुझे एक जन समिति का अध्यक्ष भी बना दिया था पर इसके लिए भी मैं धन्यवाद देने नहीं गया.

एक दिन अचानक महेंद्रनाथ के 'एक्सीडेंट' का समाचार जिले भर में आग की तरह फैल गया. इतनी उथल-पुथल मैंने इस जिला मुख्यालय में कभी नहीं देखी. इतनी सरगर्मी, जैसे भूकंप आ गया हो. महेंद्रनाथ के बंगले में विशाल जन समुदाय उमड़ पड़ा है. सबकी आंखों में तरह-तरह के प्रश्न उभर रहे हैं. यह कैसे हुआ? क्यों हुआ? मैं भी उस भीड़ में सम्मिलित हूं.

तभी एंबुलेंस आ गयी.

मैं अपने आपको नहीं रोक पाता. बाहर बैठे एस. पी. से महेंद्रनाथ से मिलने की इजाजत ले कर अंदर जाता हूं. महेंद्रनाथ लेटे हुए हैं. पैरों में पट्टियां बंधी हैं. सिर पर भी चोट के निशान हैं. पर चेहरे पर वैसी ही ताजगी है जैसी मैंने पहले दिन देखी थी. मुझे देखते ही कहते हैं—आइए वर्मा जी...

—यह सब कैसे हो गया सर?

—अच्छा, अखबार के लिए न्यूज बटोरने आये हैं? वह वातावरण को हलका करने के खयाल से कहते हैं.

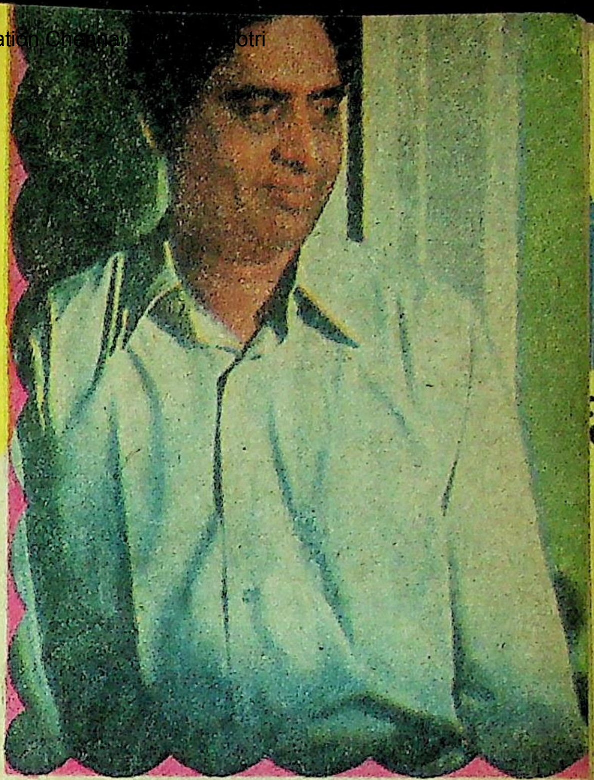
—मुझे गलत मत समझिए सर. दूसरी मुलाकात के बाद से मैं बिल्कुल बदल गया हूं. आप नहीं जानते, मैं आपकी कितनी इज्जत करने लगा हूं?

—जानता हूं भाई, इसीलिए तो मैंने तुम्हें सबके विरोध के बावजूद जन समिति का अध्यक्ष बनाया है. सुबह के भूले को रास्ते में देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई सुधीर, महेंद्रनाथ अचानक भावुक हो कर कहते हैं.

प्यार भरे शब्दों में अपने नाम का संबोधन कितना प्यारा लगता है. मैं द्रवित हो कर कहता हूं—सर, बाहर तरह-तरह की अफवाहें हैं, लोग दबी जबान से यहां तक कह रहे हैं कि कल जिस ठेकेदार के यहां छापा डाल कर आपने १० लाख का काला धन पकड़ा है. उसके ही ट्रक से यह एक्सीडेंट हुआ है.

—मैं किसी को दोष नहीं देता, सुधीर. मैंने अपना कर्त्तव्य निभाया है. किसीने इसे व्यक्तिगत दुश्मनी समझी हो तो मैं क्या कर सकता हूं.

तभी सिविल सर्जन आ जाते हैं.—आपको बात करने के लिए मना किया गया है सर. बहुत खून निकल चुका है, आपको आराम करना चाहिए.



● उमेश व्यास

—अब तो जिंदगी भर आराम करना है डाक्टर, बच भी गया तो बैशाखी के सहारे इतनी धमा-चौकड़ी थोड़े ही कर पाऊंगा.

—कैसी बहकी-बहकी बातें करते हैं आप. सिविल सर्जन ने उनसे कह कर मेरी ओर देखा.

मैंने इशारा समझ कर महेंद्रनाथ से कहा—मैं निराश हो कर जा रहा हूं सर.

एक क्षण के लिए महेंद्रनाथ ध्यान मग्न हुए फिर सिरहाने से अपनी डायरी निकाल कर मुझे देते हुए कहा—जाते-जाते तुम्हें निराश नहीं करूंगा सुधीर. यह डायरी लो. इसे पढ़ लेना पर ध्यान रखना इसका दुरुपयोग न होने पाये. तुम्हें कलम के सिपाही के नाते सौंप रहा हूं, अपनी संचित निधि. शायद तुम मुझे समझ सको. मैं दुखी मन से बाहर आ गया. इसके बाद महीनों बीत गये. मैं अपनी समस्याओं में इतना व्यस्त रहा कि महेंद्रनाथ की डायरी पढ़ने का बिल्कुल समय नहीं मिला. तभी अचानक एक दिन अखबार ने चौंका दिया—लोकप्रिय जिलाधीश महेंद्र जो पिछले दिनों ट्रक एक्सीडेंट में घायल हो गये थे, उन्हें लाख प्रयत्नों के बाद भी नहीं बचाया जा सका. मेरे दिल में अजीब-सा दर्द उठा. और मैं महेंद्रनाथ की डायरी में खो गया.

★ ★

१५ जनवरी.

आज यू. पी. एस. सी. का रिजल्ट निकला है. मैं आइ. ए. एस. में आ गया हूं. आज मुझे रातभर नींद नहीं आयी. जाने क्यों आंखों से आंसू बह रहे हैं, जाने कहां पढ़ा था याद नहीं. खुशी के आंसू बहुत अनमोल होते

हैं इन्हें संजोकर रखना चाहिए. [illegible] समझ में नहीं आता. दोस्त बधाई दे रहे हैं पर मैं जल्द से जल्द पिताजी से मिलना चाहता हूं.

१७ जनवरी.

घर आ कर जैसे ही मैंने पिताजी के पैर छुए, उनकी बूढ़ी आंखें भर आयीं. वह हकलाते हुए कह रहे हैं—बेटा, काश! आज तेरी मां होतीं, कितनी तमन्नाएं थीं उसकी, तू बड़ा हो कर साहब बनेगा और... मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता. मैं रोग ग्रसित, जर्जरित पिता को देखे जा रहा हूं. उनकी आंखों में मां की तसवीर समायी हुई है. तभी उनकी आंखें ढलक आती ह. मुझे सीने से लगा कर कहते हैं—बेटा, ईश्वर ने राजयोग दिया है. दीन दुखियों को भूलना मत. यह भी मत भूलना कि तू इन्हीं के बीच बड़ा हुआ है. मैं क्या कहूं, पिताजी का हर वाक्य मेरे लिए आदेश है.

२५ फरवरी.

आज मुझे मसूरी जाना है लोक प्रशासन संस्थान में प्रशिक्षण के लिए. अपना सामान संभाल रहा हूं. कपड़ों के नाम पर दो जोड़ी पेंट कमीज है, सुना है मसूरी में ठंड बहुत पड़ती है. देखा जायेगा. कर भी क्या सकता हूं.तभी पिताजी आ गये.उनके दाहिने हाथ में गरम सूट का कपड़ा है पर बायें हाथ में उनकी चिर-परिचित घड़ी नहीं जो उनकी ससुराल से मिली थीं. जिसे शायद वे मां से ज्यादा चाहते थे.

—यह क्या पिताजी? मैं इतना ही कह पाता हूं.

—बेटा, अब बुढ़ापे में घड़ी की क्या जरूरत. बहुत पुरानी हो गयी थी. वैसे भी बेचना चाहता था. इससे अच्छा और कौन-सा समय हो सकता था. मसूरी में बहुत ठंड पड़ती है न, इसलिए सूट का कपड़ा ले आया.

मैं क्या कहूं. मौन में भी बहुत कुछ व्यक्त करने की कितनी ताकत होती है.

७ दिसंबर.

आज मेरी पोस्टिंग के आदेश आ गये हैं. मैं मंडला का जिलाधीश बना दिया गया हूं. मंडला बड़ी प्यारी जगह है. तीन तरफ से कल-कल करती नर्मदा. ऊंचे-ऊंचे पहाड़. विशाल वनश्री. मेरा बंगला भी रमणीक जगह पर है. कितने सारे फूल हैं बंगले में. सुबह चुपके-चुपके मोगरे के फूल चुनना, अमलताश में पानी देना, कितना अच्छा लगता है. पर दो-चार दिन पानी नहीं दे पाऊंगा इन्हें, इन्सपेक्शन में जाना है इसलिए.

२ मार्च.

आज एक अनुभव हुआ. जनता मुझे अपने आपसे अलग समझती है. मैं जानता हूं, यह कुछ लोगों का षड्यंत्र ह. वे चाहते हैं कि मैं जनता से दूर रहूं ताकि वे मध्यस्थता कर के अपना उल्लू सीधा करते रहें. पर मैं उनकी चाल सफल नहीं होने दूंगा. मैं भी तो इन्हीं के बीच बड़ा हुआ हूं विदेश से लाया अजायब-घर का जानवर नहीं.

१५ मार्च.

आज कुछ तथाकथित जन प्रतिनिधियों की चालों का पर्दाफाश करने का असर यह हुआ है कि वे लोग मुझ से नाराज हो गये हैं पर मैं अपने उद्देश्य से हटूंगा नहीं, आज के छापे में कितना कालाधन मिला, बापरे बाप, मेरी तो आंखें फटी की फटी रह गयीं. क्यों बेईमानी करते हैं लोग? आखिर आदमी को चाहिए क्या? हां एक बात याद आयी. आज दो-तीन धमकी भरे पत्र मिले हैं. मुझे जान से मारने की धमकी दी गयी है. मुझे चेतावनी दी गयी है कि मैं अपना छापा मार अभियान बंद कर दूं. पर मैं इन गीदड़ धमकियों से डरने वाला नहीं हूं.

२० मार्च.

आज सुधीर वर्मा को डांटना पड़ा. वैसे उसका स्वभाव मुझे अच्छा लगा है. उसकी कविताएं मैंने पढ़ी हैं. जाने कैसे दलदल में फंस गया. शायद रास्ता बदल दे. यदि उसने रास्ता बदल दिया तो मैं उसे अपना दोस्त बनाऊंगा. कमी किसमें नहीं होती. जब समाज के मापदंड ही बदल गये हों तो उसे कैसे दोष दे सकता हूं. मुझे भी तो कुछ लोग दकियानूसी कहते हैं. न क्लब, न पार्टी, न शराब, पर मैं अपनी जगह ठीक हूं. समझने वाले चाहे जो समझें.

५ अप्रैल.

आज एल. आइ. बी. की रिपोर्ट पढ़ कर बड़ी खुशी हुई. एक नयी बात भी मालूम हुई कि जो काम डांट से नहीं हो सकता, वह प्यार से हो सकता है. दूसरी मुलाकात के बाद सुधीर कितना बदल गया है. उसने सही रास्ते पर चलने की कसम ले ली है. आज मैं बहुत खुश हूं एक भटके हुए को सही राह पर ला सका.

१५ अप्रैल.

आज सूचना मिली है कि मुरारीलाल के यहां बहुत बड़ी संख्या में कालाधन है. रिपोर्ट के अनुसार, वह बहुत खूंखार आदमी है पर डरने से काम चलेगा नहीं. यह भी रिपोर्ट मिली है कि उसीने मुझे धमकी भरा पत्र लिखा है. पिछली रिपोर्ट के आधार पर वह—हिस्ट्रीसीटर है और उसका धंधा रुपये ले कर हत्याएं करना रहा है. आज सेठ बना बैठा है. यदि छापा सफल रहा तो कितना अच्छा रहेगा? ईश्वर मुझे शक्ति दें...

इसके बाद की डायरी नहीं लिखी गयी है. दूसरे ही दिन उनका एक्सीडेंट हो गया था. डायरी बहुत विस्तार से लिखी गयी है पर मैं आपको कुछ अंश ही बतला पाऊंगा. मृतक महेंद्रनाथ को दिया गया वचन तो निभाना पड़ेगा. कहीं डायरी का दुरुपयोग उनके विरुद्ध ही न हो जाये. बेचारे के परिवार को पेंशन से भी हाथ धोना पड़ेगा. अन्यथा सब बातें यदि आपके सामने आतीं तो आप भी दांतों तले अंगुली दबाये बगैर नहीं रह सकते थे.

मुझे इस बात का खेद है कि कसम लेने के बाद भी मैं सब बातें आपके सामने नहीं रख सका. ऐसी पत्रकारिता से क्या लाभ जो सत्य को यथावत् उद्घाटित नहीं कर सके. इसलिए आज से पत्रकारिता छोड़ रहा रहा हूं, अब अखबारों के माध्यम से मेरी आपसे मुलाकात नहीं हो सकेगी. अलविदा. □□□

डिप्टी कलेक्टर, दमोह

कमीना

• कैलाशचंद्र

बहुत दिनों बाद अपने कस्बे लौटना हुआ था, यूं कोई उत्सुकता नहीं थी और सच कहूं कोई पुलक भरा उछाह भी मन में नहीं था. भावुक हूं नहीं और इस लिजलिजी चीज से साबका पड़ने पर साफ कतरा-कर निकल जाता हूं. यहां अपना पुश्तैनी मकान था, कुछ जरूरतें थीं और मकान के संदर्भ में उन जरूरतों से चंद सवालात हल होने थे, इसलिए आया था.

बस से उतरा, तो सांझ पूरी तरह घिर आयी थी. यहां कस्बे में अभी बिजली नहीं आयी थी. लारी स्टैंड की, जिसे पड़ाव कहा जाता है, दूकानों में धुंधआती लालटेनें उजिर गयी थीं. शहर की रोशनी देखते-देखते अपने पुराने कस्बे की अंधी नियत जहन से पूरी तरह उतर गयी थी. इसलिए अंधेरे की खामोशी में लिपटा यह कस्बा इतना उदास और फीका दिखा था कि मुझे कोफ्त होने लगी. मैं सोचने लगा था कि अगर रात की गाड़ी से चला होता तो पूरे दिन में अपना काम खत्म करके शाम को वापस हुआ जा सकता था, हालांकि ऐसी उम्मीद कम ही थी. क्योंकि मुझे नाटक भी करना था और एक-एक संवाद मैं अपने जहन में अच्छी तरह बिठा चुका था.

धूल की वजह से मेरे जूते बदरंग हो गये थे और मेरे आभिजात्य को ठेस लगी थी. यहां कोई होटल और लॉज भी नहीं था कि उस आभिजात्य की रक्षा कर सकता, फिर उन लोगों से संपर्क साध कर मतलब की बात भी की जा सकती थी पर ऐसी कोई सुविधा हासिल न होने की वजह से मैं धूल और मक्खियों के दस्ते से चिटकी मिठाइयों की दूकान पर खड़ा हो गया था. मैंगे-से हलवाई से आधा किलो मिठाई तौलने के लिए कह, सिगरेट सुलगा कर निष्कृति ढूंढ़ने लगा था.

एक पुराने अखबार में उसने मिठाई लपेट कर दे दी तो मुझे अपने शहर के स्वीट मार्टों के खूबसूरत डिब्बों की याद हो आयी. मन-ही-मन गालियों के कतरे उछाल कर मैंने मिठाई बैग में ठूंस ली. गलियों के बीच बहते पानी को फलांगते मैं सोच रहा था कि अब एकाध दिन मामा मामी पर मेहमानी का बोझ लाद कर उन लोगों से साफ-साफ सब कहना पड़ेगा.

★ ★

घर के पहले कमरे में, जिसे पौर कहा जाता है. मामी, गुड्डी और सच्चू यूं पूरा नाम सच्चिदानंद है, दोनों फैले पैरों के बीच सूपा रखे बीड़ी बनाने में व्यस्त थे उनकी अंगुलियां यांत्रिक तेजी में चल रहीं थीं. पास ही पत्तियों की कतरनें फैली थीं और बीड़ी बनाने वाले पत्ते साफ अलग रखे थे.

मामी पहले तो अंधेरे की वजह से पहचान नहीं पायी फिर एकाएक आश्चर्य में डूब गयी—अरे तुम हो भइया, न चिट्ठी, न पत्री. . .वह अचकचा कर खड़ी हो गयी. मामी के आगे के दो दांत टूट गये थे. और शरीर झुलस कर काला पड़ गया था.

गुड्डी और सच्चू मेरे कपड़ों को कौतूहल से देख रहे थे. मेरे कपड़े हालांकि गंदे थे, पर उनके साफ चीथड़ों से बहुत बेहतर थे. कमरे में वही बरसों पुराना आलम बिखरा पड़ा था. एक ओर एक पलंग पड़ा था, जिसकी निवाड़ मटमैली हो कर काली पड़ गयी थी और पाये बदरंग हो गये थे. पलंग पर कंबल, पल्ले-दार रजाइयां, मोटे सूत वाली दरी, चीकट तकिये, जिनके गिलाफ अरसे से बदले और धोये नहीं गये थे. गड्डमड्ड पड़े थे. एक अजीब तरह की घिन मिली बदबू उनसे उठ रही थी.

उसी कमरे में भूसे के बोरे रखे थे. सामने दीवार से लगा पुआल का विस्तर लगा था, कुछ ओढ़ने-बिछाने के कपड़े वहां भी पड़े थे. लकड़ी की संदूकें, टीन, टूटही साइकल के अस्थिपंजर, डिब्बे-डिब्बियां, चींथड़े और ईंटें जोड़ कर बनाया गया टेंपरेरी चूल्हा, उसमें भरी राख और अधजली लकड़ी के कुंडे, पास ही काला पिचका एलूमिनियम का गंजा औंधा पड़ा था, जिसमें मामा का कलिया पकता था और मनोहर कहानियां पढ़ता हुआ मामा चूल्हा उकसाता रहता तथा बोटी गंजे से निकाल कर पके होने का टेस्ट मुंह से करता रहता था. गृहस्थी का पूरा जंजाल यहीं बिखरा था. .

मामी ने कुछ कपड़े इधर-उधर डाल दिये और दरी की सलवटें ठीक करने लगी. तब तक मैंने मिठाई निकाल कर सिरहाने रख दी. तब कहीं मामी को ध्यान आया, सच्चू को डांटते हुए बोली. —भइया के पांव नहीं छुए तूने.

उसने एक ललचती निगाह मिठाई पर डाली और शरमाते हुए धूल भरे बूटों को रोकते-रोकते भी छू कर वह आंगन की तरफ भाग गया.

यह किस क्लास में पढ़ता है? मैंने यूं ही पूछ लिया.

—स्कूल से उठा लिया है, पढ़ता-लिखता तो था नहीं, आवारागर्दी सीख गया था. यहां बैठ कर चार पैसे ही कमाता है, पढ़ने-लिखने से मिलता ही क्या है.

—गुड्डी के ब्याह की बात कहीं नहीं चलायी मामी?

गुड्डी इस बात से थोड़ा सकुच गयी, पर मामी की बात से तिलमिला कर रह गयी. चलायें कहां से भइया, पेट के घातम में तो सब घुस जाता है, कुछ बचता ही नहीं. तुम्हारे मामा की कमाई तो सब दारू में चली जाती है. . .मामी का स्वर एकदम सपाट था, उस स्वर में न तो कोई तलखी थी और न यातना का कोई पुट. स्थितियों के सहज स्वीकार की तीखी प्रतिध्वनि अवश्य सुनाई देती थी.

—कमला कैसी है, बाल-बच्चे अभी हुए या नहीं?

मामी ने पूछा तो मैं बिंध-सा गया. कमला से शादी करने के बाद मामा-मामी को बहुत गैर जरूरी-सा समझते हुए बाद में एक पोस्टकार्ड डाल कर सूचित कर दिया था. उत्तर में उन्होंने ढेर सारे शुभाशीर्वाद तथा अशीशें लिख कर भेजी थीं. यह पत्र किसी तरह कमला के हाथ पड़ गया था और उसने बाद में बहुत खींचा था. दरअसल बात यह थी कि कमला के पिता जी को मैंने बताया था कि मेरे कोई रिश्तेदार वगैरह नहीं हैं. मैं मामा-मामी से कोई संबंध नहीं रखना चाहता था. हकीकत यह थी कि मैं अपने अतीत को काट कर एकदम अपने से अलग फेंक देना चाहता था. गाह-बगाहे मुझे मामा के पत्र मिलते रहते थे. और मैं आशंका में घिर जाता था कि मुझे पालने-पोसने तथा पढ़ाने-लिखाने के एवज में मामा की कुछ मांगें होंगी, पर उन पत्रों में महज सूचनाएं होती थीं. जिनका महत्व मेरे लिए नगण्य था. मामा संबंध बनाये रखना चाहते थे और मैं उन्हें तोड़ने की फिराक में था.

बात के रुख को मोड़ देने के लिहाज से मैंने कहा—बीरू कहीं नहीं दिख रहा मामी, कहीं नौकरी वगैरह कर ली है क्या?

मामी ने एक गहरी सांस ली. स्थितियों की सर्द राख में पहली बार चिनगारी दिखी. मामी के भीतर टूटा हुआ कुछ बजा—नौकरी उसके भाग्य में नहीं लिखी भइया, वह जेल में है.

—जेल में है, क्यों?

—भीखन धोबी के लड़के के साथ गंदी हरकत करता पकड़ा गया था. हरामी ने एक किसी की नहीं सुनी, थाने में रपट लिखा दी. मामी का सर्द स्वर उड़ कर चेहरे से चिपक गया. मुझे एकाएक याद आया कि मामा ने एक चिट्ठी में इस घटना का जिक्र किया था और सिफारिश के लिए लिखा था. इस खबर को जैसे कोई अहमियत न देते हुए मैंने जवाब देना भी उचित नहीं समझा था. गनीमत यही थी कि मामी को चिट्ठी का संदर्भ याद नहीं आया था. आगे किसी प्रश्न को पूछने की स्थिति में नहीं रह गया था.

मामी और गुड्डी रसोई में चलीं गयी थीं. और काला धुआं यहां पौर में भरने लगा था. थोड़ी देर बाद गुड्डी टूटे हडिल वाले कप में बदरंग-सी चाय थमा गयी. मैं धीरे-धीरे सिप लेने लगा.

★ ★

तब तक मामा हाली से लौट आया था. वह खूब पिये था. दमे का मरीज होने की वजह से हर समय उसकी सांस बजा करती थी. वह हाथ में एक छोटी-सी जुगजुगाती लालटेन पकड़े था, मुझे पहिचानने के लिए उसने वही लालटेन मेरे चेहरे तक उठा दी, फिर बोला-जीवन तुम हो, मैं समझा कोई और है, अभी चले आ रहे हो? . . कहते-कहते वह वहीं जमीन पर बैठ गया. शायद हांफ गया था, क्योंकि वह तेजी से सांस लेने लगा था.

भीतर से मामी हांक लगायी थी—कौन आया रे? जवाब सच्चू ने दिया—बाबू आया ह.

और कोई दिन होता तो मामी का गालियों का रिकार्ड चढ़ जाता, पर आज शायद मेरी उपस्थिति के कारण वह खुद को जज्ब किये बैठी रही.

—हां शाम की गाड़ी से आया हूं. कैसे हो मामा?

मामा हंसने लगा, एक खोखली हंसी—हमारी क्या पूछते हो भइया, हर कदम पर फांका-मस्ती, हर डगर पर भटकाव. तुम सुनाओ अपनी. . .मामा कभी शायरी किया करता था. पक्का गाना गाने का शौक था, जब भी मौज में होता तो आलाप भरना शुरू कर देता था.

मामा पहले ऐसा नहीं था. वह सब-रजिस्टार था. तब वह नौकरी करता था उस वक्त आवाज में बुलंदी थी. लंबी कद-काठी और आसमान को उठीं मूंछें उसे रोबीला बनातीं थीं. उन दिनों वह मामी को ब्याह कर लाया था, मामी का रंग खिलते फूल की तरह था और उसकी सुंदरता की चर्चा पूरे मुहल्ले में हुई थी. यूं मामा तुनक मिजाज शुरू से ही था,



● सतीश मल्होत्रा

बात-बात में मामी पर हाथ खींच देता था, पर उस मार में भी प्यार था, उस खीझ में भी कोमलता छुपी हुई थी. बड़ी साफ सुथरी जिंदगी चल रही थी. तभी एकाएक उसकी जिंदगी ने पलटा खाया. उसकी ईमानदारी उसकी खुशियों के आड़े आ गयी थी. पूरा स्टाफ इस वजह से कुढ़ा रहता था. एक दिन ट्रेप हुई और उसकी ड्रार से दस्तखत किये दो सौ रुपये बरामद हुए. मुकदमा चला, सभी ने उसके खिलाफ गवाही दी. मामा को साल भर की कैद हो गयी. छूट कर घर लौटा तो वह टूट कर बिखर चुका था. तहसील के सामने उसने अनशन किया, अधिकारियों के खिलाफ भाषण दिये, एवज में पुलिस के डंडे खाये. मामा अर्ध-विक्षिप्त-सा हो गया था. उन्हीं दिनों उसने सिर और दाढ़ी के बाल बढ़ाना शुरू कर दिया था. उसने कपड़े भी त्याग दिये थे. महंतों और साधुओं की फिराक में वह रहने लगा था और उसने गांजा पीना भी शुरू कर दिया था. पर मामा की यह विक्षिप्तता पापी पेट

के सामने अधिक दिनों तक नहीं टिक पायी थी. भीतर के आक्रोश को दबा कर मामा को परिस्थितियों से समझौता करना ही पड़ा. उसने एक छोटी-सी तेल की दूकान कर ली थी. दिन भर किरोसिन या सरसों का तेल नापता और खाली समय से जासूसी उपन्यास पढ़ता रहता था. शाम को खाने-पीने भर के पैसे मामी को दे कर गम गलत करने वह हॉली पहुंच जाता था. लौटकर मामी के साथ गाली-गलौज करता या मारपीट.

खाना शायद पक कर तैयार हो गया था, गुड्डी बुलाने आयी थी. मैं ड्रेस चैंज करने लगा. पैंट उतार कर मैंने खूंटी पर टांग दिया और धुला हुआ पाजामा पहन लिया. पाजामे का कलफ कहीं मन में गड़ गया था. मेरी मामूली-सी चीज भी यहां के संदर्भ में विशिष्ट लग रही थी.

चैंज कर के मैंने कहा––चलो मामा खाना खाने.

मामा बैठा-बैठा दोनों हथेलियों पर माथा टेके उलटा हो गया था. सहसा उठ कर बैठ गया, उसका चेहरा लगातार खांसने की वजह से लाल पड़ गया था. और दाढ़ी के बाल लार से सन गये थे. वह बमुश्किल बोला था––तुम खालो बेटा,-मू भूख नहीं लगती अब . . सीने में मट्ठी सी. . .धधकती रहती है. पर ठहरो, अभी आता हूं. . .

देखते-देखते मामा बाहर निकल गया. उसका मंतव्य न समझ मैं भीतर रसोई में चला गया. मामी ने कांसे की थाली में रोटियां और सब्जी परस दी, गुड्डी ने अचार का पूरा आम थाली में रख दिया. मसाले भरी सूखी मिर्च, जिसमें फफूंदी लग गयी थी, सब्जी में आधी डूबी रखी थी. मुझे अपने किचन की स्टील की कटोरियां और प्लेटें याद आ गयीं थीं. डायनिंग टेबल पर बैठ कर खाना खाने का आभिजाती ढंग याद हो आया था.

खाना लगभग आधा गले के नीचे उतार चुका था, कि दरवाजे पर दोना लिये मामा दिखाई दिया. दोना गुड्डी की तरफ बढ़ाते हुए वह बोला––ले-बेटा रबड़ी. आधी भइया को दे दे, आधे में तू और सच्चू हो जाना.

गुड्डी ने दोना थाम लिया और रबड़ी कटोरे में उलट दी. दोना उसने एक ओर रख दिया, जिसे सच्चू ने फौरन लपक लिया और जीभ लगा कर चाटने लगा. मामी एक हत्थड़ उसकी पीठ पर फोड़ कर तिड़तिड़ाने लगी––आग लगे तेरी जीभ में, मीठी चीज पर तो मैरा कर टूटता ह. . .पर मामा प्यार में भरा सच्चू की इस हरकत को देख रहा था.

वहीं रसोई को थोड़ा सहेज कर गुड्डी ने फर्श का कचरा एक ओर सकेल दिया. मामी ने पौर से पलंग उठा कर रसोई में बिछा दिया और अपने हिसाब से सबसे साफ बिस्तर उस पर बिछा दिये. मामा का सोने का इंतजाम आज पियाल पर ही कर दिया गया था. दिनभर का चला था, इसलिए नींद जल्दी आ गयी.

सहसा नींद खुल गयी. एक कोलाहल, एक हड़कंप-सा मचा था. आंगन की ओर वाले पौर के दरवाजे पर मामा मामी आपस में गुंथे थे. मामी एक हाथ में मामा की दाढ़ी पकड़े थीं और मामा मामी का झोंटा. खुले हाथों से फ्री स्टाइल चल रही थी. जो जितनी जोर से प्रहार करता गाली का प्रवाह भी उतनी ही प्रचंडता से बाहर निकलाता था––हरामखोर, नासपीटे, दारू पी कर सब भूल जाता है––मामी मामा की आरती वंदना कर रहीं थीं. . . रांड, कुतिया, मेरा खाती है और मुझी पर गुर्राती है यह मामा का स्तुति वादन था.

न जाने कैसे मामी ने टांग मोड़ कर मामा की छाती पर टिका दी और जोर लगा कर मामा को पीछे ठेल दिया. मामा का सिर जोर की आवाज के साथ फर्श पर जा टकराया. पर मामा ने भी गजब की फुर्ती दिखायी. वह उठा और उसने बगल में पड़ी एक लकड़ी उठा कर मामी की पीठ पर तीन-चार चिपका दीं. मामी ने किसी आहत जानवर की तरह चीत्कार किया और झुक कर नाबदान के पास पड़े कुस्कुट के लोटे को मामा के सिर पर दे मारा. मामा के सिर से खून बह-बह कर दाढ़ी के बाल भिगोने लगा.

पता नहीं मैं क्या सोच कर चुपचाप पड़ा रहा. बीच में दखल देना उचित नहीं समझा. यह दृश्य मेरे लिए नया नहीं था. वे लड़ाई के बहाने तलाशा करते थे और झगड़ा बहुत छोटी-छोटी बात पर शुरू हो जाता था. आज भी या तो मामी ने मामा की दारू को संदर्भ बना कर कुछ कह दिया होगा, या उसके अंडरवियर के नेफे से बंधी मैली-कुचैली थैली से तिलहे नोट उसे बेहोशी में जान झाड़ने की कोशिश की होगी, या फिर मामा ने बच्चों के सो जाने पर थोड़ा 'हलके हो लेने' की इच्छा प्रकट की होगी और मामी ने प्रत्युत्तर में उसे कुत्ता कह कर संबोधित किया होगा. एक मैले-कुचैले कपड़े से खून पोंछता मामा पौर में चला गया, थोड़ी देर बाद उसके पीछे मामी भी अस्त-व्यस्त-सी चली गयी. कोई दसेक मिनट बाद मामी रसोई में आयी और एक कपड़े को जलाने लगी. जला हुआ कपड़ा ले कर मामी पौर में चली गयीं. वह कपड़ा मामा के घाव से भरने लगी. उन दोनों ने फिर साथ ही खाना खाया, इस बीच बच्चे सो चुके थे. खाना खाने के बाद वे हम बिस्तर हो गये.

सुबह काफी दिन चढ़े उठा था. मामा आंगन में बैठा सच्चू का कनेऊ निकाल रहा था. निकाले हुए मैल को वह अंडरवियर पर पोंछता जाता था. मामी रसोई में चूल्हे पर चाय चढ़ाये थी. शायद मेरा इंतजार हो रहा था. क्योंकि चाय का जूठा कप मामा के पास ही पड़ा था.

मैं मामा के पास जा बैठा. गुड्डी चाय का प्याला रख गयी. मैं रात की उधेड़बुन से बाहर निकल आया था और सीधे मतलब की बात पर उतरने के लिए कमर कस चुका था, अन्यथा यहां आने का सारा प्रयोजन ही नष्ट हो जाता. अब मैं बता ही दूं कि मैं यहां क्यों आया था. यह घर, जिसमें मामा-मामी रह रहे थे, दरअसल मेरा था. जब मेरी मां मरी तब मैं बहुत छोटा था, पिता उससे भी पहले गुजर गये थे. मुझे

किसी के चेहरे याद नहीं हैं. मां ने मरते समय मामा की गोद में सौंपते हुए कहा था—इस जमीन-जायदाद को बेच कर जीवन को इतना पढ़ा-लिखा देना कि चार पैसे कमाने लगे. मामा पहले किराये के किसी मकान में रहता था. मां की मृत्यु के बाद वह इस मकान में रहने लगा था. मामा ने बहन का बचन पूरा किया. पालपोस कर मुझे बड़ा कर दिया, हर संभव कोई तकलीफ नहीं होने दी. पढ़-लिख कर आज हजार से ऊपर कमाता भी हूं. पर मामा ने इस मकान को नहीं बेचा, मुझे पढ़ाने के लिए खुद अपनी फिरोजाबाद की जमीन जायदाद धीरे-धीरे बेचता चला गया.

भावुकता की तमाम परतें नोच कर फेंकते हुए मैंने कहा—मामा, मैं यह मकान बेचना चाहता हूं. दरअसल मेरे आफिस में रुपयों की गोलमाल हुई है, सरकारी पैसा है, उसे भरना जरूरी है वरना सजा हो जायेगी.

मामा के चेहरे पर अविश्वास की काली लकीर तैर गयी. अविश्वास मेरे कथन पर नहीं, वरन कथन के पीछे प्रतिभासित हो रहे कृत्य पर था. उन्हें उम्मीद नहीं थी कि मैं ऐसा कर सकता हूं.

—पर गोलमाल हुआ कैसे?

उनका विश्वास नाटक की सोची हुई स्थितियों को डिगाने लगा, मैंने दूसरा सूत्र पकड़ लिया—नहीं मामा, मैंने नहीं किया है यह सब. मेरे मातहतों ने किया है, मुझे असलियत से वाकिफ नहीं किया.

मामा के चेहरे पर संतोष तिर आया था—आजकल भइया कोई विश्वास के काबिल नहीं रहा है. पर भइया, तू क्यों बीच में पड़ता है, जिन्होंने किया है वही भुगतें.

मुझे लगा पीया हुआ झूठ बेट में गुड़गुड़ाने लगा है और उलटी की तरह बाहर फिकने ही वाला है. कमला ने फ्रिज की फरमाइश की थी. कालोनी में सभी के पास फ्रिज थे और उसे इन्फीरियोरिटी महसूस होती थी. मैंने कमला से डींग हांकी थी कि यहां मेरे नाम कुछ बैंक बैलेंस पड़ा है, हिसाब किलियर करके बस वापस लौट आना है. इसलिए धूल धक्कड़ और अंधेरे से भरे कस्बे में इतनी दूर से आया था. मैं दोनों तरफ बोले गये झूठ के बीच फंस गया था. लेकिन मुझे निकलना भी आता था—पर मामा बदनामी तो मेरी ही होगी आखिर, मेरे प्रमोशन पर भी असर पड़ेगा. . .

मामा ने सहमति में सिर हिला दिया—सो तो है—मामा जैसे लोगों को कनविंस करना जरा भी कठिन नहीं था—तब तो जरूरी है भइया. पर नौकरी में बड़ी सतर्कता की जरूरत है. पता नहीं कब कोई कहां फंसा दे. किसी पर ज्यादा विश्वास करना आज के जमाने में ठीक नहीं है. . . मामा की आंखों के आगे उसका अतीत काले पर्दे-सा लहराने लगा था. मामा फिर भावुक हो आया था—जिज्जी ने तुम्हें और यह मकान सौंपा था, ईश्वर जानता है दोनों ही सुरक्षित हैं. मामा की आंखें छलछला आयी थीं.

—मामा तुम्हारा अहसान मैं कभी नहीं भूल सकता. तुम लोगों के लिए मेरे दिल में कितना ऊंचा भाव है, बता नहीं सकता.

—इसमें अहसान काहे का बेटा! अपने भी अपनों के ऊपर कोई अहसान करते हैं कभी! यह तो फर्ज था. मामा का स्वर मुझे बेपर्दा करने लगा.

—नहीं मामा, मेरे मां-बाप नहीं थे, तुम्हीं लोगों ने पाला-पोसा. मैं तो इसे अपने ऊपर अहसान ही मानता हूं, वरना आज के जमाने में कौन किसके लिए क्या देता है. बस जरूरत ही कुछ ऐसी आ पड़ी है, नहीं तो मकान तो अब आप ही लोगों का है.

—जानता हूं भइया, सरकारी पैसा भरना बहुत जरूरी है. पैसा से इज्जत बड़ी होती है. छोटी-सी तकलीफ ही सही. पर एकाध हफ्ता रुक जाते तो किराये का कोई मकान तलाश लेते, याचना का एक बिंदु मामा की आंखों में आ कर ठहर गया था. मैं मामा की आंखों से आंखें नहीं मिला पा रहा था. चुपचाप उसके पास से उठ आया.

दोपहर घूमने का बहाना ले कर निकल गया. मामा अपनी दूकान पर चला गया था. मैं दीना सेठ की गद्दी पर पहुंच गया. वह ठेकेदारी करता था और इसकी आड़ में पता नहीं और भी क्या-क्या करता था. मुझे देख वह कुटिलता से मुसकराया वह मेरा परिचित था.

—सेठ, बीस हजार का मकान, दस हजार में खरीदोगे?

उसकी आंखें चमकने लगीं. वह पास खिसक आया और मैंने उसे समझाना शुरू कर दिया. बात उसकी समझ में जल्दी ही आ गयी. सात हजार नकद ले कर रुक्का लिख दिया. तीन हजार बाद में रजिस्ट्री के समय देना तय हुआ. उससे वायदा ले लिया कि वह दस-पंद्रह दिन, जब तक मामा को कोई किराये का मकान नहीं मिल जाता, अभी उसी घर में रह लेने देना.

लौट कर मामा को सौदा के बाबत बता दिया था. मामा ने बस इतना कहा था—ठीक है भइया. इस बीच किराये का कोई मकान ढूंढ़ लेंगे. तुम खुश रहो.

मने जाने की तैयारी शुरू कर दी. मामा मामी ने एक दिन और रुक जाने का भरपूर आग्रह किया. पर मैंने छुट्टी न बढ़ पाने तथा काम की अधिकता का बहाना ओढ़ लिया था.

रोकते-रोकते भी मामी ने सफर के लिए पूड़ियां और सब्जी बना कर बैग में रख दी थीं. मामा यहां के दूर दूर तक मशहूर पेड़े आधा किलो तुला लाया था. मामा मामी की आंखों में आंसू के कतरे तैरने लगे थे.

फिर चलते समय मामी ने दो रुपये का मैला कुचैला नोट, जो न जाने कब से वह मामा की आंखों से छुपाये रखे होगी, जबरन मेरी जेब में ठूंस दिया था. जब तक बस स्टार्ट नहीं हुई मैं एक अपराध बोध में घिरा-सा बैठा रहा. बस के चलते ही निष्कृति की भरपूर सांस ले मैंने सिगरेट सुलगा ली. फिर टिकिट के लिए वह दो रुपये का नोट शामिल करते हुए मुझे लगा था कि भीतर का कमीनापन बाहर तक छलकने लगा है. □□□

नायब तहसीलदार, हुजूर तहसील, रीवा, म. प्र.

छायाएं

• मधु शर्मा

सांझ ढलते ही कुछ बेचैनी-सी शुरू हो जाती है. ये बेचैनी या उदासी अकारण उत्पन्न नहीं होती. इस वक्त करने को कुछ भी नहीं होता. महज एक सोच, एक लंबा निराकार, निरुद्देश्य सोच छा जाता है दिमाग में. मां ने रामायण का आखिरी पन्ना मोड़ दिया है, फिर उसे उठा कर माथे से छुआती है, फिर गुलाबी कपड़े में बांधती हुई कुछ गुनगुना रही है. शायद भगवान राम का स्तुतिगान. सोचती हूं, कितने भाग्यशाली थे ये राम, किसी का कुछ करें या न करें किसी को कुछ दें न दें, फिर भी सब किसी न किसी तरह, किसी न किसी नाम या रूप में स्मरण कर ही लेते हैं. मां के चेहरे पर एक गहरा संतोष है., एक अविचल संतोष जैसे इस रामायण के पन्नों में ही सब कुछ पा लेती है.

अम्मा रामायण को फिर से आंखों से छुआती हुई दीवार के कोने में रखी चौकी पर रख कर मुड़ती है मेरी तरफ. फिर कुछ क्षण निर्विकार देखती रहती है मेरी तरफ. शायद अम्मा बैकुंठ धाम से विचरण करती हुई घर के बढ़ते इस अंधकार में लौट आयी है. कमरे की बत्ती जला कर रसोई में जाते हुए रुक जाती है. कुछ इधर-उधर तलाशती है. फिर रसोई में चली जाती है. मैं भी उठ कर ऊपर के कमरे में भैया के दिये हुए कुछ पेपर टाइप करने के लिए सीढ़ी पर कदम रखती ही हूं कि मां का स्वर मेरे कानों में पड़ता है.

—मन्ना नहीं लौटा कालेज से अभी तक? तुझे कुछ कह गया था क्या?

—नहीं. . . तो.

मैं दूसरी सीढ़ी पर कदम रखती हूं.

—क्या बजा होगा इस वक्त?

—साढ़े छह से ऊपर हो रहा होगा.

—जाने कहां डोलता रहता है ये इतनी देर तक! न खाने की सुध, न पीने की.

मैं दो सीढ़ियां उतर कर फिर नीचे आ जाती हूं और पापा के लगाये पौधे को निहारती हूं. सब डालियां बड़ी तेजी से फैलने की चेष्टा में हैं. मुझे इन पत्तियों को छूने से बहुत सकून-सा मिलता है. लगता है, आज भी पापा का स्पर्श इनमें अंकित है. कुछ देर तक यूं ही निहारती हूं. पैरों के नीचे घास गीली है. शरीर में कुछ कंपकंपी-सी होती है तो उठ कर भीतर आ जाती हूं.

अम्मा मनी प्लांट की बेल को मोटी डोरी से बांध कर उसको बहुत ऊंचाई तक पहुंचाने के विचार से परिश्रम कर रही हैं. शायद इसकी बढ़ती हुई ऊंचाई के साथ घर में पैसे भी बढ़ते जायेंगे. मगर दो बरस से वह उस बढ़ती हुई मनी प्लांट की बेल के मुताबिक दो वक्त भरपेट रोटी भी हीं खा सकी, वह यह नहीं सोच पाती, तभी भैय्या आ जाते हैं.

—ये क्या अम्मा, हर वक्त इस कमबख्त मनी प्लांट के पीछे लगी रहती हो! इसके बढ़ने से क्या मेरी तरक्की हो जायेगी? रहूंगा तो हमेशा क्लर्क!

—क्यों रे, ऐसा क्यों कहता है! सबको तो देखती हूं इत्ते पैसों में खेलने लगे, इसी मनी प्लांट के खातिर!

—वाह अम्मा तुम भी अजीब हो!

भैय्या मेरी तरफ देखते हैं. मैं उनके लिए चाय बनाने रसोई में चली जाती हूं.

चाय बना कर भैया के पास रखती हूं. भैय्या मेरी तरफ मुखातिब होते है—तुम्हारी चाय! और अम्मा की?

—हमने पी ली भैया

—सच!

—हां भैया, अम्मा और मैंने शाम चार बजे ही पी ली थी.

—सुन, बैठ मेरे पास. तेरे लिए एम. ए. में दाखिले का बंदोबस्त कर लिया है मैंने. कल सब सर्टीफिकेट ले कर चलना मेरे साथ. एडमिशन करवा दूंगा. पढ़ जायेगी तो अच्छा रहेगा.

मैं पलकें उठा कर भैया के शांत रूखे चेहरे की तरफ देखती हूं. कितना बोझ पड़ गया है इनके सिर पर!

—मैं और आगे नहीं पढ़ूंगी भैया!

—क्यों?

—मैंने सोचा है, अभी कहीं प्राइवेट नौकरी कर लूं, अगले बरस एडमिशन ले लूंगी. मन्ना का पढ़ना अभी जरूरी है, मेरा क्या है?

अम्मा रसोई से सब्जी काटने के लिए निकल कर हमारे पास ही चौकी घसीट कर बैठ गयी है. भैया और मेरे बीच हो रही बात का विषय अवश्य समझ चुकी है. हम सब अब चुप हैं. अम्मा बंदगोभी की परतों को अलग करती हुई मेरी तरफ देखती है. मेरे लिए समझना कठिन है कि अम्मा के मन में कौन-सा प्रश्न उभर रहा है. शायद उन्हें मुझसे सहानुभति है या फिर किरकिराहट. भैया के चेहरे पर उभरते भावों को मैं आसानी से पढ़ रही हूं. चाय का खाली कप एक तरफ सरका कर एक गहरा निश्वास खींचते हुए भैया खड़े हो जाते हैं.

शायद उनको मेरे जवाब से कुछ सांत्वना मिल गयी है. अम्मा सब्जी काट चुकी है और भैया दूसरे कमरे से कुछ कागज लाकर मेरे हाथ में थमा देते हैं.

—ये नया लेख है. खाना खाने के बाद जरा इसे टाइप कर देना.

मैं कागजों को थोड़ा पढ़ती हुई उठ कर ऊपर के कमरे में की तरफ चलने लगती हूं. अम्मा रसोई में चली गयी हैं. भैया रेडियो लगा कर सुनने लगते हैं.

टाइपराइटर को पुराने कपड़े से झाड़ती हूं. झाड़ते-झाड़ते मेरी उंगलियां वहीं ठहर जाती हैं. अगर पापा को वह आदमी रुपये की जरूरत में टाइप राइटर चार सौ रुपये में न बेच गया होता तो भैया को कितनी दिक्कत होती. मैं पहले भैया का लेख पूरा पढ़ डालती हूं. फिर नये पेपरों को चढ़ा कर टाइप करने लगती हूं. घंटे बाद मैं लेख टाइप करके भैया के सामने रख देती हूं. भैया के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट तिर आयी है. मेरी तरफ देखते हैं, फिर सिर पर हाथ रखते हुए गंभीर हो जाते हैं--तू मेरा कितना काम करती है! और मैं बदनसीब भाई तुझे कुछ भी नहीं दे पाता . . . अच्छा इस लेख के जितने पैसे मिलेंगे, सब तेरे . . . . अपने कपड़े-लत्ते सिलवा लेना . . . एक आध-सिनेमा देख लेना.

मेरी आंखों के कोनों में कहीं से आंसू आ कर ठहर गये हैं. सामने पापा की हंसती हुई किसी पार्टी में खींची गयी तसवीर पर मेरी निगाह टिक जाती है. फिर ठहरे हुए आंसू कोरों से निकल कर बाहर गालों तक आ जाते हैं. भैया कुर्सी पर बैठ कर लेख पढ़ने लगते हैं. मैं अपनी आलमारी में से धुले हुए कपड़े निकाल कर प्रेस करने को बाहर निकालती हूं. शायद गीता ने आज जरूर अपने डैडी से मेरी नौकरी की बात की होगी, नहीं तो कल सुबह ही उनके घर चली जाऊंगी, इतने बड़े आफिस में कहीं न कहीं तो टिका ही देंगे. अम्मा रसोई से मुझे आवाज देती हैं कि उन्होंने सब्जी काट कर चाकू जाने कहां रख दिया है, जरा ढूंढ तो दूं.



• आर्यरत्न श्याम

रसोई में जाती हूं. चाकू अम्मा के दायीं तरफ पटरे के पास रखा है. . . उठा कर दे देती हूं--लो अम्मा ये धरा है!

--जाने क्या हो गया है . . .सामने पड़ी चीज नहीं दिखाई देती . . . .क्या बज रहा है . . .

--अभी तक मन्ना नहीं लौटा न . . .?

अम्मा जानते हुए भी कई बार पूछती हैं और उन्हें मेरे जवाब की प्रतीक्षा नहीं क्योंकि जानती हैं कि मन्ना अभी तक नहीं आया है. तवे पर से रोटी उतार कर थाली में परोस रही हैं. मगर कुछ-कुछ क्षण बाद वह रसोई के दरवाजे से बाहर की तरफ झांकती हैं. सोचती हूं, इसी में कहीं अम्मा अपना हाथ-पांव न जला बैठें . . . कई बार कहती हूं कि रात का खाना भी मैं बना लिया करूंगी तो कह देती हैं-- न. . . तू करती तो है दिन भर.

★ ★

सबने खाना खा लिया है. अम्मा के हृदय में कोई गलत शंका जागने लगी है. भैया अपने कमरे में अखबार पढ़ रहे हैं और अम्मा बरामदे में शाल लपेट कर चारपाई पर बैठ गयी हैं. इस समय साढ़े दस बज रहा है. भैया अखबार पढ़ते-पढ़ते सो गये हैं. मैं अखबार एक तरफ रख कर बत्ती बुझा कर अम्मा के पास आकर खड़ी हो जाती हूं. अम्मा की आंखें दरवाजे से बाहर टिकी हैं. मैं अम्मा से कहना चाहती हूं कि वह भी भीतर आ जायें, सर्दी बढ़ रही है, मन्ना जब आयेगा तभी आयेगा. तुम ये कब तक . . .

तभी सामने से एक साया लड़खड़ाता हुआ घर की तरफ बढ़ता है. अम्मा उठ कर जल्दी से खड़ी हो गयी हैं. कुछ क्षण उस साये को पहचानने की कोशिश करती हैं, फिर कुछ कदम तेज चल कर दहलीज पर ही मन्ना को समेट लेती हैं. फिर वहीं चारपाई पर बैठा देती हैं. मन्ना बैठते ही चारपाई पर लेट जाता है. अम्मा उसके जूते उतार कर कमीज के ऊपरी बटन खोलती हैं. मन्ना लड़खड़ाती जुबान में बुदबुदाता है

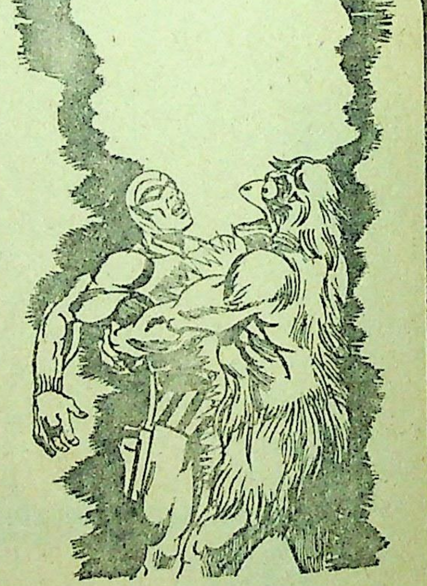
--अम्मा तुमने जो . . . पच्चीस रुपये गांव दादी को मनी आर्डर करने को दिये थे न . . . कहीं गिर गये. अम्मा शायद बस में किसी ने जेब काट ली . . .

अम्मा माथे पर एक जोर से हाथ मारती हैं-- अरे मन्ना, तू क्यों नहीं समझता रे . . . क्यों नहीं सोचता अब तेरा बाप नहीं रहा . . सुधीर को देख कहां-कहां से रुपया बटोरता है. और तू है कि . . .

--अम्मा, अब तुमको भी यकीन नहीं रहा मुझ पर? तुम्हारी कसम मैं जुआ नहीं खेला. . . कल नया साल है न, इसीलिए, दोस्तों ने थोड़ी-सी . . . बस. . .

□□□

८/१०६ देव नगर, करोल बाग, नयी दिल्ली-५



विमली : पृष्ठ ३१ से आगे

बोला—बिमली, अब की देखती तो तुम्हारा उस घर में कितना मान-सम्मान होता.

विमली बोली—मान-सम्मान तो मैंने उसी दिन पा लिया था जब कि तुमने पीटा था. हाथ जोड़ती हूं, अब तुम चले जाओ. रामलाल देखता ही रह गया और विमली अपनी बिल्डिंग की तरफ भाग गयी.

ऊपर पहुंचते ही जल्दी-जल्दी उसने घंटी मारनी शुरू कर दी थी. किसी नौकर ने आ कर दरवाजा खोला, विमली घुसते ही बड़ी सिठानी के कमरे में भाग गयी. जैसे किसी हिरन को शिकारी से भाग कर पनाह मिल गयी हो. बड़ी सिठानी, जो कि पूजा के बर्तन धो रही थीं, बोलीं—अरे, तू वापस आ गयी.

विमली बोली—हमेशा के लिए और रोने लगी. और रोते-रोते बोली—सिठानी जी, धोखा, निरा धोखा, उसके कुछ होने वाला है और अब मेरी वहां जरूरत है. मैं तो यहीं अच्छी हूं. बस तुम्हारे पास.

सिठानी दुखी भी हुई, और खुश भी हुई, बोलीं—चलो, भगवान जो करता है, ठीक करता है.

उन्होंने जब विमली की तरफ देखा तो वह किवाड़ से लगी दुबकी हुई खड़ी थी. सिठानी बोलीं—विमली, तू घबड़ाती क्यों है, मैं जिंदा हूं. तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता.

बहुत सहारा मिला था विमली को, सिठानी की इस बात से, उसने अपना थैला अपनी बंधी हुई जगह पर रक्खा और रोज की तरह जैसे वह भाग-भाग कर काम करती थी, करने लगी. उसकी रगों में जैसे दुबारा खून बहने लगा हो. फिर भी वह रमेशा का दर्द भुला नहीं पा रही थी. आखिर मां थी, जब भी रमेशा का ध्यान आता, उसका मन दुबारा कहता, विमली भूल जाओ. तुम्हें तो अब दुनिया से लड़ना है. जवानी के खून में बहुत ताकत होती है, तू तैयार हो जा.

इसी चक्कर में कल से अब तक उसने एक भी पान नहीं खाया था, मन भी हुआ था, पर उसके पास था ही नहीं. उसने सोचा, अच्छा ही हुआ अगर आदमी अपनी आदतों को बदल ले तो मुश्किल नहीं होती, छोड़ दूंगी, अगर ज्यादा मन नहीं माना तो शुरू भी कर दूंगी. अब मुझे टोकने वाला कौन है.

★ ★

पहले दिन तो डर की वजह से कि कहीं रामलाल न मिल जाये, मोची के अड्डे पर गयी नहीं. नहीं तो सबके सामने वह कुछ कह बैठे तो इसकी इज्जत कितनी रहेगी.

दूसरे दिन दोहपहर में वह नीचे उतरी, पान उसने अभी तक नहीं खाया था. एक मन हुआ पान की दुकान तक जाये, पर पान की दुकान सड़क पर थी, कल ही बस से उतरने के बाद उसी दुकान के सामने रामलाल से उसका अंतिम वार्तालाप हुआ था. इसलिए सीधे वह अपने मोची के अड्डे पर पहुंची. सभी बाइयां, जो वहां बैठी थीं, इसको घूर-घूर कर देख रही थीं.

बिना पान खाये हुए होंठो के साथ इसका चेहरा और भी घरेलू औरत की तरह भोला भाला लग रहा था इसके बैठते ही एक ने पूछा—विमली, दो दिन कहां रही? सुना था तू अपने मरद के पास चली गयी है? विमली तपाक से बोली—किसने कहा, मैं तो अपने उस सेठ के पास गयी थी, और धीरे से मुसकरा दी.

दूसरी बाई बोली—अरे तेरा पान-तंबाकू किधर गया? अगर वह बाई यह न कहती तो थोड़ी देर में वह एक पान मांग भी लेती. पर वह बोली—अरे, मैं क्या बताऊं, वह सेठ मुझे इतना प्यार करने लगा है, कहता है कि तू पान-तंबाकू छोड़ कर मेरी औरत बन कर रह. वह मेरे लिए करता भी बहुत है, क्या करूं, दो दिन से उसीकी आदत डाल रही हूं.

तीसरी बाई बोली—अगर सेठ ने तुझे रखैल रख लिया तो यहां सिठानी का काम छोड़ देगी? विमली बोली—यही तो मैं सोच रही हूं. सिठानी से भी मुझे बहुत प्रेम हो गया है और वह सेठ तो करता ही है.

बीच में ही एक बाई जैसे ललचा के बोली—विमली, मैं तो होती तो सेठ की सिठानी बन कर शान से रहती. विमली बोली—देखो सिठानी के पास रह कर अभी मैं आजाद हूं और सेठ तो वैसे ही मुझ को प्यार देता है. अगर मैं उसकी औरत बन गयी और दूसरे दिन उसका मन बदल गया तो मैं कहां जाऊंगी. मैं तो ऐसे ही ठीक हूं. उसका भी कहना करूंगी और अपना भी.

यह सब झूठ गढ़ते उसको बड़ा आनंद आ रहा था. पर ज्यों-ज्यों वह आगे बोलती जाती थी, उसके मन का एक कोना जोर से दर्द करने लगता था. दूसरी तरफ सबको पान, तंबाकू खाते देख कर उसकी तल्ब बढ़ती जाती थी. पर किसको मालूम कि विमली कितनी अकेली है! सिठानी के पास क्या रखा है, उसीका दूसरा रूप तो है ही.

उसका एक मन हुआ कि यह झूठ कहीं सच होता तो उस बात में कितना बल होता. यह सोच कर उसका मन उदास हो गया था. कहीं किसी को अंदर की हालत का पता न लग जाये. दूसरे पान की तलब उसकी काफी बढ़ गयी थी. वह उठी और बिल्डिंग की तरफ चल दी. □□□

बन वे ट्रैफिक

• सुधा चंदोला

सांय–सांय!! सांय!!

हवा चल रही है. ऐरीजोना की धूसर भूमि. चारों ओर गर्द का अंबार और पीछे रेगिस्तान से उड़ कर आये कैक्टस के कांटों से भरा यार्ड.

कल ही सारे घर में डस्टिंग की थी और आज बालू की किरकिरी से घर भर गया है. धरती क्या है, बस रेत का टीला है. एक हवा के झोंके से ही धुंध छा जाती है. अभी परसों की ही बात तो है जब मेरे पड़ोसी जॉन की कोरियन पत्नी मरिया की डर के मारे जान निकल गयी. रेत की आंधी क्या आयी कि दिन में ही सितारे नजर आने लगे. कैक्टस के पौधे जड़ से उखड़ कर हवा में उड़ने लगे. पीछे गैलरी में रखे गार्बेज कैन गार्बेज को चारों ओर उड़ाते हुए मेन रोड पर लुढ़कने लगे और बाहर क्लाथ लाइन पर पड़े कपड़े तो ऐसे गायब हुए जैसे उन्हें हवा खा गयी या धरती निगल गयी. भला ऐसी आंधी को देख कर किसे डर न लगेगा! कभी-कभी यही आंधी प्रलयकारी रूप धारण कर लेती है.

पारसाल इन्हीं दिनों की बात है. हम हाइवे पर थे और हमारी गाड़ी ऐसे ही एक तूफान में फंस गयी थी. अचानक रेतीली आंधी का एक भारी झोंका आया. बालू के टीलों से परत की परत उड़ चली और कार का बैलेंस खराब होने लगा. कार में तीन माह के इस्तेमाल लायक सामान भरा था, उसी वजन से उलटी नहीं, अन्यथा आंधी तो कार को उलट फेंकने को तैयार बैठी थी. सत्तर मील प्रति घंटे की स्पीड से चलने वाला हाइवे जड़ हो गया. घुप्प अंधेरा छा गया और पांच मील की रफ्तार पर भी हाथों-हाथ न सूझता था. मुंह पर कपड़ा बांधे, आंखों पर चश्मा चढ़ाये, 'राम राम' का मंत्र जपते हुए किसी तरह गाड़ी हांके जा रहे हैं. जैसे गाड़ी न हुई बैलगाड़ी हो गयी.

कारें मंद गति से रेंगती जा रही हैं—स्पंदनहीन व जड़ ही तो हैं. पर यंत्रवत जाती कारों के अंदर जो हाड़-मांस के पुतले बैठे हैं, वे यंत्र को चालित कर रहे हैं, गति को परिस्थिति के अनुरूप घटा-बढ़ा रहे हैं. पर उनके दिल पीपल के पत्तों की तरह डोल रहे हैं. वे और समय भले ही मशीन बन जायें, पर इस समय सब अपनी-अपनी सुरक्षा की मनौतियां मना रहे हैं. सत्तर मील की गति भले ही उनके दिल व दिमाग को बहका दे, पर इस समय सभी चौकन्ने हैं. कौन झोंका कब, किसकी गाड़ी को किसी खड्ड में फेंक देगा, कोई नहीं जानता.

ब्लाइथ सात मील. ये सात मील न हुए सात जनम हो गये. दिन अच्छा हो तो पांच मिनट का रास्ता इस दुर्दिन में असंभव बन गया है. काश, हमने यह हाइवे न लिया होता. गलती सुधारने का होश तब आता है जब गलती हो जाये, पर कुछ गलतियां ऐसी भी हैं जो कभी नहीं सुधर सकतीं. उमा, मेरी मुंहबोली बहिन कहती है—जीजी, मुझे अगर जिंदगी एक बार और जीने को मिल जाये—बस, एक बार और, तो मैं ऽऽ—मैं उसे बिल्कुल नयी तरह से जीऊंगी. वही गलतियां कभी नहीं करूंगी, जो अब तक करती आयी हूं. पर सत्य, नंगा सत्य, यही है कि जिंदगी वन वे ट्रैफिक है और एक बार ही जीने को मिलती है. दूसरे जन्म की भगवान ही जाने. पर यही एक जीवन भी किसी-किसी के लिए कभी-कभी ब्लाइथ का तूफानी रास्ता बन जाता है.

ब्लाइथ पांच मील! नहीं नहीं. . .ये पांच मील कभी पूरे न होंगे.

बच्चा करुण क्रंदन कर रहा है. गर्मी, हाय गर्मी! पानी-पानी की पुकार हो रही है. मुझे लगता है—वही क्या? हर कोई, यहां तक कि कार के कार्बोरेटर भी पानी ऽऽ पानी ऽऽ चिल्ला रहे हैं. मैं बच्चों को पानी देती हूं, पर मुंह में जाने से पहले ही पानी रेत की किड़च किड़च से भर जाता है. मुंह में भरा पानी वह कुल्ला कर फेंक देता है और चिल्लाता है—'ये तो गंदा पानी है. मुझे अच्छा पानी चाहिए.

—बस, मेरे बेटे, अब ब्लाइथ तीन मील है. तीन मील. . .तीन मील बस उतना होता है जितना हमारे घर से शांता आंटी का घर. . .बस अभी पहुंचे जाते हैं.

बच्चा अविश्वासी निगाहों से मुझे घूरता है. मैं उसकी नजरों से नजर नहीं मिला सकती. हम जिस विषमता से गुजर रहे हैं, उससे वह अनभिज्ञ नहीं लगता. बात बदलने के लिए मैं बाहर देखने लगी हूं.

* *

ब्लाइथ में क्या ऐंटर हुए कि पानी पड़ने लगा. यह पानी भी आशा की तरह ही जीवन का अमृत है. इसके पड़ते ही धूल दबने लगी है. हमने कार की खिड़कियां खोल दी हैं. गरम हवा के झोंके कभी किसी को इतने सुहावने न लगे होंगे, जितने हमें लग रहे हैं. मेरे पति का मौन बहुत देर बाद टूटा है. वे कहते हैं—सैंड स्टोर्म से रेन स्टौर्म भला, यह कहने के साथ उनकी सांस का एक भारी-सा भभका निकलता है, जैसे दिल पर रखा कोई भारी बोझ उतर गया हो.

हम सैंडी के घर पहुंच गये हैं. टूसौन वापस जाते समय ब्लाइथ में उसके पास ठहरने का हमने वायदा किया था. उससे न मिलना होता तो हम कभी यह रास्ता न लेते. कुछ साल पहले सैंडी हमारे पड़ोस में रहती थी और उससे अच्छी दोस्ती हो गयी. माइक से उसका डाइवोर्स हुआ और वह ब्लाइथ में आ कर रहने लगी. यहां उसके कई रिश्तेदार रहते हैं.

सैंडी का छोटा-सा पर धुला-पुछा, सजा-धजा, एयर फ्रेशनर की ताजगी और खुशबू से महकता घर. दरवाजा खुलते ही फ्रैश पाइन के फ्रैशनर की खुशबू

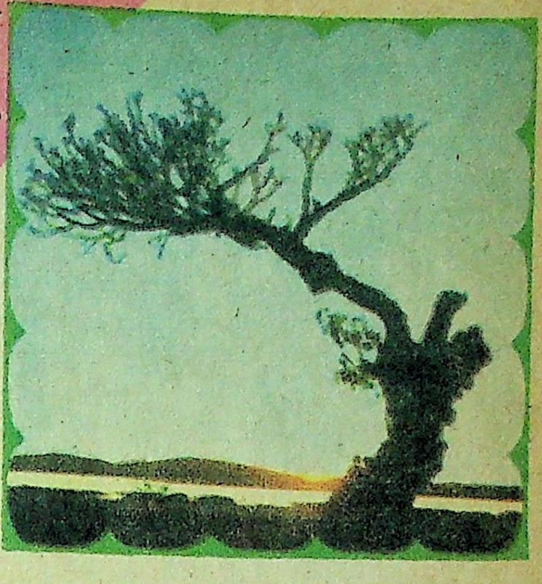
का एक झोंका आता है. वीराने में बहार आ गयी है. रेगिस्तान में देवदारु की महक समा गयी है और मुझे अपने पहाड़ों, वनों की याद आ गयी है. पर मैं बीती जिंदगी में फिर नहीं जाना चाहती. यादें. . .! अपनों की मधुर यादें—अपने बचपन की क्रीडास्थली की यादें. . . ये यादें कितनी ही मधुर क्यों न हों, पर उनका अभाव हमारे भावनात्मक वायुमंडल में एक कसक-सी छोड़ जाता है और इच्छा होती है कि बचपन एक बार फिर आ जाये और मैं निर्भीक हिरणी-सी नैनीताल की चिर-परिचित सड़कों पर, पगडंडियों पर कुलाचें लगाऊं. पर नहीं, जो बीत गयी , वह बात गयी. मैं वर्तमान को ही जीना चाहती हूं. अन्यथा पीछे जो रेगिस्तान छोड़ आयी हूं उसे कौन जियेगा? एक सैंडी है, जो न वर्तमान में है, न भूत में है और न भविष्य में. तो कहां है सैंडी? शायद अधर में लटकी है. वर्तमान उसका अनिश्चित है. उसी के शब्दों में कहूं तो —— एकदम राटन, एमलैस. भविष्य की योजनाएं बनाना उसके नियमों के विरुद्ध है और भूत? वह तो सचमुच भूत की तरह ही डरावना है, डरावना? हां डरावना ही कहेंगे . वह डर. . . . पुनः भूल करने का डर, मिल कर बिछुड़ जाने का डर, बिछुड़ कर बिखर जाने का डर. पर सबसे बड़ा डर—टूटी जिंदगी को फिर से संवारने की तमन्ना. हां, यह तमन्ना भी उसके लिए दुख और डर का कारण बन गयी है. बने क्यों नहीं, जब कि वह अभी भी माइक को प्यार करती है— उसी माइक को, जिसने अपना जीवन नये सिरे से बसाने के लिए उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका. बेचारी सैंडी और उसके डर! डर और तमन्ना का भीषण संघर्ष! बस बीती जिंदगी एक बार फिर मिल जाये तो. . .

एक ओर सैंडी के डर और अभाव है दूसरी ओर अहमद का केस कुछ और ही तरह का है. अहमद! कौन है यह अहमद? अहमद है जिंदगी की गाड़ी को खींचता हुआ प्रेत —— बस बहिन जी, कुछ न पूछिए. जिंदगी क्या है दोजख की आग बन गयी है. चार लड़कियों के बाद पहला ही लड़का हुआ था. पता नहीं क्या गड़बड़ हुई कि मेंटली रिटार्टेड पैदा हुआ. ये देखिए, ये रही उसकी तसवीर..

कितना मासूम बच्चा है? कितना प्यारा चेहरा है! . . . पर. . . पर बेचारा कितना भुगत रहा है!

—— चार बरस का हो गया बहिन जी, पर हरकतें उसकी एक बरस के बच्चे जैसी हैं.

मेरे सामने जिंदा लाश आ जाती है. स्लो पायजनिंग! दौड़ते भागते , जिंदगी का भार ढोते मुर्दे. कभी आंख खोल कर देखो तो चारों ओर भूत ही भूत नजर आते हैं. कंगाली के भूत, भुखमरी के भूत, रोगों के भूत. मेरा तो सर चक्कर खाने लगा है. लगता है कि भूत-भूत कह कर चीखने लगूंगी, पर लोक-लाज से चुप रह जाती हूं. इस मुल्क में साइकोलॉजिकल केस बनते देर नहीं लगती और मुझे साइकोलाजिस्टों की चक्करबाजी में फंसना क़िसी भी कीमत पर मंजूर नहीं. कुछ साल पहले की ही बात है. एक भारतीय



● आर. एन. प्रसाद

सज्जन ने परेशान हो कर गुस्से से कह दिया ——मुझे तो जहर मिल जाये तो मेरी दवा हो जाये. बस फिर क्या था! मैंटल हॉस्पिटल की चक्करबाजी शुरू हो गयी. साइकोलाजिस्ट ने कहा —— मरने की तमन्ना करना. . . स्वीसाइडल टेंडेंसीज! यह आदमी खतरनाक है. कभी अपना जीवन ले बैठेगा. अब उन्हें कौन समझाए कि ये शब्द तो हम लोग खीझ कर न जाने कितनी बार कहते होंगे. पर उन सज्जन को फौरन भारत डिपार्ट करा दिया गया. जाते समय बेचारे बड़े दुखी-से बोले—— मुझे मालूम न था, मेरा एक वाक्य मुझे ले डूबेगा. ये लोग स्वीसाइड से नहीं डरते. वे तो होते ही रहते हैं. डरते हैं स्वीसाइडल टेंडेंसीज से. डरना भी चाहिए और पहले ही; बाद में डरने को रखा क्या है?

हां, तो शायद अहमद बोलता ही जा रहा था और मैं दूसरे ही विचारों में लीन कुछ भी न सुन रही थी. जितना सुना था वही मुझे डिस्टर्ब करने को बहुत था. आज के जमाने में पांच बच्चों की क्या जरूरत थी भाई! तुमने अगर इस ओर ध्यान दिया होता तो शायद यह ट्रेजेडी न होती. पर अभी भी कौन जानता है? यह लड़का काम का नहीं और अहमद का लड़के का अभाव अभी बना ही है.

* *

आज जैसा दिन तो शायद ही कभी देखा हो. कार एक्सीडेंट क्या हुआ कि पुलिस और इंश्योरेंस की चक्करबाजी में सारा दिन निकल गया. गलती दूसरे कार ड्राइवर की थी, परंतु नियमों की खानापूरी में मैं भी फंस गयी.

घर आ कर मैं निढाल -सी पलंग पर लेट गयी. सारे दिन की घटनाएं मेरे मानसपटल पर चलचित्र-सी घूम गयीं. पर यह कार ऐक्सीडेंट! जिंदगी और मौत में दो अंगुल का फासला! थैंक्स गॉड! दूसरे ड्राइवर को भी चोट न आयी. बस सब कुछ पलक मारते ही तो हो गया. कोई बात नहीं. : कारें ही डैमेज हुईं. ठीक हो जायेंगी. . . पर. . . पर अहमद

का लड़का! क्या कोई कुशल रिपेयरमैन... कोई अनुभवी डाक्टर... उसे कभी ठीक कर सकेगा?

मैं शायद ऊंघने लगी थी. डर कर मैं उठ बैठी. लगा, फिर से कारें खट्ट से टकराई हैं. तभी दरवाजे पर 'खट खट' सुनायी पड़ी. जरूर लूसी होगी. वही दरवाजा पीटती है. अन्य मिलने वाले तो घंटी बजाते हैं. अलसाये मन से दरवाजा खोलती हूं. लूसी ही है. अंदर आ कर वह पूछती है—मे आइ आस्क फॉर ए फेवर?

मैं सिर हिला कर स्वीकृति देती हूं.

वह हिचकिचा कर कहती है — क्या तुम मुझे पांच डालर उधार दे सकोगी?

हां, ना कहने लायक ताकत भी शायद मेरे शरीर में नहीं रह गयी है. चुपचाप पर्स से निकाल कर पांच का नोट उसे थमा देती हूं. वह खुशी से चहक उठती है— ओह, यू एंजिल! यू नो, मैं किसी दिन असीम संपत्ति की स्वामिनी बनने वाली हूं. उस दिन मुझे याद रहेगा कि तुम मेरे प्रति कितनी दयालु थीं!

मुझे जोर से चिपटा, मेरे माथे को चूम कर वह जिस वेग से आयी थी उसी से चली भी गयी. मेरी कार के पिचके बेक फेंडर और टूटी हुई टेल लाइट्स पर भी उसका ध्यान न गया!

लूसी के जाते ही मैं फिर विचारों में खो गयी हूं. नौकरी की तलाश में जूतियां रगड़ती, करोड़पति बाप की इकलौती बेटी लूसी को आज पांच डालर उधार लेने की नौबत आ गयी है. क्या यह कहे तो इसका बाप इसे अपनी कंपनी में कोई ढंग की नौकरी भी नहीं दे सकता! पर लूसी को अपने मां-बाप से सख्त नफरत है. उसका रहन-सहन, उसकी विचारधाराएं उसके माता-पिता के जीवन स्तर से मेल नहीं खातीं. एक बार लूसी ने मुझे बताया था:

—दो साल पहले मां-बाप से मिलने गयी थी मैं, यू नो, सफर में जैसे कपड़े रहते हैं स्वेट शर्ट, टैनिस शूज और जीन्स में थी मैं!

—मां को देखते ही दौड़ी मैं ...एक बार फिर मां की बेबी बनने ... मामा से चिपटने ...

कहते-कहते उसका गला भर आया है. गहरी नीली आंखों में आंसू छलछलाने लगे हैं. कुछ रुक कर, गला साफ कर वह कहती है:

—मैं मां से चिपटने को हाथ बढ़ाये दौड़ रही थी कि अचानक मेरी चाल थम गयी. मेरे हाथ बेजान से गिर पड़े. मां अपनी जगह खड़ी थी, जैसे मेरे आने का उसे कोई अहसास ही न हो. मां की चढ़ी हुई भृकुटियां और उसके चेहरे की कठोरता से मैं समझ न पायी कि मेरा क्या दोष! तभी मां ने कहा— यू लुक अग्ली, कपड़े तो ढंग से पहन कर आतीं. मेड देखेगी तो क्या सोचेगी? ...गो टेक ए शावर ऐंड चेंज, गो क्विक!

अब तक उसने अपने दिल के उफान पर, उमड़ते आंसुओं पर कंट्रोल कर लिया था. फिर वह करुण हंसी हंस कर बोली:

—अपमान से मेरा चेहरा लाल हो गया. शावर में घुसते ही मेरी आंखों का शावर भी चालू हो गया... मैं यहां क्यों आयी? दैट बिच! मां है वह? आइ हेट हर...

अगले दिन ही वह घर से चल पड़ी थी. मां तो अपराधिन-सी चुप रहीं पर डैडी का दिल भर आया— व्हाइ माइ चाइल्ड ...कल ही तो आयी थीं... तुम्हें यहां क्या कमी है?

डैडी का चेहरा रोना-सा हो गया. उनकी आंखों में धुंध घिर आयी, उसे लगा, बर्फ की सिल्ली पिघल जायेगी... प्लीज डैडी, मुझे कमजोर न बनाइए. यह घर नहीं, घर का खंडहर है... यहां सब टूटा-टूटा-सा है... पर प्रत्यक्ष में कहती है:

—बस छुट्टियां ही नहीं हैं डैडी. एक बार आप लोगों को देखना था सो देख लिया. आइ प्रामिस, अगली बार लंबे समय के लिए आऊंगी.

—ओके! टेक केयर माइ बेबी, कह कर पिता ने उसका माथा चूमा और उसके हाथ में १००० डालर का चैक थमा दिया.

—लगता है तुम्हारे डैडी तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, मेरे पूछने पर वह खिलखिला कर हंस पड़ती है.

—डैडी को प्यार की फुरसत ही कहां है माइ डियर. उन्हें तो बस पैसे से प्यार है. ये लोग मशीन हैं मशीन ...इनके पास दिल नाम की कोई चीज नहीं... यू विल सी ...दो-तीन माह में आ रहे हैं वे यहां.

लूसी को नौकरी मिल गयी और उसने अपने आफिस के पास ही घर किराये पर ले लिया.

लूसी एक बार फिर आती है—प्लीज, कल हमारे साथ डिनर करना. इट्स टू सडन! पर मेरे डैडी-ममी दो दिन के लिए आ रहे हैं.

फ्री डिनर किसे बुरा लगता है? मैंने खुशी से हामी भर ली.

अगले दिन शाम को बाहर फिर रेतीली आंधी चालू हो गयी है. बाहर के मौसम से बेखबर पार्टी अपने यौवन पर है. बस यहीं प्रकृति मात खा जाती है. अमेरिका में मौसम की खराबी से कोई काम नहीं रुकते. एक प्रकार का पागलपन-सा लगता है कभी.

कहकहों की आवाजें और शराब के दरिया में गोते खाते जोड़े! संगीत के स्वर के साथ थिरकते जोड़े! यहां अभद्रता जैसी चीज को ह्यमर के नाम पर उड़ा दिया जाता है. इस समय तो सब एक मूड में हैं—पार्टी मूड! ...पर धीरे-धीरे शराब सब पर हावी होती जा रही है.

एक अधिक पी कर डाउन हो गया है. दो लोग उसे मुर्दे की तरह खींचते सैंडी के बेड रूम में डाल आये हैं. दूसरे को ऐसी चढ़ी है कि वह उमंग में कभी अपनी टाई चूमता है तो कभी अपने हाथ. बेजा हरकतें करता है और प्रलाप पर उतर आया है. उसकी हरकतें देख कर लूसी का फिस्स से हंसी का फव्वारा छूट पड़ा है. वह अपनी गोल-गोल, लाल-लाल आंखों से उसे ऐसे घूरता है जैसे खा ही जायेगा. उसको यूं घूरता देख लूसी घबड़ा कर अपना सिर घुटनों पर रख कर

उसकी प्रतिक्रिया की ऐसे प्रतीक्षा करती है जैसे भयभीत कबूतरी चील के झपटने के डर से आंखें बंद कर रही हो. तभी वह उठ कर और शराब लेने किचन-बार की ओर चला जाता है. राहत की सांस लेती हुई वह कहती है– थैंक्स गाड !

पार्टी चल रही है और चलती ही जायेगी. शायद इन नशे से धुत्त, गाड़ी चलाने में असमर्थ युवक-युवतियों को हमेशा की तरह इस बार भी लूसी यहीं रोक लेगी. उसके अमीर मां-बाप तो वापस अपने आलीशान होटल में लौट जायेंगे. तब इन शराबियों का नशा क्या गुल खिलायेगा? क्या खिड़कियों के कांच फिर टूटेंगे . . . गिलास फूटेंगे . . . और नशे में धुत्त ये रंगीले, रसीले, शराब की बू से भिनकते जोड़े . . . असंयत यौवन की आग में झुलसते-पिघलते ये युवक और युवतियां . . . . ? ? ?

हम बस चलना ही चाहते हैं कि लूसी का बाप कहता है—तुमको मालूम है कि कल मेरी बीवी को कुत्ते ने काटा? हम सब चौंकते हैं. कुत्ते ने काटा? क्या कुत्ता पगल था? वह ठहाका लगाता है—कुत्ता ऽऽ! पागल कुत्ता !! अरे कुत्ता पागल होता तो दोनों को शूट करना पड़ता—कुत्ते को भी, बीवी को भी. फिर बीवी से कहता है—अरे, दिखाओ सबको ! बड़ा भारी घाव हो गया है जांघ पर, दिखाओ भी . . . शर्माती हो ? . . . मुझे दिखा सकती हो तो इन्हें क्यों नहीं दिखा सकतीं . . . तभी उसकी दृष्टि लूसी पर पड़ती है और वह फिर चालू हो गया है—लूसी, माइ डियर! आजकल तुम कई युवकों से डेट कर रही हो . . . हाट डेट्स . . . प्ले बैक होना चाहिए . . . क्या करते हो तुम लोग हाट डेट्स में ? . . . कम आन . . . कम आन . . . लेट्स बी फ्रैंड्स !

अब तो चलना ही होगा. बाहर पानी पड़ रहा है. लूसी हमें सी-आफ करने हमारी कार तक आती है. बाहर की खुली हवा व पानी की बौछारों से उसका नशा उतरने लगा है. अंदर जो कुछ चल रहा है उससे वह कुछ शर्मिंदा व बेवकूफी की हद तक गंभीर हो गयी है. अचानक वह मेरा हाथ पकड़ कर कहती है—मुझे अफसोस है कि तुम लोगों को यह सब देखना पड़ा.

हम घर की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं और मेरे मन में घिरी आक्रोश की घटाएं घुलती जा रही हैं. जिंदगी के थपेड़ों से त्रस्त ये मुसाफिर एक बार फिर अतीत को जीना चाहते हैं पर हर क्षण जो अतीत बनता जा रहा है उसे संवारने, संभालने की बात उनकी अक्ल से बाहर की बात है. फिर जिन घटनाओं पर मेरा बस नहीं, उनसे मैं क्यों व्यथित हूं ? यथार्थ यही है कि हम सबको अपनी-अपनी जिंदगी जीनी है.

हमारे घर पहुंचते-पहुंचते आकाश साफ होता जा रहा है. अभी-अभी वर्षा से धुले, उजले होते हुए आकाश में पूर्णिमा का चांद बादलों से आंख-मिचौनी खेलने लगा है. □□□

डिपार्टमेंट आफ ओरियेंटल स्टडीज, यूनिवर्सिटी आफ एरीजोना, टक्सन, एरीजोना—८५७२१ यू. एस. ए.

नागा लोककथा

निर्णायक युद्ध

पक्षियों के पितामह सुंग्कीडांग के बगीचे में बेर का एक वृक्ष था. इस वृक्ष के बेर इतने मीठे होते थे कि न सिर्फ सभी पक्षी अपितु अन्य रेंगने वाले जीव-जंतु भी उनको खाने के लिए लालायित रहते थे. इस वृक्ष की रखवाली का काम जांगमेजा नामक एक पक्षी को सौंपा गया था. किंतु एक दिन उसने रखवाली करते हुए एक छिपकली को जमीन पर गिरा हुआ एक बेर खाते हुए देखा. जांगमेजा ने उसे बहुत डांटा-फटकारा और यहां तक कि उस पर चोरी का आरोप भी लगाया. छिपकली का कहना था कि उसने भूख लगने पर जमीन पर गिरे हुए बेर को खाया और वह भी पेड़ पर चढ़े बगैर अतएव वह चोरी की दोषी नहीं है. जांगमेजा ने प्रस्ताव रखा कि दोनों की बिरादरी के सभी पक्षी तथा रेंगनेवाले जंतु अमुक दिन इकट्ठे हों और तब सही निर्णय लिया जाये.

दोनों पक्षों को नियत दिन पर सुंग्कीडांग के दरबार में बुलाया गया किंतु उस पूरे दिन भर उसका कोई फैसला न हो सका. अतएव यह तय हुआ कि तीन दिन बाद युद्ध के मैदान में ही इसका निर्णय हो.

नियत दिन पर इच्छुक-अनिच्छुक, सबल-निर्बल सभी पक्षी तथा रेंगनेवाले जीव-जंतु तैयार हो कर लड़ाई के मैदान में आये. सबसे पहले रेंगनेवाले जीव-जंतुओं की ओर से एक सांप ने पक्षियों को चुनौती दी. उसका सामना करने के लिए एक 'हार्नबिल' पक्षी आगे बढ़ा. दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया जो देर तक चलता रहा किंतु अंततः 'हार्नबिल' मारा गया. सभी पक्षियों ने एक-एक करके सांप को चुनौती दी किंतु सभी खेत रहे. इतने में उनकी नजर एक उल्लू पर पड़ी जो एक वृक्ष की डाली पर चुपचाप बैठा हुआ यह सारा दृश्य देख रहा था. उन्होंने उससे प्रार्थना की कि वह उनकी ओर से सांप का मुकाबला करे.

उल्लू से चुप बैठा न रहा गया, वृक्ष से उतर कर उसने सांप से लंबा युद्ध करके अंत में उसको मार डाला. उसके उपरांत वह वापस वृक्ष की शाखा पर जा कर ठाट से बैठ कर देखने लगा कि अन्य पक्षीगण अब क्या करते हैं. उत्साहित पक्षी एक-एक करके रेंगनेवाले जीवों से लड़ते रहे और विजयी हुए.

तब से ही आओ नागाओं में यह कहावत प्रचलित है कि उल्लू छोटे-मोटे पक्षियों तथा सांपों का आहार करता है. □□□

मुखौटे

• मनजीत

रिक्शा शहर की तंग सड़कोंवाले मुहल्ले को पार कर इस शहर के आधुनिक परिवेश वाले इलाके में प्रवेश कर चुका था. सड़क के दोनों ओर खूबसूरत बंगले बने हैं और बीच-बीच में कुछ का निर्माण हो रहा है.. हर निश्चित फासले के बाद पार्क बने हुए हैं. पार्कों में आधुनिक किस्म के फव्वारे लगे हुए हैं. इसमें कुछ के तो खराब पड़े हैं. वातावरण में एक खुलापन है. शाम का वक्त है और मैं जा रहा हूं अपनी नाट्य संस्था 'रंग लोक' की एक अत्यंत आवश्यक मीटिंग में. आज की मीटिंग नाथ बाबू ने अपने यहां रखी है.

नाथ बाबू में कितनी लगन है. कला के प्रति! उस दिन मैं विपिन के यहां से लौट रहा था कि रास्ते में ही नाथ बाबू मिल गये थे. मैं उन्हें देख नहीं पाया था. उन्होंने ने हो देखा था—— कहो भाई, कहां घूम रहे हो? मुड़ कर, उन्हें देखा तो नमस्कार किया. पास आकर उन्होंने हाथ मिलाया था.

——बस, ऐसेही एक दोस्त के यहां गया था, मैंने कहा.

तभी उनका ड्राइवर क्लाथ हाउस में से कपड़ों के पैकेट लेकर कार का पिछला दरवाजा खोलने लगा था कि नाथ बाबू बोल पड़े थे——सामान अगली सीट पर रखो, और मेरी ओर मुड़ कर बोले थे, आइये बैठिये!

——नहीं मुझे अभी एक और जरूरी काम है, यहीं पास में ही लाइटवाले से, अगले हफ्ते शो है न, मैंने कहा तो चौंक गये थे.

——शो है पर कहां?

——अबकी बार हम यह शो ओपेन एयर में कर रहे हैं, वहीं लेबर कालोनी में, मैंने उत्तर दिया था.

और यह चश्मा——चढ़ी आंखों से आकाश की ओर देखते रहे थे. थोड़ी देर तक, फिर मेरी ओर होकर कहा था——परसों संडे है. याद है न, मीटिंग है मेरे यहां, प्रभाकरजी से मेरी बात हुई थी. वह बता रहे थे कि वीरेंद्र और मैं, कांसोट्यूशन तैयार कर रहे हैं. संडे तक तैयार हो जायेगा. और मेरा ख्याल है कि संडे को ही सबकी राय जानकर, मंडे को लखनऊ जाकर रजिस्ट्रेशन के लिए अप्लाई कर दिया जाये.

——हां, ऐसा ही ठीक रहेगा, मैंने उनकी बात पर सहमति प्रकट की थी.

कुछ देर खड़े रहने के बाद हम लोग चलने को हुए थे, कार पर बैठते हुए उन्होंने मुझसे कहा था——अगर पैसे-वैसे की जरूरत पड़े तो बताना. मैं इस बात पर इंकार करते हुए हल्का-सा मुस्करा दिया था. खुशी हुयी थी उनके लगाव के प्रति. उनकी कार आगे बढ़ गयी थी और मैं अनवर बिजली वाले की दूकान की ओर बढ़ गया था.

नाथ बाबू से मेरी पहली मुलाकात, शायद वीरेंद्र ने करायी थी. सुशील के एम. एस. डी. चले जाने से वीरेंद्र संस्था के सचिव पद पर नया-नया आया था. वीरेंद्र की नाथ बाबू से जान-पहचान जगदीशजी ने करायी थी. जगदीश संस्था के पुराने संरक्षक हैं. और एक दिन वीरेंद्र मुझे नाथ बाबू के आफिस में ले गया था. उन दिनों हम लोग 'तुगलक' की तैयारियां कर रहे थे. सावित्रियर के लिए विज्ञापन चाहिए थे. और नाथ बाबू ने पंद्रह मिनट में ही फोन से पांच विज्ञापन एकत्रित कर दिये थे और कहा था—— दो एक और कर दूंगा, शाम तक. हजार-डेढ़ हजार के एडवर्टिजमेंट मेरी तरफ से पक्के समझिये. और एक मेरी फैक्टरी का कवर पेज का छाप लीजिए. हमारी काफी देर तक बातचीत होती रही थी. तभी उन्होंने कहा था, अगर आप लोग संस्था का रजिस्ट्रेशन करा लें तो आप लोगों को काफी सहूलियत होगी, मेरे कुछ एम. एल. ए. जान-पहचान के हैं. उनसे कह कर आपको नाटक आकादमी से एड दिला दूंगा. रजिस्ट्रेशन की जरूरत को हम लोग भी समझते थे और हम लोगों ने इस दिशा में ध्यान देना शुरू कर दिया था.

नाथ बाबू और जगदीशजी संस्था को हर संभव मदद देने के लिए तैयार हैं इसलिए हमें कम से कम दो शो लेबर कालोनी में कर देनें चाहिए और एक-आध शो नवाबगंज की हरिजन बस्ती में हो जाय तो अगले प्ले की तैयारियां की जायें, उस दिन विपिन बता रहा था.

मराठी का एक नाटक अनुवादित होकर हिंदी में आया है जिसमें कुल दो ही पात्र हैं, बता रहा था कि अच्छा है, इसलिए सोच रहा हूं कि वही किया जाये. नाथ बाबू भी खुश होंगे, इस नये प्रयोग को देख कर.

'ई' ब्लाक आ गया था. मैं जेब से नाथ बाबू के बंगले का पता निकाल कर देखने लगता हूं. रिक्शावाले से रिक्शा धीरे चलाने के लिए कहता हूं और प्रत्येक बंगले के नंबर को गौर से देखता हूं.

इसी बीच, एक जगह दिखायी दे गया उनका बंगला. रिक्शा वहीं रुकवाया था. पैसे दिये और बंगले की ओर बढ़ा. गेट का एक हिस्सा अंदर की ओर लुढ़का हुआ है और एक हिस्से पर टीन की एक पट्टी पर एक नोटिस लगा है, 'कुत्ते से सावधान'. मैं पढ़ कर, थोड़ा भयभीत हुआ. थोड़ा अंदर बढ़ा तो सामने विपिन की एक स्कूटर खड़ी थी. नाथ बाबू की कार के अलावा एक कार और खड़ी थी और पास ही जमीन में गड़े से एक कुत्ता बंधा हुआ था. वह मुझे देख कर भौंकने लगता है. कुत्ता काफी तंदुरुस्त है और लाल आंखे किये मुझे भौंक रहा है. अगर जंजीर खुल जाये तो कोई शक नहीं वह मुझ पर टूट पड़ेगा.

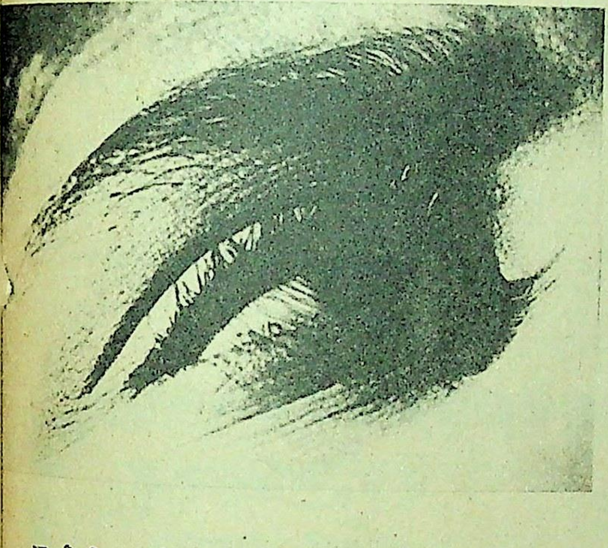
कुत्ते की आवाज सुन कर एक आदमी बाहर आता है और वह मुझे अंदर ले जाता है.

अंदर ड्राइंग रूम में छह या सात लोग बैठे हैं. मैं हाथ

जोड़ कर सबको अभिवादन करता हूं, इन सात लोगों में एक नया चेहरा दिखायी देता है-- काला कलूटा, बेहद भद्दी शक्ल लिये हुए. उसने कीमती कपड़े पहन रखे हैं, हाथों की उगलियों में कीमती हीरों की अंगूठियां हैं और कहीं टेलीफोन से बात कर रहा है. कमरा काफी ठंडा है, शायद ऐयर कंडीशनर चल रहा है. पिछली मीटिंग में जो प्रभाकरजी ने अपने यहां रखी थी, कितनी असुविधा हो रही थी!

अंदर से नाथ बाबू आते हैं. मैं उन्हें हाथ जोड़ता हूं. वह स्वीकारने की मुद्रा में मुस्करा देते हैं.

--आप सब लोग तो आ गये हैं, पर अभी तक जगदीश नहीं आया. वह उस अपरिचित आदमी की ओर होकर कहते हैं, अरे भाई पी. एल. जरा जगदीश को फोन तो करना, पता नहीं अभी तक क्यों नहीं आया, और वह आदमी फोन मिलाने लगता है. शायद उधर से आवाज आती है, वह पूछता है-- कौन ?.... अरे



भाभीजी नमस्ते, भाभीजी जगदीश हैं... क्या कहा? चले गये.... अच्छा कितनी देर हुए..... अच्छा बस वैसे ही. और वह रिसीवर रख देता है और नाथ बाबू की ओर होकर कहता है— घर से तो चल दिये हैं.

---ठीक है, थोड़ी देर और इंतजार कर लेते हैं. मैं समझता हूं कि तब तक एक दूसरे का परिचय हो जाय, नाथ बाबू कहते हैं, आपका मैं इनसे परिचय करवा दूं.

वह उस काले-कलूटे आदमी को की ओर इशारा करके कहते है—आप हैं श्री पी. एल. सिंह. एक्सपोर्ट का बिजनेस करते हैं. कल्चर से विशेष लगाव है.

इस बीच वह आदमी उठ कर हाथ जोड़ता है. नाथ बाबू कहते जा रहे हैं. मैं इन्हें संस्था में लाना चाहता हूं, अगर आप सबकी इजाजत हो.

--हमें क्या एतराज हो सकता है. नाथ साहब, प्रभाकरजी कहते हैं.

--प्रभाकरजी, मैं तो मजाक में यह सब कह रहा हूं, नाथ बाबू हंस कर कहते हैं.

--प्रभाकरजी आप संस्था के अध्यक्ष हैं, इसलिए इन सबका परिचय आप ही करा दीजिए. नाथ बाबू के कहने पर प्रभाकरजी उठ कर परिचय कराने लगते हैं. वह वीरेंद्र की ओर इशारा करके कहते हैं-- वीरेंद्र हैं, हमारी संस्था के सचिव. वह उठ कर हाथ जोड़ता और बैठ जाता है. और आप हैं अमरजीत. उनका इशारा मेरी ओर था. मैं उठ कर हाथ जोड़ता हूं और प्रभाकरजी पी. एल. सिंह को बताते हैं-- आज-कल आप ही संस्था के नाटकों का निर्देशन देते हैं. और आप इनके अभिनय से परिचित हैं ही, यह इशारा विपिन की ओर था. इन्हें नगर के रंगमंच का हीरा कहा जाता है. इनका नाम विपिन है. विपिन भी उठ कर हाथ जोड़ देता है. विपिन के बगल में दिनेश बैठा है. प्रभाकरजी उसका परिचय करा रहे हैं. दिनेश भी हाथ जोड़ कर बैठ जाता है. अब वंदना का नंबर आ गया है. वे उसकी ओर इशारा करके कहते हैं, यह हैं वंदना, हमारी संस्था की एकमात्र महिला कलाकार.

--पिछले हफ्ते वाला आपका नाटक बेहद पसंद आया वंदनाजी, पी. एल. सिंह बोल पड़ते हैं.

--मैंने तुमसे उस दिन जिक्र किया था न, कि तुम्हारे यहां कोई वांट हो तो वंदना का ख्याल रखना. पी. एल. बेहद ओछे ढंग से मुस्करा देता है, जिसकी वजह से उसकी बड़ी-बड़ी आखें बाहर निकल आती हैं और उसका चेहरा बेहद डरावना लगता है.

नाथ बाबू उठ कर अंदर चले जाते हैं जहां से शायद वह किचन की ओर गये हैं. उनके पीछे-पीछे एक दुबला पतला-सा लड़का, मेरे ख्याल से उसका नौकर है, एक ट्रे में शर्बत भरे गिलास लाता है और सबके आगे रख देता है. पी. एल. सिंह इस बीच पांच-छह फोन कर चुके हैं. मुझे लग रहा है वह शायद अपनी व्यस्तता का ढोंग रच रहे ह.

इसी दरम्यान, हाथ जोड़े, बड़े रोमानी अंदाज से जगदीशजी आ जाते हैं--दोस्तो, क्या बताऊं, एक जरूरी काम से फंस गया था इसलिए देर हो गयी. जगदीशजी क्या कहते हैं, और भाई पी. एल. क्या हाल है?

--ये भाई, सुनो, यह फोन उस कमरे में रखो. जब तक यहां रहेगा मैं बातें करता रहूंगा, पी. एल. उस नौकर से कहते हैं.

--प्रभाकरजी मेरे ख्याल से अब ज्यादा वक्त न लेकर हमें मीटिंग शुरू कर देनी चाहिए. नाथ बाबू कहते हैं.

--हां वक्त बहुत हो रहा है. अब और तो किसी के आने की संभवना है नहीं, प्रभाकरजी उत्तर देते हैं. वह इशारे से वीरेंद्र से कुछ कहते हैं. वह एक फाइल उनकी ओर बढ़ा देते हैं. फाइल लेकर प्रभाकरजी खड़े हो जाते ह--साथियो, आज की मीटिंग हमने इसलिए बुलायी है कि हमने विगत कई वर्षों से इस संस्था को चलाया है और अब यह तय किया है कि इस संस्था का रजिस्ट्रेशन कराया जाये. इसलिए हमने यह संविधान तैयार किया है, जिसके लिए आप सबकी स्वीकृति आवश्यक है. और वह संविधान के प्रारूप को फाइल से निकाल कर पढ़ने लगते हैं-- नाट्य संस्था का नाम 'रंग

लोक' होगा तथा इस संस्था का उद्देश्य हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों का मंचन करना होगा. . . .

--सिर्फ नाटक करने से क्या होगा प्रभाकरजी, प्रभाकरजी बोल रहे थे कि नाथ बाबू बीच में बोल पड़े, मैं तो समझता हूं कला की विस्तृत सेवा के लिए टाइम-टाइम पर डांस और म्यूजिक प्रोग्राम भी रखने चाहिए. क्यों जगदीश, तुम्हारा क्या ख्याल है?

--मैं तो समझता हूं कि आपकी बात ठीक है. कुछ लोगों को नाटक वगैरह पसंद भी नहीं आते. इसके लिए ऐसा किया जा सकता है. जैसे ड्रामा हुआ, उसके बाद एक-आध म्यूजिकल प्रोग्राम हो जाये या फिर किसी अच्छी डांसर का डांस, जिसके काफी भीड़ खिंच सकती है, जगदीशजी उत्तर देते हैं.

--म्यूजिकल प्रोग्राम के लिए तो अपना छोटा साला है, उसने एक म्यूजिक संस्था बना रखी है. इसके लिए उससे हेल्प ली जा सकती है. पी. एल. सिंह रिसीवर मुंह से हटा कर बीच में ही बोल पड़ते हैं.

मुझे इन तीनों की इस वक्त की राय कतई पसंद नहीं आ रही है.

--इस सांस्कृतिक संस्था का नाम 'रंग लोक' होगा, प्रभाकरजी को हार कर सांस्कृतिक संस्था कहना पड़ता है. इस संस्था का प्रधान कार्यालय कानपुर में होगा. . .

--अगर आप लोगों को एतराज न हो तो मेरे यहां आफिस बना लें, नाथ बाबू बीच में ही बोल पड़ते हैं. मैं वीरेंद्रजी की ओर देखता हूं कि मुझे लगा, जैसे उसके चेहरे पर असुविधा का भाव तैर गया हो, मगर वह कुछ बोलता नहीं. सबकी ओर से स्वीकृति का उत्तर पाकर प्रभाकरजी ने कार्यालय का पता भी लिख दिया.

--इस संस्था के सात संरक्षक होंगे, और नाथ बाबू यह आप लोगों को तय करना है कि पैट्रेंस की मेंबरशिप की रकम कितनी होनी चाहिए. . . . प्रभाकरजी कहते हैं.

--मेरे ख्याल से नाथ बाबू, पैट्रेंस के लिए ढाई हजार डोनेशन होना ही चाहिए, पी. एल. सिंह कहते हैं.

--क्या सोच रहे हैं नाथ बाबू? अरे उस दिन आपने इक्कीस सौ रुपये दिये थे. मुझे संस्था का नाम याद नहीं आ रहा, अरे उन्होंने आपको अपने वार्षिक समारोह में चीफ गैस्ट भी बताया था, पी. एल. सिंह फिर कहते हैं.

--अरे यार पी. एल., तुम बेकार में ढाई हजार कह रहे हो, मैं तो सोच रहा हूं पैट्रेंस के लिए डोनेशन कम से कम पांच हजार तो होना ही चाहिए. अरे भाई, संस्था के पास तीस-चालीस हजार का फंड तो करना ही है.

--देखिये, हमें पैट्रेन भी चुन-चुन कर बनाने हैं, उस दिन वीरेंद्र मुझसे कह रहा था, घाई को शामिल कर लिया जाय. बड़े इंट्रेस्टेड हैं. तो इसके लिए हमें ध्यान रखना है, कहीं ऐसे-वैसे लोग न घुस आयें संस्था में.

जगदीशजी बड़ी देर चुप रहने के बाद बोले हैं. मुझे इनकी इन बेहूदा बातों से न जानें क्यों ऊब होने लगती है.

--अच्छा प्रभाकरजी, आगे, पी. एल. सिंह कहते हैं.

—आगे तो कलाकारों और सदस्यों की मेंबरशिप की फीस के बारे में है जो इन लोगों ने हाल ही तय कर ली है. इन्होंने अपना वार्षिक चंदा इक्कीस रुपये रखा है. और इसके आगे है कि, इस संस्था का जितना भी लेनदेन होगा, वह बैंक द्वारा ही होगा.

—देखिये प्रभाकरजी, हम लोग जितना भी सा देंगे, वह दो नंबर का होगा. इसलिए जाहिर है कि कि से नहीं दे सकते और नाही इस पैसे की अपने यहां ातों में एंट्री ही कर सकते हैं. इसलिए आप यह लाइन ाट दें तो बेहतर होगा. नाथ बाबू ने कहा.

—मेरे ख्याल से, अब संविधान को आप लोगों के नुरूप बनाना पड़ेगा. इसको फिर से बना कर आप लोगों ी स्वीकृति में लाना पड़ेगा, प्रभाकरजी बोले.

—ठीक है, अगली मीटिंग भी हमारे यहां रख ीजिए, नाथ बाबू कहते हैं. तभी नाथ बाबू से छोटी-सी लड़की उनके पास जाकर कुछ कहती है.

—ऐसा है, डाइनिंग रूम में नाश्ता लग गया है, ब लोग उधर ही चलें. नाथ बाबू के कहने पर सब लोग ठ कर डाइनिंग रूम की ओर चल देते हैं.

* *

डायनिंग टेबल पर विभिन्न प्रकार की खाने की ़जें रखी हुई हैं. पी. एल. सिंह वंदना से बातें कर रहे प्रभाकरजी और बिपिन उनके पास खड़े उनकी तें सुन रहे हैं. वीरेंद्र और दिनेश चाय बना रहे हैं. नाथ बू और जगदीशजी आपस में बातें कर रहे हैं.

—वीरेंद्रजी नाथ बाबू कहते हैं, हमनें सुना है कि ले हफ्ते आप लोग किसी लेबर कालोनी में तंबू, कनात ा कर नाटक करने जा रहे हैं. क्या चेंबर हाल खाली हीं है?

—नहीं नाथ बाबू, ऐसी बात नहीं है. हमने सोचा कि हम जब तक नाटकों को प्रेक्षागृह की दीवारों से हर निकाल कर आम आदमी तक नहीं ले जाते, तब तक ा सार्थक नहीं होगी.

—देखो भाई, अगर हाल बुक कराने के लिए पैसे ीं थे, तो हम लोगो से ले लेते. नाथ बाबू कहते हैं.

—तुम लोग शो के लिए लेबर कालोनी वालों से ना पैसा ले रहे हो? जगदीशजी पूछते हैं.

—जी, पैसा तो कुछ नहीं, सारा कुछ अपने पास से रहे हैं, वीरेंद्र उत्तर देता हैं,

—वीरेंद्रजी, यह बात मेरी समझ में नहीं आती. कर रहे हैं, वह भी मुफ्त में. अरे भाई, हाल के अंदर क का जो स्टैंडर्ड है, वह तंबू-कनात में नहीं. देखो जो हाल के अंदर आती है, वह सड़कों पर नहीं आयेगी. तरह सड़कों पर शो करके क्यों संस्था को सड़क- बना रहे हो?

मेरे मुंह में पड़े मिठाई के टुकड़े का स्वाद अंदर तक ापन छोड़ जाता है. मेरी सारी धारणा, सारा ास न जाने कहां गायब हो जाता है और इस ावरण से एक ऊब-सी होने लगती है. □□□

२३६, हालसी रोड,
पुर –२०८००१

प्रसंग

५० वीं पुण्यतिथि

पं. माधवराव सप्रे : एक स्मरण

● डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया

आज से सात-आठ वर्ष पूर्व तक कोई नहीं जानता था कि हिंदी का प्रथम मौलिक कहानी-लेखक कौन है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रमाणपत्र - प्राप्त व्यक्ति ही इस क्षेत्र का निर्विवाद प्रतिष्ठित व्यक्तित्व था. हिंदी साहित्य-इतिहास के सारे ग्रंथ शुक्लजी के अनुकर्ता बने रहे. जो सूची एक बार शुक्लजी ने बना दी थी, वह अंतिम न हो कर भी अंतिम ही बनी रही. लेकिन कुछ वर्ष पूर्व पहली बार 'सारिका' के माध्यम से देवी प्रसाद वर्मा ने इस तथ्य को उजागर किया कि हिंदी का प्रथम मौलिक कहानी लेखक वह नहीं, जिसे शुक्लजी ने कहा था, बल्कि सुदूर अंचल में हिंदी के लिए सर्वस्व समर्पित कर निर्भीक साधना करने वाला स्वर्गीय माधवराव सप्रे जैसा उद्‌भट व्यक्तित्व है.

स्व. सप्रेजी न केवल प्रथम मौलिक कहानी **'टोकरी भर मिट्टी'** के लेखक हैं, बल्कि अन्य अनेक कहानियां भी उन्होंने लिखी थीं. **'टोकरी भर मिट्टी'** को **'सारिका'** ने अविकल रूप में प्रकाशित भी किया था. इस कहानी में उस सामंती युग की अर्थ और वर्ग-विषमता के दिग्दर्शन के साथ ही निरीह मानव की विवशता, आंतरिक मानवता का मार्मिक चित्रण किया गया है, जहां सांकेतिक ढंग से बहुत कुछ कह जाने की प्रकृति दिखायी पड़ती है. ७५ वर्ष पूर्व लिखी गयी इस कहानी में आज की कहानी के बीज विद्यमान प्रतीत होते हैं. सत्य के अन्वेषण और निष्कर्ष के लिए **'सारिका'** ने लगभग छह माह तक इस संबंध में चर्चा को जीवंत रखा और अंततः सभी ने स्वीकार किया कि हिंदी की प्रथम कहानी वही है. बाद में जो भी संग्रह कहानी के ऐतिहासिक क्रम को दृष्टिगत रख कर प्रकाशित किये गये, उनमें सप्रेजी की इस कहानी को शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ. विश्व-विद्यालयों ने उसे विशिष्ट स्थान दिया. **'सारिका'** कहानी विधा की दिशा-निर्देशक पत्रिका है. प्रकाशन-संपादन की दृष्टि से उसका महत्वपूर्ण स्थान है.

सप्रेजी न केवल प्रथम मौलिक कहानी लेखक के रूप में बल्कि अन्य अनेक कारणों से सदैव स्मरण किये जायेंगे. **'छत्तीसगढ़ मित्र'** नामक साहित्यिक मासिक का संपादन -प्रकाशन उन्होंने छत्तीसगढ़ अंचल से सन् १९०० में प्रारंभ किया था और उसी में यह प्रथम कहानी प्रकाशित हुई थी. उन्होंने हिं साहित्य में 'मित्र' के माध्यम समालोचना का भी प्रारंभ किय था. जब समाचारपत्रों में और पत्रिकाओं में युद्ध के समाचा प्रकाशित होते थे, तब उन्हों ३०-४० पृष्ठों तक की समीक्षा प्रकाशित की थीं. लोगों ने शिकायत भी की तो आपने स्पष्ट लिखा कि हमारा लक्ष्य कुछ और है. अतः आप लोग 'आम में इमली का स्वाद' ढूंढ़ने की निरर्थक चेष्टा न करें.

वह नहीं चाहते थे कि लो साहित्य के नाम पर खिलवाड़ क

टोकरी भर मिट्टी

(स्व. माधवराव सप्रे द्वारा लिखित 'टोकरी भर मिट्टी' संक्षेप में यहां दी जा रही है.)

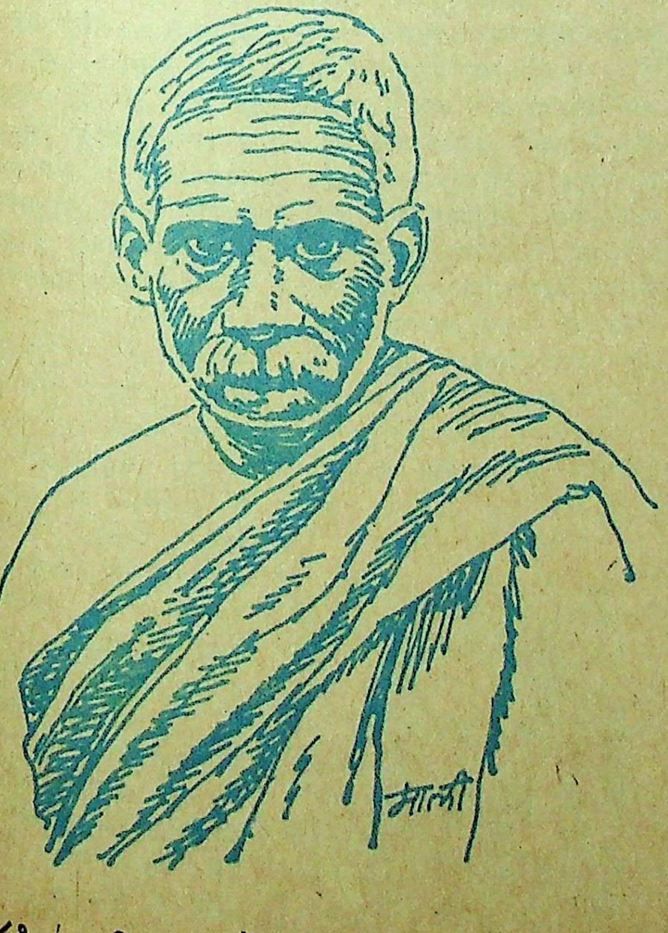
एक जमींदार की हवेली के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोपड़ी थी. वह उसमें अपनी पतोहू द्वारा छोड़ी गयी पांच वर्ष की एक कन्या को ले कर रहा करती थी. जमींदार की इच्छा अपनी हवेली का अहाता उस झोपड़ी तक बढ़ाने की हुई. विधवा से बहुतेरा कहा गया कि वह अपनी झोपड़ी वहां से हटा ले किंतु वह टस से मस न हुई. इस पर जमींदार ने अदालत का सहारा लिया और वकीलों की जेब गर्म करके झोपड़ी पर कब्जा करके बुढ़िया को वहां से निकाल बाहर किया.

एक दिन जमींदार झोपड़ी के पास टहल रहे थे कि बुढ़िया वहां आ पहुंची. उसके साथ उसकी पोती भी थी. बुढ़िया ने गिड़गिड़ा कर कहा कि जब से उसकी झोपड़ी छूटी, उसकी पोती ने खाना-पीना छोड़ दिया है. यदि जमींदार आज्ञा दें तो वह झोपड़ी में से एक टोकरी मिट्टी बाहर निकाल कर उसका चूल्हा बनायेगी. उसका विश्वास है कि उस पर बनी रोटी उसकी पोती खाने लगेगी. जमींदार ने दया करके उसे ऐसा करने की आज्ञा दे दी. बुढ़िया ने भीतर जा कर एक टोकरी भर मिट्टी भर ली और उसे बाहर ले आयी. अब वह जमींदार से प्रार्थना करने लगी कि इसे हाथ लगा दीजिए ताकि मैं इसे सिर पर रख लूं. जमींदार ने पहले तो आनाकानी की फिर टोकरी उठाने को आगे बढ़ा. लेकिन पूरी ताकत लगा कर भी वह टोकरी उठाने में असमर्थ रहा. इस पर बुढ़िया ने कहा—श्रीमान नाराज न हों, इस झोपड़ी में हजारों ऐसी टोकरियां भरी मिट्टी पड़ी हैं. उनका भार आप जन्म भर कैसे उठा पायेंगे? बुढ़िया के ये वचन सुनकर जमींदार बड़ा लज्जित हुआ. उसने क्षमा मांगी और उसकी झोपड़ी भी वापस कर दी. □□□

और समालोचक अपनी मनमानी लेखकों पर थोपें. वह साहित्य में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के पक्षधर थे और इसी के लिए लोगों को प्रेरित, उत्साहित तथा संबोधित किया. उनका स्पष्ट अभिमत था कि समालोचक को उचित है कि गुण-दोष सप्रमाण सिद्ध करे, जिससे लेखक को मालूम हो जाये कि कौन-से गुण हैं, कौन-से दोष हैं. . . विद्वानों का यह काम नहीं है कि केवल दोष प्रकाशित करने में ही कमर बांध लें. यदि पुस्तक में गुण हों, तो उसका भी विचार करना चाहिए. वह कलम को कुल्हाड़ा नहीं बनाना चाहते थे. वह तत्कालीन रचना-स्थिति से संतुष्ट नहीं थे. तभी तो लिखा था कि "आजकल हिंदुस्तान में काव्य रस के विषय में बड़ी गड़बड़ मच गयी है. अर्थ की गंभीरता , नैसर्गिक वर्णन की कुशलता , पद की सुंदरता और अलंकार की उपयुक्तता पर कोई ध्यान नहीं देता. तुक में तुक मिला कर शब्दों के आडंबर और पदों के बैठाने में ही कई होनहार तरुण व्यक्तियों ने अपनी सारी बुद्धि उलझा रखी है."

समालोचना का आरंभ करने के साथ ही राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीयता के लिए उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया. **'कर्मवीर', 'हिंदी केसरी,' 'छात्रहितकारिणी श्री शारदा'** आदि के लिए उन्होंने सभी प्रकार के प्रयत्न किये. तत्कालीन कई प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्र-संपादकों ने स्वीकारा था कि सप्रेजी की मृत्यु **'कर्मवीर,'** के लिए अधिक श्रम करने से हुई. वह **'कर्मवीर'** के लिए पागल-से थे. प्रचार-प्रसार, धन-संग्रह, सुरक्षा-साधन सभी की व्यवस्था उन्होंने की. उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि हिंदी को सर्वोच्च स्थान मिले, क्योंकि इसके बिना न तो देश का विकास होगा और न एकता आयेगी. हिंदी साहित्य सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने सन् १९२४ में अह्वान किया था कि सबको सारे मतभेद भुला कर हिंदी के लिए समर्पित होना चाहिए, बिना हिंदी की श्रेष्ठता के हमारा कल्याण संभव नहीं.

स्व. माधवराव सप्रे



तिलकजी के **'गीता रहस्य'** का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया था. नौ सौ पृष्ठों के इस वृहद ग्रंथ के लिए हिंदीभाषी लोग उन्हें सदा याद करते रहेंगे. अन्य दर्जनों ग्रंथ उनके द्वारा हिंदी साहित्य को प्रदान किये गये. पांच-छह दर्जन निबंधों की उन्होंने रचना की. इन निबंधों में जीवन, साहित्य, समाज, दर्शन, धर्म-संस्कृति के अनेक पक्षों पर व्यावहारिक ढंग से विचार किया गया है.

आपकी इन्हीं तमाम सेवाओं के कारण स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टंडन ने उन्हें 'हिंदी का गौरव' और 'हिंदी केसरी' कहा था. स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आपकी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-सेवा के लिए हिंदी वालों की ओर से कृतज्ञता ज्ञापित की थी. और श्री नरदेव शास्त्री ने उन्हें मध्यप्रदेश की उपलब्धियों का प्रतीक स्वीकार किया था.

सप्रेजी को जीवन भर शांति और सुख प्राप्त नहीं हुआ. ठेकेदारी, ट्यूटरी, मास्टरी, मैनेजरी आदि सब कुछ किया पर लक्ष्य से नहीं हटे. आंतरिक सुख ही उनके लिए सच्चा सुख था.

ऐसे अप्रतिम व्यक्तित्व का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया ग्राम में १९ जून १८७१ को हुआ था. आज से ५० वर्ष पूर्व २३.४.१९२६ को इस संसार को छोड़ कर चले गये. हमारा कर्तव्य है कि उनसे प्रेरणा ले कर कुछ स्थायी महत्व का कार्य करें. उनके नाम पर कहानी क्षेत्र में एक पुरस्कार का प्रारंभ किया जा सकता है. साहित्यकारों का दायित्व है कि उनका सही-सही मूल्यांकन करते हुए उनके संपूर्ण साहित्य को सुनियोजित ढंग से प्रकाशित करें. □□□

कृतियां

दो कहानी-संग्रह

'हिंदी कहानियां'

संपादक : डॉ. नामवर सिंह; नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली; मूल्य : चार रुपये पचास पैसे

● रामदेव आचार्य

नेशनल बुक ट्रस्ट ने 'कथा-भारती' शीर्षक के अंतर्गत एक सोद्देश्य पुस्तक-माला की योजना क्रियान्वित की है, जिसका लक्ष्य भारत की प्रतिनिधि भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को अन्य भाषी लोगों तक पहुंचाना है.

प्रस्तुत संकलन में हिंदी की पंद्रह प्रतिनिधि कथाएं मुद्रित हैं : (१) चंद्रधर शर्मा गुलेरी: **'उसने कहा था,'** (२) प्रेमचंद : **'कफन'**, (३) जयशंकर प्रसाद: **'गुंडा'**, (४) जैनेंद्रकुमार: **'पाजेब'**, (५) यशपाल : **'पराया सुख'**, (६) रांगेय राघव : **'गदल'**, (७) फणीश्वर नाथ रेणु : **'तीसरी कसम'**, (८) निर्मल वर्मा : **'लंदन की एक रात'**, (९) राजेंद्र यादव : **'खुशबू'**, (१०) मोहन राकेश : **'उसकी रोटी'**, (११) कमलेश्वर : **'गर्मियों के दिन,'** (१२) श्रीकांत वर्मा **'शवयात्रा'**, (१३) अमरकांत : **'दोपहर का भोजन'**, (१४) ज्ञान रंजन : **'फेंस के इधर-उधर'**, (१५) काशीनाथ सिंह : **'सुख'**.

हिंदी कथा के किसी भी सजग पाठक से इन नामों और कहानियों के स्थापित महत्व का रहस्य छिपा हुआ नहीं है. विचारने के लिए ये प्रश्न उभरते हैं : (१) क्या ये कहानियां हिंदी कथा के काल-बद्ध इतिहास को एक प्रतिनिधित्व के साथ रेखांकित करती हैं? (२) हिंदी कथा के संपूर्ण व्यक्तित्व से अपरिचित यदि कोई अंतर्देशीय पाठक इन कथाओं को पढ़े तो क्या वह हिंदी कथा के विकास का सही जायजा ले सकेगा? (३) प्रस्तुत संकलन में किन नामों की अनुपस्थिति खटकती है, तथा किन कहानियों के स्थान पर इन्हीं लेखकों की कौन-सी दूसरी कहानियां अधिक सार्थक सिद्ध हो सकती थीं? (४) वृद्ध कथाकार और नये कथाकार के शिल्प-विधान के बीच उभरे अंतराल की क्या पहचान है?

हिंदी कथा का प्रारंभ १९०० के आस-पास माना गया है. १९६० के आसपास तक की कथाएं इस संग्रह में हैं. हिंदी कथा किस प्रकार संपन्नता ग्रहण करती हुई विकास के मार्ग पर बढ़ी है—ऐसी आकृति इस संकलन से उभरती है. इस संग्रह की चंद कथाएं तो अपनी अभिव्यक्ति, विचार-संपदा, और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि में बेमिसाल हैं, जिनकी तुलना विश्व के किसी भी समृद्ध कथा-साहित्य से की जा सकती है.

यह भी एक सुखद आश्चर्य है कि हिंदी कथा के प्रारंभिक दौर में ही **'उसने कहा था'** जैसी सशक्त कृति की रचना हो गयी थी, जिसमें एक मुंह-बोलती आंचलिकता और एक स्पर्शी मुहावरे की अनुपम छटा थी. यह कहानी १९१५ के समीप लिखी गयी. विकास के इसी परिपक्व क्रम में प्रेमचंद ने नितांत यथार्थवादी कथ्य को जन-भाषा में लिखना प्रारंभ किया. इस प्रकार **'कफन'** जैसी कृति की अवतारणा हुई.

हिंदी के भावी कथाकार के सामने ये सशक्त नींवें थीं.

नामवर सिंह



गुलेरी ने हिंदी कथा को एक चटपटी, नाटकीय भाषा, एक जातीय आंचलिकता और एक कला-संयमितता दी. जन-जीवन के तटस्थ शिल्पी प्रेमचंद ने कथा को जीवन का ही पर्याय बना दिया. प्रेमचंद कथा की शहरी आंचलिकता को ग्राम्य-जीवन की गहराइयों तक ले गये और उन्होंने कथा-परिवेश को एक आवश्यक व्यापकता दी. प्रेमचंद ने समांतर चलते जन-जीवन की निर्मम सच्चाइयों को भाषा और भाव की नक्काशियों से मुक्त किया और उन्होंने मानव-जीवन की त्रासद हकीकतों को एक कला संयम के साथ अभिव्यक्ति दी.

'कफन' कहानी में मानव-प्रकृति के जिस तात्विक और गहन सत्य की खोज है, वह सत्य विभीषक भी है, विडंबनापूर्ण भी; कुरेदने-वाला भी है और जीवन का एक प्रामाणिक पहलू भी.

दूसरी ओर प्रसाद रूमानी अद्वितीयता के रचनाकार थे. प्रसाद की कथाएं मध्ययुगीन भावुकता, प्रकृति की सुकुमारता और संवादों की जीवंतता से लदी हुई हैं. नामवर सिंह ने बड़ी सतर्कता से प्रसाद की **'गुंडा'** कहानी संकलित की है, जिसमें प्रसाद की कथा के सभी अंतर्निहित तत्वों के बावजूद एक सामयिक सामाजिक सत्य है.

प्रेमचंद और गुलेरी की सपाटता और तर्जे-बयानी का प्रभाव जैनेंद्र, यशपाल, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, श्रीकांत वर्मा और अमरकांत की कहानियों में, एक सूक्ष्मता के साथ खोजा जा सकता है. प्रेमचंद का प्रभाव कहानी की तटस्थता पर, सपाटबयानी पर और कलात्मक संयम पर है, और गुलेरी का प्रभाव संवादों के चटपटेपन पर और भावुकता के संयम पर है.

इस संकलन को देखते हुए इस बात पर संतोष होता है कि हिंदी कथा जीवन और कृति के अंतराल को पर्यायवाची

बनाने वाली प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि से अधिक प्रभावित है, और प्रसाद की अतिशय रूमानी भव्यता हिंदी कथा के एक अलग, विशिष्ट नक्षत्र के रूप में अकेली जगमगा रही है.

फिर भी हिंदी कथाकारों के प्रतिनिधि संकलन में युवा लेखकों की बेहतर कहानियां रखी जा सकती थीं. साथ ही भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, मार्कंडेय, कृष्ण बलदेव वैद, तथा कृष्णा सोबती के नामों की अनुपस्थिति खटकती है.

* *

डॉ. नामवर सिंह ने कथा चयन में दो बातें ध्यान में रखी हैं, जो उनके निम्न वक्तव्य में मैंने रेखांकित कर दी हैं : 'यह संपूर्ण हिंदी कहानी का प्रतिनिधि संकलन नहीं है. इसमें कुछ प्रसिद्ध कहानीकार समाविष्ट होने से रह गये हैं. शिल्पगत प्रयोगों की विविधता भी नहीं निभायी गयी है और कुछ कहानी-प्रवृत्तियां भी संभवतः छूट गयी हैं. इसका एक कारण तो संकलन के आकार की निर्धारित सीमा है और दूसरा कारण संपादक की निजी चयन-दृष्टि. सामान्यतः उस दृष्टि को सामाजिक यथार्थ की संज्ञा दी जा सकती है.'

नामवर सिंह की सामाजिक यथार्थवादी और निजी चयन दृष्टि एक-दूसरे की पर्याय हैं, और यही इस संकलन की बुनियादी कमजोरी है. नामवर की दृष्टि अनेक बार एकपक्षीय हो जाती है और उन्हें धुरीहीन छोड़ जाती है. जहां तक पुस्तक के आकार की निर्धारित सीमा का प्रश्न है, वहां यदि नामवरसिंह चंद और कहानियां जोड़ देते तो बजट में ज्यादा फर्क नहीं पड़ सकता था.

फिर भी प्रस्तुत संकलन बहुत महत्वपूर्ण और वजनदार है. □

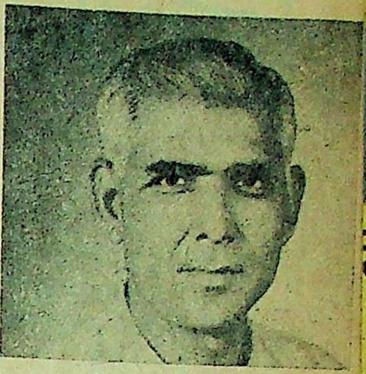
'एक वह'

लेखक : रामदरश मिश्र; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

● नंद चतुर्वेदी

'उसके भीतर एक देहात तड़पने लगता है, लेकिन उसके ऊपर बिछा हुआ शहर उसे कसे हुए है'— **'उत्सव'** कहानी की भीड़ में एकांत और अजनबीपन का जो दुख व्यक्त हुआ है, वह रामदरश मिश्र की कहानियों का मुख्य प्रसंग है. **'एक वह'** की बारह कहानियों में से दस कहानियों में गांव की बेतहाशा याद, खेत, जंगल तथा लोगों की तरफ बहुत दूर निकल जाने के बाद पीछे मुड़-मुड़ कर देखने और प्रणाम करने वाली मुग्ध दृष्टि है. लेकिन यही एक दृष्टि नहीं है—एक और दृष्टि भी है, जो **'दूरियां'** और **'घर'** जैसी कहानियों में है. दोनों ही कहानियां इसका प्रमाण हैं कि गांव में सब कुछ रूमानी और नेह-भीगा नहीं है. क्या इन कहानियों में वह क्रूर वास्तविकता है, जिसे 'मूल्य-संक्रमण' और 'आर्थिक तब्दीलियों' से गुजरते हुए तनाव की कहानियां कहा जा सके? मेरा खयाल है कि रामदरशजी के लिए गांव के सीमांत छोड़ना कठिन है. **'दूरियां'** और **'घर'** जैसी कहानियां एक पश्चाताप के साथ हैं. एक ऐसी मनःस्थिति के साथ कि देखो, गांव भी अनात्मीय हो गया है!

जो भी हो, मिश्र जी ने इन कहानियों में जिस अमानवीय राजनीति का छल बेपरदा किया है, वह उन्हें विशिष्टता प्रदान करता है. **'एक वह'** कहानी में ताऊ की मौत एक सुखद इंतजार की मौत है, जो उम्र भर अटक-अटक कर रामायण की ये पंक्तियां पढ़ता रहा है—'आरे दयहिक, दयविक भवतिक तापा, राम राज काहू नहिं बियापा.' किंतु मौत के वक्त वह आम और अदना आदमी सिर्फ नेक और



रामदरश मिश्र

खुशनुमा खयालों के पोस्टर में लिपटा हुआ था.

'सड़क' कहानी का रिटायर्ड मास्टर एक खास गर्व और स्वाभिमान के साथ खादी पहनता है, लेकिन अंत में उसे एहसास होता है कि 'एक खादी उसकी है, एक यादवजी की (यादव जी एम. एल. ए. हैं.) यादव ही खादी पहनने के हकदार हैं, क्योंकि उनके शरीर पर खादी का विकास हुआ है और वह? वह नहीं, उसके शरीर पर तो खादी फटती ही चली गयी है.' **'पराये शहर'** और **'जमीन'** कहानियां भी उस छद्मधारी वर्ग को बेनकाब करती हैं जो सीधे-सादे सामान्य लोगों को अपनी चालबाजियों का शिकार बनाता है.

समसामयिक जिंदगी की कड़वाहट और व्यापक सवालों को उठाने वाली कहानियां हैं **'मिसफिट'**, **'संबंध'**, **'निर्णयों के बीच निर्णय'**, लेकिन वे अधिक ध्यान आकृष्ट करने वाली कृतियां नहीं हैं, क्योंकि वे बहस की तरह हैं.

रामदरशजी की कहानियों में दुतरफा नजर रखनी पड़ती है—स्थिति की तरफ और बयान की तरफ. स्थिति ही काफी नहीं होती, उस पर पात्र अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं, जिससे पाठक की मनःस्थिति बनती रहे. यह एक तरह का नाराज करने वाला व्यवधान है. समसामयिकता पूरे समय का दबाव है, उसका एहसास अलग से होना या कराया जाना एक असुविधा है. मिश्र जी चाहें तो स्थिति में से भाषा को जन्मा सकते हैं. □□□

किस्सा किस्सागोई का

• योगेश श्रीवास्तव 'प्रवीन'

जिस जमाने में लखनऊ का सिबतैनाबाद हजरतगंज में ढल रहा था, जहां फिरंगी चहल-कदमी करने लगे थे, उन्हीं दिनों कलकत्ते के मटियाबुर्ज में एक नया सिबतैनाबाद अंगड़ाई ले रहा था.

सिबतैनाबाद क्या था छोटा-मोटा लखनऊ था. वही अंदाज, वही तहजीब, वही रंग, वही लोग, वैसी ही इमारतें और हूबहू वही नाम, शहंशाह मंजिल, नूर मंजिल, कस्र उल बका, सुल्तान मंजिल, बारादरी और इमामबाड़े...

गुजरे हुए कल के बादशाह लखनऊ से आये तो वजीर, बेगमें, मुंशी-मुसाहिब, कारीगर-कारिंदे, साज-वाले, आवाज वाले सब लखनऊ से ढो आये थे...इन-सान क्या दरिंदे-चरिंदे तक शहर लखनऊ से ला कर पाले गये थे. गोमती की बहन गंगा के किनारे पर.

ये उसी सिबतैनाबाद की कहानी है...

सब ऐशो आराइश होते हुए भी बेताज के बाद-शाह अंगारों पर लोट रहे थे. साजो रक्स भी उनके दिल के जलते जख्म भर सकने में नाकाम रहा करते थे.

अचानक एक दिन नवाब को खबर मिली कि शाहे दिल्ली बहादुर शाह 'जफर' को तख्त से उतार कर ब्रिटिश हुकमत ने रंगून रवाना कर दिया है, जिनका जहाज आज हुगली के दहाने से गुजरेगा.

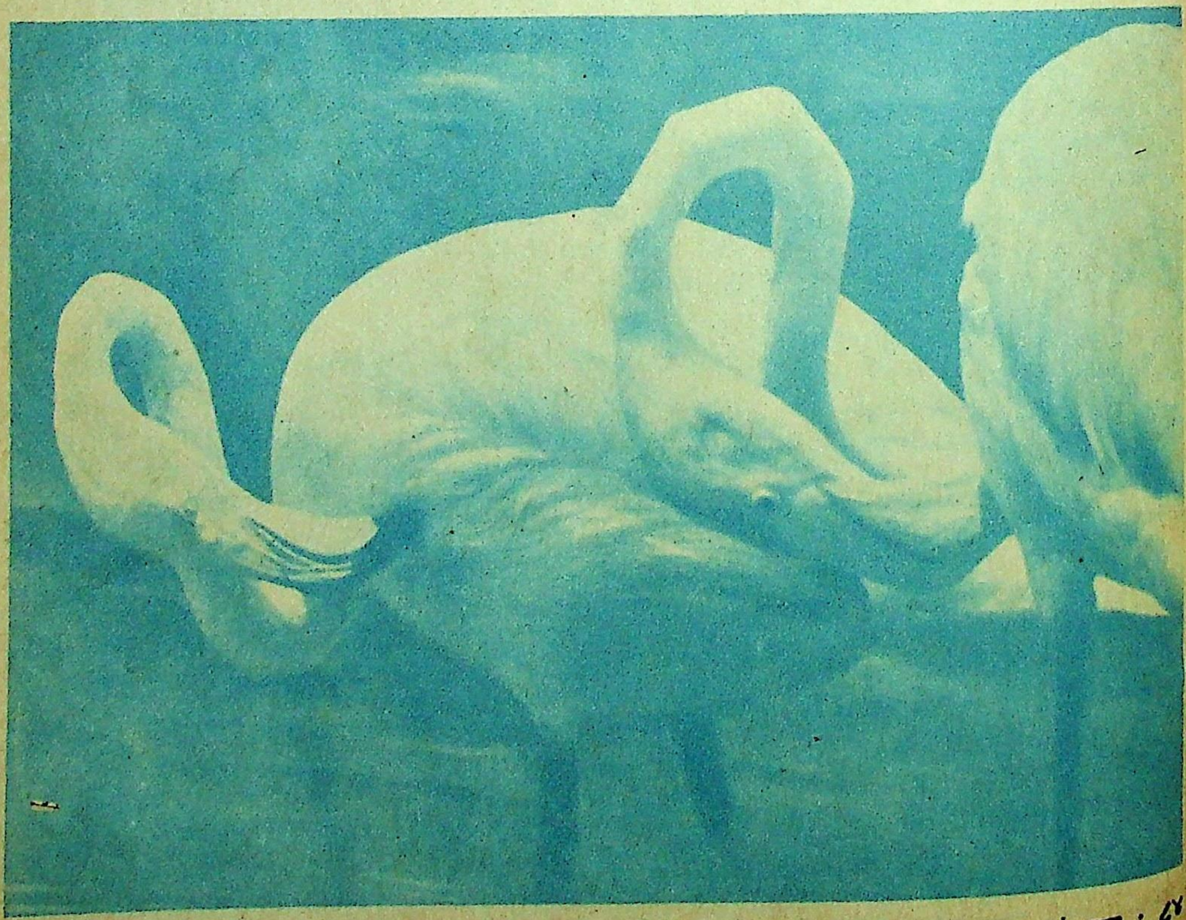
जाने आलम को लगा, जैसे उनका कोई हमदम उनके सरे राह आ रहा है. बेचैन हो कर तड़प उठे और एक दावतनामा वायसराय बहादुर के मारफत बादशाह तक भिजवा दिया. जाहिर था कि इस कदर सितमजदा आदमी वक्ते गर्दिश में घड़ी भर से ज्यादा ठहरना कब पसंद करेगा. इसलिए जफर ने दावत से तो इनकार कर दिया मगर मुलाकात को मंजूर कर लिया.

जब जहाज मटियाबुर्ज के करीब से गुजरा तो आखिरी शाहे मुगल ने दरिया हुगली में लंगर डलवा दिया और कुछ मिनटों के लिए सिबतैनाबाद में तश-रीफ लाये.

एक अजीब मंजर था मुलाकात का. आमने-सामने दो बिगड़े हुए नसीब खड़े थे. ताजदारे अवध ने शह-शाहे देहली को सलाम अर्ज किया. तो लुटी हुई बाद-शाहत ने मिटी हुई नवाबी को गले से लगा लिया, जैसे जमुना और गोमती का संगम हो रहा है और वह भी गंगा के किनारे.

वाजिद अली शाह ने नजर में याकूत की अंगूठी दी तो शाहे जफर ने जवाब में जमुर्रद की तसबीह उन्हें अता फरमायी.

वक्त ने इस इंद्रधनुषी मुलाकात के इस जज्बाती दौर को ज्यादा देर ठहरने न दिया और वह शाही शायर उस शाही गुलूकार की बांहों से जुदा हो गये.



नवाब सुल्तान मंजिल में पड़े करवटें बदल रहे थे. नींद ने उन पर अपना साया भी न फटकने दिया. तब सोचा, किसी किस्सागो को बुलायें तो किसी सूरत रात कटे.

खादिम ने लखनऊ के ही एक शीरीं सुखन गुंचा दहन नवाबजादे को ला कर पेश किया.

उस युसुफ चेहरा ने झुक कर सलाम बजाया.

बादशाह ने खुश हो कर बेतकल्लुफी से उसे अपने करीब बिस्तर पर लेट जाने को कहा.

—भई कोई किस्सा कहो प्यारे मियां, जो हकीकत में अफसाना हो.

पिया जाने आलम की तबियत का रुख देख कर, अगर लोबान से महकती झिलमिली, झाड़ों की मद्धम रोशनी में उस नौजवान ने कहानी छेड़ दी—

एक जमाने में सात समंदर पार का रहने वाला एक जालिम बादशाह परिंदों का बड़ा शौकीन था. खुदा जाने किसलिए एक से एक पंछी ला कर वह अपने रंग-महल के पिंजड़ों में बंद करता रहा.

एक दिन उसी शौक में मुब्तला हो कर अपने मुसाहिबों के साथ वो शख्स दूर, बड़ी दूर हवाखोरी को गया.

तो क्या देखता है, बड़ा खूबसूरत नजारा है, ऐन बहार का इशारा है. दरिया की रवानी है, मोती जैसा पानी है, फूल महकते हैं और परिंदे चहकते हैं.

उसी बीच तमाम चिड़ियों का एक दस्ता न जाने किस सिम्त से आन पहुंचा. उन अनगिनत चिड़ियों में एक परिंदा, अजीबो गरीब कि न देखा न सुना, यानी रंगत लाजवाब, खूबसूरत बेहिसाब, पहाड़ी के ऊपर आ के बैठा, तो सारे परिंदे उसे घेर के उसके गिर्द बैठ गये और उसका ओहदा बमुताबिक शाने हस्ती बुलंद बना रहा.

वो बादशाह मुर्गबाज उस परिंदे की वजाकता पर लहालोट हो गया, बोला—इसे लिये बिना न लौटूंगा.

मुसाहिब खास ने समझाया—मगर इसे पाना नामुमकिन है.

जवाब दिया—कोई सूरत निकालो, मैं छोड़ूंगा नहीं.

मुसाहिबों ने कहा—इस बार नहीं, अगली बहार में कोशिश करेंगे.

गरज ये कि सब लौट गये.

मुसाहिब लोग अगली बहार के पहले ही मंसूबे बनाने लगे और तमाम दौलत इंतजाम में लगाने लगे.

फस्ले बहार आयी तो शाही दस्ते ने भी कूच किया.

ठीक उसी मकाम पर आ के बेनजीर परिंदा बलंदी पर बैठा और उसके परिस्तार हजार परिंदे उसके हुजूर में हाजिर रहे.

मुसाहिबों ने मैदान में दूर-दूर तक अनाज के दाने, सूखे मेवे, ताजे फल और गोश्त के टुकड़े बिखरा दिये मगर उन चिड़ियों की तबियत में कोई बदल न आया. जिस सूरत आयी थीं अपने सरताज के साथ उसी तरह लौट गयीं.

बादशाह बेहद मायूस हुआ और उन सबों पै सख्त नाराज हुआ.

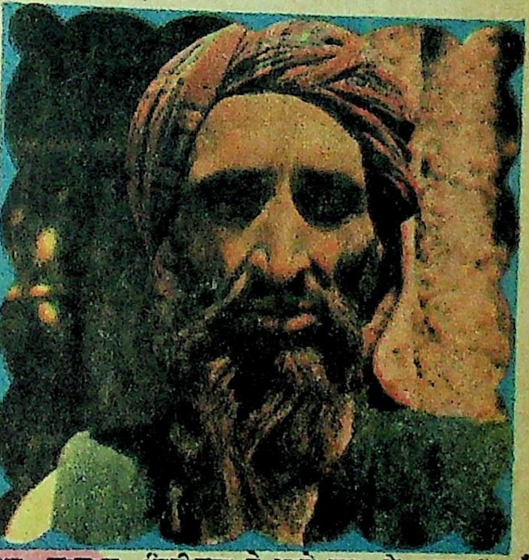
मुसाहिब ने सब्र बंधाया—हुजूर, इस बार न सही अगली बार देखेंगे.

वक्त गया, साल गुजरा, फिर वही बहार के दिन, फिर वही जमाना आया और फिर वो शाही शिकारी अपने चारागरों के साथ वहीं पहुंचा.

इस बार जब खूराक का सामान जमीन पर बिछा तो कुछ एक परिंदे गोश्तखोर पहाड़ी से उतर आये और अपनी गिजा पा कर मस्त हो गये मगर बाकी वहीं उस शाहानी मुर्ग के करीब जमे रहे, इसलिए कुछ बस न चला और वो परिंदा हाथ न लगा.

बादशाह जामे के बाहर हो गया मगर दीवानों ने फिर समझा लिया—देखते जाइए, बेसब्र न हों...

अगली बहार में फिर वही नक्शा हुआ. इस बार जब रसद का जाल बिछा तो क्या देखते हैं कि गोश्तखोर गोश्त पर टूट रहे हैं मेवाखोर मेवे के मजे लूट रहे हैं और अनाजखोर हैं कि दाना चुगने में लगे हैं.



एक चालाक चिड़ीमार ने आगे बढ़ के, पहाड़ी पै चढ़ के वो नायाब पंछी पकड़ लिया और बादशाह के हवाले कर दिया.

बड़े बेकरार हो के अख्तर पिया ने पूछा—मगर प्यारे जानी, ये क्यूं कर हुआ?

नवाबजादा बोला—ऐ हुजूर, पहली बार सारे परिंदे अपने मालिक की हिफाजत में तैनात थे, दूसरी बार उन्होंने सामाने कैफ का नक्शा देखा मगर सब्रदार रहे क्योंकि वफादार और नमकख्वार रहे, तीसरी बार चंद हरामखोरों ने मजा लूटने में, खाने-पीने में रिश्तए ईमान तोड़ा मगर हलालखोरों ने साथ न छोड़ा मगर आली हजरत, चौथी बार सबके सब बेवफाई कर गये क्या मादा, क्या नर, सब निस्बत से मुकर गये...

और वो गरीब मुर्ग नातवां कैद हो गया. इतना सुनना था कि वाजिद अली शाह नवाबजादे के गले से लिपट कर रोने लगे—हाय यही मेरे साथ हुआ.

□□□

पंचवटी, ८९, गौसनगर, लखनऊ ४.

राजगीर में :

पांचवां अखिल भारतीय समांतर लेखक सम्मेलन (२)

गत १, २, ३ दिसंबर, १९७५ को समांतर लेखकों का पांचवां अखिल भारतीय सम्मेलन राजगीर, बिहार में संपन्न हुआ. इस सम्मेलन में हिंदी के अलावा मराठी, गुजराती, सिंधी, उर्दू, पंजाबी, कच्छी, तथा तमिल के प्रतिनिधि लेखकों ने भाग लिया. पिछले अंक में आपने सम्मेलन के उद्घाटन-समारोह की रिपोर्ट पढ़ी. यहां प्रस्तुत है पहली गोष्ठी का विवरण.

राजगीर का जादू बहुत धीरे-धीरे असर करता है. पेड़ों और चट्टानों से ढंकी पहाड़ियों की तलहटी में बसे इस छोटे-से कस्बे में इधर-उधर सिर्फ दो-चार मामूली किस्म के सरकारी मकान दिखायी देते हैं. यहां-वहां छितरी छोटी झोपड़ियां और सूनी सड़कों पर दौड़ते गिनती के इक्के, जो पर्यटकों और तीर्थयात्रियों को लाने-ले जाने के काम आते हैं. छोटी-छोटी, अंधेरी दुकानें, जिनमें से ज्यादातर में मिठाई और 'खाजा' बिकता है, लंबे खाली विस्तार और ठंडी हवा में रह-रह कर गूंजती बौद्ध मंदिरों के भारी नगाड़े की आवाज जो किसी धड़कते हृदय के अनवरत स्पंदनों का-सा आभास देती है.

नालंदा की इसी पुरातन, सांस्कृतिक मिट्टी ने धीरे-धीरे सब लेखकों को अपने सहज आकर्षण में बांध लिया. शायद उस छोटी-सी जगह के लिए इतने सारे भारतीय लेखकों का जमाव एक महत्वपूर्ण घटना थी, परंतु हवा में कुछ ऐसा था कि हर लेखक उस माहौल को अपने से ज्यादा महत्व दिये जा रहा था.

दो दिसंबर की सुबह गेस्ट हाउस के सामने घास और धूप का लुत्फ उठाते हुए चार-पांच लेखक बैठे थे. यहां-वहां बिछी दो-तीन कुर्सियां, पोर्च में बतियाते लोगों का छोटा-सा समूह और कुल मिला कर वही सहज और अनौपचारिक माहौल जो समांतर गोष्ठियों की खास पहचान बन गया है. इधर-उधर बिखरे उन चेहरों को देख कर कतई यह अंदाज नहीं लगता था कि वहां कोई गंभीर बैठक होने जा रही है. लेकिन कुछ ही मिनटों में सब कुछ बदला-बदला-सा नजर आने लगा. नाश्ता खाने वालों ने खा-पी कर अपने चाय के प्यालों के साथ सिगरेटें सुलगा ली थीं, कुंड में नहाने वाले लौट आये थे और 'समांतर सहयोग' की पुस्तकों का वितरण भी कुछ वक्त के लिए रुक गया था. घास पर बैठे उन तमाम लेखकों के बीच एक बहुत गंभीर और मानीखेज खामोशी फैल गयी थी, क्योंकि वहां उस खुशनुमा धूप में सम्मेलन की पहली अनौपचारिक गोष्ठी शुरू होने जा रही थी.

गोष्ठी के आरंभ में कामतानाथ ने मद्रास और कालीकट में हुई चौथे समांतर सम्मेलन का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया. उन्होंने बताया कि हिंदी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड, मराठी, कच्छी, गुजराती, पंजाबी, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में समांतर सोच का जो स्वागत हुआ है, उसे एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना के रूप में लिया जाना चाहिए. पिछले समांतर सम्मेलन में इस सोच को सिर्फ हिंदी तक ही सीमित न रखने के प्रयास में जो कदम उठाये गये थे, उन्हीं की अगली कड़ी के रूप में मराठी दलित साहित्य से बाबूराव बागूल, दया पवार, अर्जुन डांगले, प्र. श्री. नेरूरकर, सतीश कालेसकर और प्रह्लाद चेंदवणकर, सिंधी से ए. जे. उत्तम, गुजराती से आबिद सुरती, पंजाबी से रामसरूप अणखी, कच्छी से डॉ. मनुभाई पांधी, तमिल से शौरिराजन और उर्दू से लाजपत राय जैसे प्रखर रचनाकार और चिंतक समांतर के पांचवें राजगीर सम्मेलन में भाग ले रहे थे. कामतानाथ ने अपनी रपट में यह भी बताया कि पिछले सम्मेलन में लेखकों का जो सहयोगी प्रकाशन शुरू करने की योजना बनी थी, उसका 'समांतर सहयोग' नाम से मद्रास में पंजीकृत किया जाना काफी अहमियत रखता है. और यह प्रयास भी समांतर की सर्व भाषी व्यापक पहुंच की ओर ही संकेत करता है. 'समांतर सहयोग' की पहली दो पुस्तकों का विमोचन इससे पहले पिछली शाम हो ही चुका था, और पुस्तकों की सुंदर सज्जा की सबने मुक्त कंठ से सराहना की थी.

तय यह किया गया था कि राजगीर सम्मेलन में बहस का आधार कुछ महत्वपूर्ण लेख बनेंगे जिन्हें इस सम्मेलन के लिए विशेष रूप से लिखा जायेगा. इस योजना के अंतर्गत सबसे पहले पढ़ा जाने वाला लेख था **'राजनीति और आम आदमी'**. इसके लेखक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी किन्हीं कारणों से राजगीर पहुंच नहीं पाये और उनकी अनुपस्थिति में यह लेख डॉ. विनय ने पढ़ा.

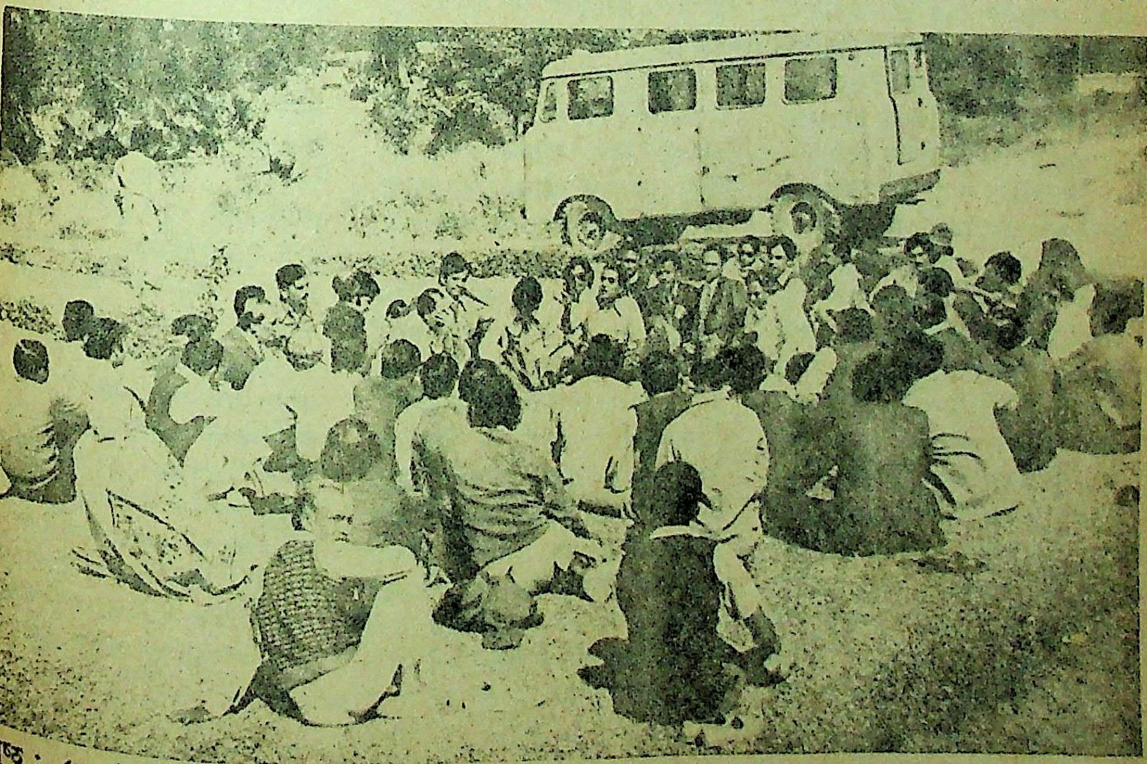
विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने लेख में दो-तीन महत्वपूर्ण सवाल उठाये. 'हमारे बीच ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो राजनीति को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं. इनके अनुसार सारी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बुराइयां राजनीतिक नेता फैलाते हैं और इन्हीं बुराइयों का सामूहिक नाम भ्रष्टाचार है. ऐसे लोगों की विशेषता यह है कि ये राजनीति पर बहस बहुत गरमागरम करते हैं, परंतु अपने

वैचारिक निष्कर्षों के अनुसार सक्रिय नहीं होते.'

राजनीति को आदमी के लिए अहितकर समझने वाले इन लोगों की ओर इशारा करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि ऐसे शक्की लोग रूढ़िवादी तो होते हैं, पर प्रगति-विरोधी नहीं होते. ये प्रायः उस मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्ग से आते हैं, जिसपर महंगाई, व्यवस्थाहीनता, अकाल आदि का सबसे अधिक असर पड़ता है. इस वर्ग की मानसिकता का विश्लेषण करते हुए इस लेख में उन्होंने यह भी कहा कि राजनीतिक प्रचार, साहित्य, मास मीडिया आदि का सबसे पहला और सीधा प्रभाव निम्न मध्यवर्ग पर ही पड़ता है. और वर्ग-संघर्ष की लड़ाई में इस वर्ग की पक्षधरता अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होती है. परंतु इस वर्ग की वर्तमान विडंबना यही है कि यह अपने आपको उस वर्ग से जोड़ कर नहीं देख पाता, जिसके साथ उसका भाग्य नत्थी है. इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि यह वर्ग संगठित नहीं होता. किसान या मजदूर के साथ संगठित होने और संघर्ष करने के लिए मूर्त मुद्दे होते हैं-- मजदूरी, बोनस, बेगार का खातमा, लगान आदि. लेकिन मध्य वर्ग के आदमी के पास लड़ने का कोई मूर्त सूत्र नहीं होता. उसका दुश्मन भी छिप कर वार करता है. मजदूर का दुश्मन मिल-मालिक है, खेतिहर का दुश्मन जमींदार या या बड़ा किसान है, लेकिन मध्य वर्ग के आदमी का शोषक सामने नहीं होता. वह यही समझ पाता है कि उसके पास पैसा नहीं है और इसीलिए उसे कदम-कदम पर विवशता और अपमान झेलना पड़ रहा है. और परिणाम स्वरूप वह अनिश्चित बना रहता है और उसके इस अनिश्चय का पूरा फायदा प्रतिक्रियावादी शक्तियां उठाती हैं. ये शक्तियां उसे उकसाती हैं कि किंकर्तव्यविमूढ़ता की इस स्थिति में वह दुश्मन के खातमे का नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार के खयालों का अमूर्त नारा लगाये. कभी-कभी इसी सोच से 'हत्या की राजनीति' का भी उदय होता है. ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी वर्ग का यह दायित्व हो जाता है कि वह इस मध्यवर्गीय अनिश्चय को तोड़े और इस वर्ग के आदमी को उसके संघर्ष की सही दिशा दिखाये. 'मध्यवर्ग का आदमी उच्च वर्ग की ओर भी देखता है और अपने से निम्न वर्ग की ओर भी. इस तबके के व्यक्ति सीढ़ी पर चढ़ कर ऊपर भी पहुंच जाते हैं और ढुलक कर सर्वहारा भी बन सकते हैं. लेकिन यह बात तय है कि इस तबके की सही दिशा सर्वहारा की ओर है. प्रगतिशील राजनीति की सफलता इस बात पर बहुत निर्भर है कि मध्यवर्ग सचेत हो कर सर्वहारा का कितना साथ देता है. जो लोग राजनीति पर बात करते समय केवल सर्वहारा पर ही ध्यान देते हैं, निम्न मध्यवर्ग या या मध्यवर्ग पर नहीं, वे संकीर्णता का शिकार होते हैं. यहां सर्वहारा की निर्णायक भूमिका से इनकार करने का सवाल नहीं है, सवाल सर्वहारा को मजबूत और शक्तिशाली बनाने का है. क्योंकि अनिवार्यतः सर्वहारा के दुश्मन मध्यवर्ग के भी दुश्मन होते हैं.'

डॉ. त्रिपाठी के लेख पर अपनी राय व्यक्त करते हुए डॉ. विनय ने कहा कि वस्तुतः आम

राजगीर में रेस्टहाउस के बाहर, लॉन में, पहली गोष्ठी के दौरान विचार-विमर्श में संलग्न समांतर लेखक



आदमी आज सर्वहारा से ले कर निम्न मध्यवर्ग तक व्याप्त है और उसके बीच विभाजन-रेखा नहीं खींची जानी चाहिए. लाजपत राय ने इस पर कहा कि वास्तविक विभाजन-रेखा विचारधारा, आइडियोलॉजी, और पक्षधरता से तैयार होती है और यदि सामान्य वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति इस पक्षधरता के बारे में स्पष्ट हो जाये तो उसके सामने दिशा-निर्धारण का संकट नहीं रह जाता. शेखर व्यथित ने सामान्य जन की दिशाहीनता के संदर्भ में कहा कि प्रतिक्रियावादी शक्तियां भी कभी-कभी भ्रामक नारे दे कर, सामान्य जन को लुभाती और गुमराह करती हैं और इनसे सावधान होने की जरूरत है. लेकिन सुरेश उनियाल का मत था कि कनफ्यूजन की इस स्थिति के बावजूद आम आदमी का दुश्मन उतना अमूर्त नहीं है जितना समझ लिया जाता है. हां, इतना जरूर है कि इस दुश्मन के साथ-साथ उस बिचौलिये को भी पहचानने की जरूरत है, जो आम आदमी और सर्वहारा के बीच से ही निकलता है, लेकिन किसी मोड़ पर जा कर गलत व्यवस्था का दलाल बन जाता है. इस पर मधुकर गंगाधर ने कहा कि कभी कभी सामान्य जन की इकाइयां भी किसी रूप में शोषक का हिस्सा बन कर शोषण करने में संलग्न हो जाती हैं. इस स्थिति की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए.

राजनीति को बुरा समझने वालों पर बात करते हुए लाजपत राय ने कहा कि राजनीति से बचने की राय देना स्वयं एक राजनीति है इस प्रकार की सच्चाई को उद्घाटित करने के लिए जरूरी है कि लेखक सीधे आप अपने पाठकों तक पहुंचे. कमलेश्वर ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि साधारणीकरण और तादात्म्य स्थापित करने की बात का अकसर यह मतलब लगाया जाता है कि पाठक वर्ग-चेतना के एक विशेष स्तर तक उठ कर साहित्य के पास आयेगा. इसमें यह अपेक्षा भी रहती है कि लेखक जिस मानसिक भूमि पर है, उस तक पाठक भी पहुंचे. परंतु संबद्ध रचनाकार के लिए यह जरूरी है कि वह स्वयं अपने पाठकों तक पहुंचे. ऐसी स्थिति में सामान्य जन का एक सहज और प्रामाणिक सौंदर्यशास्त्र बनाने की जरूरत है, जो रचनात्मकता को खंडित किये बगैर अपने आपको आम आदमी की जिंदगी से जोड़ सके.

इस पर मधुकर गंगाधर ने कहा कि दरअसल जिन सिद्धांतों को साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र के लिए इस्तेमाल किया जाता है, वे गलत हैं और उनमें आमूल परिवर्तन आना चाहिए. सतीश कालसेकर का कहना था कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया एक प्रकार के रिफ्लेक्स ऐक्शन से ही पूरी हो सकती है. लेखक को स्वतंत्र-द्रष्टा होने से बचते हुए एक तरफ परिवर्तन को दृष्टि देनी चाहिए, तो दूसरी तरफ परिवर्तन से दृष्टि ग्रहण भी करनी चाहिए. बाबूराव बागूल ने कहा कि दृष्टि के इस आदान-प्रदान के दौरान यह स्पष्ट रहना चाहिए कि लेखक स्वयं भी अंततः सामान्य जन ही है, जिसके हितों की रक्षा वह अपने साहित्य में करता है. साथ ही लेखक के लिए जरूरी हो जाता है कि वह दुख, वेदना या अपमान की एकांगी अभिव्यक्ति तक ही अपना दायित्व न समझे, बल्कि आम आदमी की सारी द्वंद्वात्मक स्थितियों को रचना में उतारे.

कमलेश्वर ने कहा कि लेखक के लिए मूल्यवादी दृष्टि न रख कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना जरूरी है क्योंकि विसंगतियां बगैर वैज्ञानिक विश्लेषण के बहुत एकांगी प्रतीति देती हैं. साथ ही यह भी अनिवार्य हो गया है कि हम आज के आदमी को 'बेचारा' न बना कर उसकी संपूर्ण अंतर्भूत संघर्षशक्ति को पहचानने की कोशिश करें. पहचान की इस प्रक्रिया में एक तरफ लेखक को सामान्य जन की यथास्थिति का रेखांकन करना चाहिए और दूसरी तरफ उन शक्तियों को भी बेनकाब करना चाहिए, जो आम आदमी को गुमराह करती हैं.

★ ★

इस विचारोत्तेजक बहस के बाद गोष्ठी का दूसरा लेख पढ़ा गया. लेख था **'नवलेखन और उसकी विरोधी शक्तियां'** और लेखक थे जितेंद्र भाटिया. अपने लेख में उन्होंने सबसे पहले नवलेखन को परिभाषित करने की कोशिश की. दरअसल चिरंतन वाम की परिकल्पना उसके लेखन की परिभाषा भी हमें देती है जो समय और इतिहास की स्वाभाविक प्रक्रिया स्वरूप जन्म लेता है और वर्तमान के आग्रहों को ध्यान में रखते हुए अपने माहौल को पहले से बेहतर समझने की कोशिश करता है. हमारे साहित्य में नवलेखन को अकसर आयातित वैचारिकता के आधार पर बहुत फैशनेबल ढंग से लिया जाता रहा है. परंतु समय-साक्षेप नवलेखन की जड़ें विदेशी प्रवृत्तियों में न पनप कर हमेशा उसकी अपनी मिट्टी में फैलती और मजबूत होती हैं.

समय-सापेक्ष नवलेखन की चर्चा करते हुए जितेंद्र भाटिया ने अपने लेख में कहा कि नवलेखन सामान्यतः दो रास्तों से सामने आता है. पहले के अंतर्गत के अनुभव वही रहते हैं, परंतु बदलती हुई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों के कारण उसे अपने उस अनुभव के अर्थ बदलते हुए दिखायी देने लगते हैं. ये परिवर्तित अर्थ एक सर्वथा नयी और क्रांतिकारी मानसिकता तैयार करते हैं, जिसे हम नवलेखन का महत्वपूर्ण पक्ष मानते हैं. नवलेखन का दूसरा रास्ता नये अनुभवों का है. नया लेखक अपने साथ नये अनुभव, नयी मानसिकता लाता है और इनके जरिये वह अपने समय के लिए पुराने मूल्यों की

तोड़ कर अधिक उपयोगी मूल्य बनाता है. इस नवलेखन में पुराने और नये, दोनों ही लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण होता है.

नवलेखन के विरुद्ध कार्य करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ओर संकेत करते हुए जितेंद्र भाटिया ने कहा कि इनमें एक बड़ा हिस्सा रूपवादियों और सौंदर्यवादियों का है. 'साहित्य के ये ब्राह्मण हमेशा साहित्य, कला और जीवन के उन 'शाश्वत' मूल्यों का हवाला देते चलते हैं, जिनका समाज और जीवन से कोई लेना-देना नहीं होता. इनके लिए साहित्य सिर्फ साहित्य होता है, कला सिर्फ कला और धर्म सिर्फ धर्म. साहित्यिक संदर्भों की समाजशास्त्रीय व्याख्या से ये कतराते हैं और इनका सौंदर्यशास्त्र भी शाश्वत 'कला' और 'रुचि-संपन्नता' का द्योतक होता है, जीवन के प्रत्यक्ष संदर्भों का नहीं. इस प्रकार की बेईमानी वह सारा कलावादी और रूपवादी तबका कर रहा है जो कमोबेश मध्य वर्ग के उस टुकड़े से आता है, जिसकी निगाहें ऊपर की ओर होती हैं और पैर हवा में!' जीवन और समाज के जरूरी सवालों को लगातार स्थगित करने की साजिश रचने वाला यह 'अतिबुद्धिजीवी' वर्ग साहित्य के आभिजात्य की दुहाई दे कर उसे सामान्य जन से काटने की कोशिश भी करता है.

वामपंथी पूरक शक्तियों के परस्पर बिखराव की स्थिति को ले कर इस लेख में कहा गया कि भारत में वामपंथ की जड़ें कमजोर होने का एक बड़ा कारण रहा है यहां के जनजीवन पर धर्म की जबर्दस्त पकड़. यह एक दुखद स्थिति है. साहित्य में व्यापक वामपंथी चेतना का उदय होने के बावजूद हमारे देश में मार्क्सवाद चंद सोचने-समझने वाले बुद्धिजीवियों के दिमागों तक बिल्कुल उसी तरह सीमित है, जिस तरह परिष्कृत रूपवादियों के दिमागों में अस्तित्ववाद या ऐसी ही कोई अन्य धारा. समांतर की चिरंतन वाम की परिकल्पना का हवाला देते हुए जितेंद्र भाटिया ने कहा कि यह परिकल्पना वास्तव में नवलेखन की बिखरी हुई शक्तियों को निकट लाने की कोशिश करती है, गत्वर चिंतन की ओर इशारा करती है. 'नवलेखन के विरुद्ध काम कर रही सभी शक्तियों को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि नया लेखक अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि को सही और विस्तृत रूप से समझें, उसके सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्रों की संतुलित शिनाख्त करे और अपनी रचना को अपनी संपूर्ण वैचारिकता का केंद्रबिंदु मान कर सृजन करे.'

जितेंद्र के लेख पर होने वाली बहस की शुरुआत करते हुए डॉ. विनय ने कहा कि समांतर लेखन अपनी सामाजिक-राजनीतिक लड़ाई के साथ-साथ साहित्य में प्रतिष्ठित प्रक्रिया से भी लड़ रहा है. कमलेश्वर ने कहा कि नवलेखन का एक महत्वपूर्ण काम नयी तरह की प्रतिबद्धता बनाना है. नये लेखक पर कई तरह के व्यावसायिक दबाव आते हैं, परंतु नवलेखन का अभीष्ट मात्र व्यावसायिक लेखन नहीं है, न ही उससे अपेक्षा की जाती है कि वह रूढ़ साहित्यिक खेमों में बंद हो जाय. आज के नवलेखन के सामने राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त जो सामूहिक मानवीय और सामाजिक समस्याएं हैं, वे इस बात की मांग करती हैं कि लेखक अपने दायरों को तोड़ कर सामने आये.

लाजपत राय ने कहा कि लेखक की राजनीतिक-सामाजिक सक्रियता में कहीं अगर कुछ नारेबाजी भी आ जाती है, तो वह कोई हेय चीज नहीं है. कमलेश्वर ने इस मुद्दे को स्पष्ट करते हुए कहा कि नारेबाजी निश्चय ही एक बेमतलब चीज नहीं है, पर एक सक्रिय लेखक को अपने लेखन में उस स्थिति से बचना होगा. जितेंद्र न इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि कभी-कभी रचना का मूल स्रोत ही राजनीति के दिये हुए सिद्धांतों की नारेबाजी हो जाती है और रचना में जीवनगत मूल्यों का ह्रास होने लगता है. राजनीति को स्वीकार करते हुए भी हमें इस नकली स्थिति से इनकार करना होगा. कमलेश्वर का कहना था कि रचना में नारेबाजी वहीं तक वाजिब है, जहां तक उसका इस्तेमाल वैचारिकता की रक्षा के लिए होता है. परंतु आरोपित सैद्धांतिकता के 'सांचों' से हमें बचना होगा, क्योंकि ये सांचे कहीं-न कहीं संप्रेषणीयता में रुकावट डालते हैं और समयगत सत्य की सही अभिव्यक्ति में भी बाधा बनते हैं.

कामतानाथ ने कहा कि कई बार ऐसी दिलचस्प स्थिति भी पैदा हो जाती है, जब एक ही रचना के बारे में उग्रपंथी यह कहते हैं कि वह नारेबाजी की हदों तक न पहुंचने के कारण अप्रभावकारी हैं, जबकि रूपवादियों का उसी रचना के बारे में कहना होता है कि उसमें नारेबाजी के कारण संप्रेषणीयता नष्ट हुई है. ऐसी दोगली स्थितियों से एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि आज हिंदी कहानी के संदर्भ में आलोचना रचनाओं का सही ऐतिहासिक मूल्यांकन करने का दायित्व नहीं निभा रही है.

राम अरोड़ा ने कहा कि अकसर नये लेखक के सामने प्रकाशन का भी संकट आ खड़ा होता है और ऐसी स्थिति में कई बार वह व्यावसायिक पत्रिकाओं के दबाव में अरचनात्मक चीजें भी लिखने लगता है. कमलेश्वर ने इसे विस्तार देते हुए कहा कि इस तरह के खतरे अकसर सृजनशीलता के रास्ते में आते हैं और नये लेखक को इनमें विशेषरूप से सावधान रहने की जरूरत है.

(क्रमशः)

सम्मेलन-रपट

टेपा-सेवेंटी फाइव

● डॉ. शिव शर्मा



भगवती शर्मा   दिनकर सोनवलकर   प्रभात भट्टाचार्य

मूर्खों की लाख सिर-फुटव्वल के बाद भी टेपाओं का यह पंचम सम्मेलन, खूसट बूढ़े की नवयौवना-पत्नी-सा खूब फलता-फूलता रहा. भांड़ों और मुसाहिबों ने जोकरों के चेहरे लगा कर हमें खूब ही डराया, किंतु टेपा अभी भी एक टांग पर खड़ा हो कर, अपने हास्य-व्यंग्य का झंडा उड़ा रहा है.

इस बार बंबई-गांव से दो टेपे अपने पैसे खर्च कर हवाई जहाज में बैठ कर आये. आबिद सुरती उर्फ ढब्बू जी अपने जीते-जागते कार्टूनों के बीच आये. उन्हें टोप भी ढब्बुओं का पहनाया गया. उनकी सूरत देख कर हमें विश्वास हो गया कि वह या उनके पूर्वज यहां से ही सूरत गये होंगे. उन्होंने कुर्सी पर खड़े हो कर पदवी ग्रहण की और अपने लिए खुद ही तालियां बजायीं.

विट्ठलभाई पटेल, जिनकी फिल्टर बीड़ियां पीते हुए युवा टेपे-टेपियां काले कव्वे का लॉकेट लटकाये एक-दूसरे को 'लव' करते हैं, उद्योगपतियों में फेमस पोएट हैं और हम लोगों में बीड़ी के प्रसिद्ध व्यापारी! जब तक जंगल में एक भी काला कव्वा कांव-कांव करता लक्ष्मी-प्यारे के संगीत पर गीत गाता पाया जायेगा, आपका नाम अमर रहेगा.

उत्तर प्रदेशीय मूर्ख (स्व.) दुष्यंतकुमार भोपाल से ट्रक में बैठ कर पधारे. आपके स्कूटर का पेट्रोल हमेशा की तरह मार्ग में खत्म हो गया और आप रंग में सराबोर हो कर यहां आ पहुंचे. हमें पूरा यकीन है कि आप हमारे हास्य-व्यंग्य के कार्यक्रम को अपनी कव्वालीनुमा उदास गजलें सुना कर चौपट कर देंगे. (काश, ऐसा फिर हो!) सुना है कि आप अभी बंबई में अपनी अंगूठी कमलेश्वर रूपी शकुंतला के घर छोड़ कर भाग आये हैं. उदास इसलिए हैं कि शकुंतला ने आपको पहचानने तक से इनकार कर दिया और आप भूखे-प्यासे लौट आये!

अपने ही टेपाओं में एक श्री श्याम व्यास, इंदौर की सड़कों पर 'भगौरिया' करते फिरते हैं और ताड़ी पी कर किसी भी बिजली के खंबे को आदिवासी की झोपड़ी समझ चढ़ बैठते हैं. यार-दोस्तों के सारे 'तालाबों' का पानी पी कर भी अभी तक चिर-प्यासे ही बने हुए हैं.

दिनकर सोनवलकर को गत वर्ष 'मुनकर टेपलूनकर' की उपाधि प्रदान की गयी थी. वह अपने मुनकरों के साथ उस घर से चले, जहां दुर्घटनावश उनकी भूतपूर्व प्रेयसी उर्फ वर्तमान धर्मपत्नी रहती हैं, और इस वर्ष ठीक १ अप्रैल को यहां पहुंचे. अतः अब वह अपनी सूम रुबाइयों से अवश्य ही हमें रुलायेंगे.

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे शरद जोशी ने टेपा-धर्म स्वीकार कर लिया है. वह अपने ही मिडल स्कूल के पास हैं. और अब बंबई में फिल्मी कहानियों की रफूगिरी की दूकान चला रहे हैं.

गत वर्ष हमारे तीन टेपाओं ने शौर्यपूर्ण कार्य कर हमें गौरवान्वित किया है. डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने काली मिट्टी की खड़िया से 'मिट्टी की बारात' लिख कर एक नहीं, तीन-तीन पुरस्कार हथिया लिये. श्री वाकणकर ने भीमबेटका में प्रवेश कर पद्मश्री ले ली और तीसरे एक मालवी सांड ने राजस्थान के ग्राम दिलावा, तहसील पिड़ावा के श्री दिलावर सिंह के बाड़े में नाम कमाया! इन तीनों प्राणियों ने अपनी अपनी कलम, बुद्धि तथा बल से मालव अंचल को यश प्रदान किया. अतः हम इन्हें सम्मानित करते हैं.

इनके अतिरिक्त लोकल टेपों में नगर निगम के मेयर श्री नजर अली जो कि शरीर से

डा. सुमन   डा. शिव शर्मा   दुष्यंतकुमार

योजित)



सूक्ष्म हैं, कार के स्थान पर अपनी बाबागाड़ी में बैठ कर कार्यक्रम में पधारे. नगरनिगम के चेयरमैन श्री प्रह्लादनारायण तिवारी को जब से कार मिली है, वह रातों में नींद से उठ कर कार-कार चिल्लाते रहते हैं. उनकी पत्नी ने बाबाकार खरीद ली है जो कि उनके हाथ में पकड़ा दी जाती है और वह सो पाते हैं.

युवा तुर्क नेता श्री राजेंद्र जैन जो कि अरब गोरिल्ला नेता यासर अराफात से मिल कर लौटे हैं, अपनी कमर में बाबा-पिस्तौल बांधे घूमते पाये गये हैं. उन्हें भी बहादुरी के लिए तमगा प्रदान किया जाता है. मालवी कवि भावसार बा, इस वृद्धावस्था में भी, माच में फरसिन मामी का हूबहू अभिनय करते हैं और अपने पुत्र से ही पूछते हैं—आयो कहां से घनश्याम. . .?साथ ही मुरलीधर सिंह, बंसी आजाद, भगवती शर्मा, प्रकाश बोहरा, नरेश भार्गव को भी लोकल उपाधियां तथा टेपाट्राफी प्रदान की गयीं.

इस बार कार्यक्रम के बीच-बीच में संगीतमय विज्ञापन भी प्रसारित किये गये! 'दिमाग की सूजन, मुंह की फूलन दूर करता है. . .मिट्टी की बारात दंत मंजन. निर्माता : सुमन सुगंधी भंडार!'

'मम्मियो! क्या आपका बच्चा रोता है . . .ढब्बू जी के कार्टून अपने सीने से चिपका कर रखिए!'

एक महिला ने यह विज्ञापन पढ़ा. . .. 'मेरा पति गुम हो गया है जो पता देगा उसे मुझे इनाम देना होगा!. . .तुम जहां भी रहो खुश रहना. केवल पता भेज देना, रुपये मिल जायेंगे, आने की कोशिश मत करना. हम सब यहां बहुत प्रसन्न हैं.' सम्मेलन के एक संयोजक श्री अमरनाथ, इस पर भीड़ में से उठ कर मंच पर आ गये और अपनी पत्नी को पुरस्कार दे गये.

. . .अंत में—हम सब यहां हंसने-हंसाने आये हैं. आप अपनी जेब तथा पत्नियों से हाथ हटा कर भी हंस सकते हैं, कोई खतरा नहीं! यह वर्ष टेपियों का अंतरराष्ट्रीय वर्ष है. हमें नौकरी के अतिरिक्त चौका-चूल्हा और बाल-बच्चे भी करना होगा. अतः अगला वर्ष हमारा हो! वैसे भी ७६ का वर्ष बच्चों की संख्या सीमित करने का है. अतः हम पूर्ण विश्राम करेंगे. . . इस शपथ के साथ दसियों हजार श्रोताओं ने मालवी-गीत पर नृत्य किया. . .'सज रही टेपों की बारात. . .' नाच उठे ढब्बू जी, विट्ठल भाई, शरद, दुष्यंत, सुमन जी, भट्टाचार्य जी और मालवा के प्रसिद्ध नर्तक प्रेम सेन और उनका दल. सोनू राव ने अपना अंग्रेजी आर्केस्ट्रा छेड़ा तो मालवी ढपले भी बज उठे और सबके साथ नाच उठे श्रोता. अंत में जिसने इतने वर्षों से शानदार टेपा-टोप बनाये, उस कलाकार रहीम गुट्टी को कैसे भूल जाऊं? और मेरे सहयोगी हरीश निगम, नारायणलाल शर्मा, नरेश भार्गव, प्रकाश उप्पल, मोहन सोनी, माना सिंह राही, जिनके अथक प्रयत्नों से ही यह सब हुल्लड़ सज जाता है!

□□

विट्ठल भाई श्याम व्यास अबिद सुरती शरद जोशी



'ध्रुवस्वामिनी का मंचन'

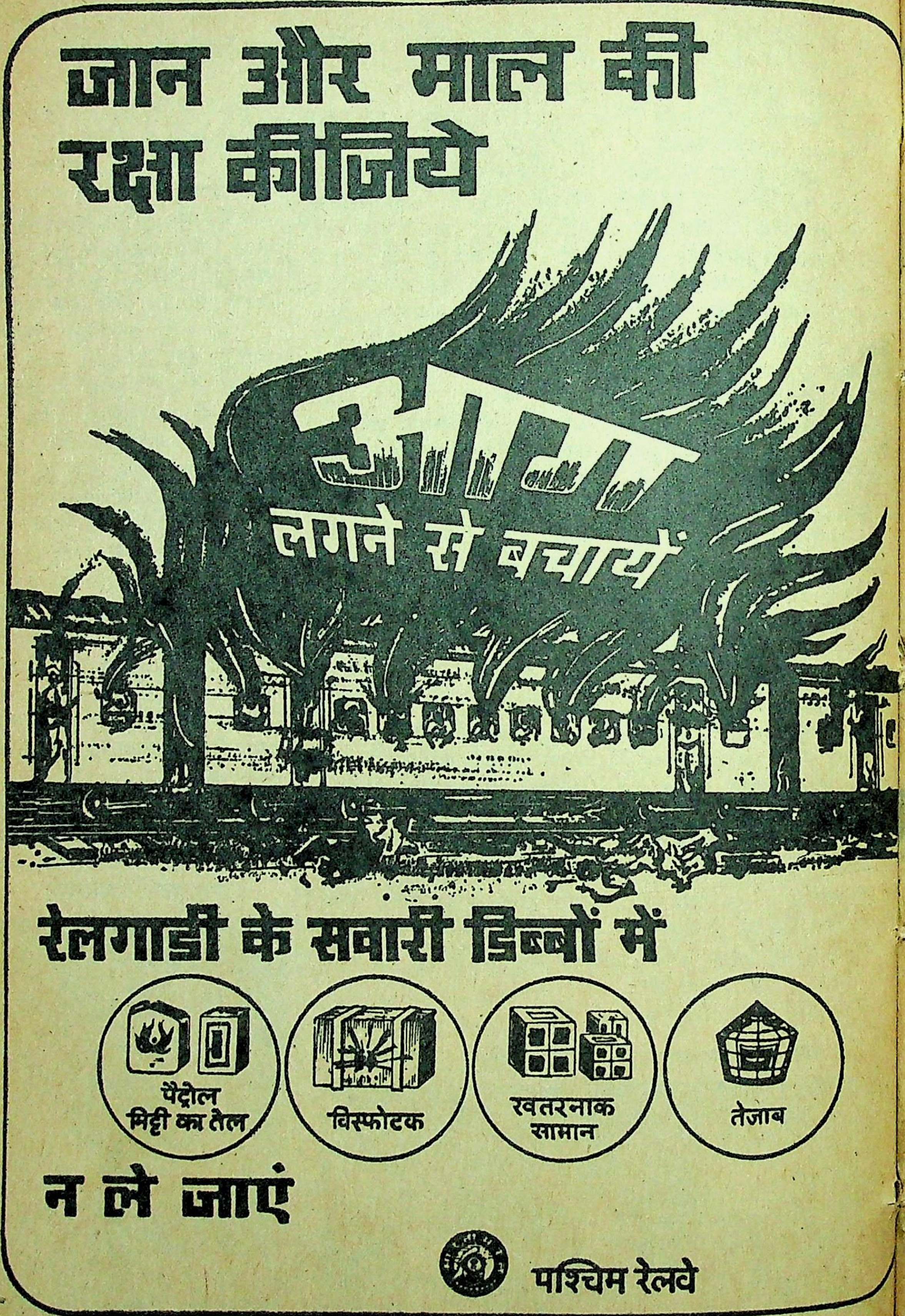
● चंद्रमोहन शर्मा

पति यदि पत्नी को कर्ज की अदायगी की किस्त के रूप में पेश करना चाहे, अफसर को खुश करने के लिए एक तोहफे के रूप में पेश करना चाहे अथवा अपने भरण-पोषण के लिए, धन कमाने के लिए ग्राहकों को पेश करना चाहे तो पत्नी क्या करे?

यह कोई काल्पनिक स्थिति नहीं है. इसी स्थिति को जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' की आधारशिला बनाया है. शकराज की संधि की प्रमुख शर्त है कि परम प्रतापी समुद्रगुप्त का राजदंड धारण करने वाला रामगुप्त अपनी पट्ट महिषी ध्रुवस्वामिनी को उसे सौंप दे. अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष के संदर्भ में लखनऊ की नाट्य संस्था 'संकेत' द्वारा इस नाटक का मंचन स्थानीय रवींद्रालय में २४ दिसंबर, १९७५ को किया गया. कथावस्तु की दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त इस नाटक का प्रशंसनीय निर्देशन के. वी. चंद्रा द्वारा किया गया. □□□

'ध्रुवस्वामिनी' के एक दृश्य में ध्रुवस्वामिनी (रोमा कृष्ण) और राम गुप्त (कैलाशचंद्र)




जान और माल की
रक्षा कीजिये
आग
लगने से बचायें
रेलगाडी के सवारी डिब्बों में
पैट्रोल
मिट्टी का तेल
विस्फोटक
खतरनाक
सामान
तेजाब
न ले जाएं
पश्चिम रेलवे


नेसा
वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...
नेसा में उपलब्ध है
टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियाँ और विविध वस्त्रों
का असीम आकाश
न्यू स्वदेशी
द न्यू स्वदेशी
मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लि.
नरोडा रोड,
अहमदाबाद-३८० ००२
Sobhagya NS/76-1G HN

"छोटा परिवार होने पर माता पिता हर बच्चे की अच्छी तरह देख-भाल कर सकते हैं। इससे देश के साधनों का भी अधिक अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

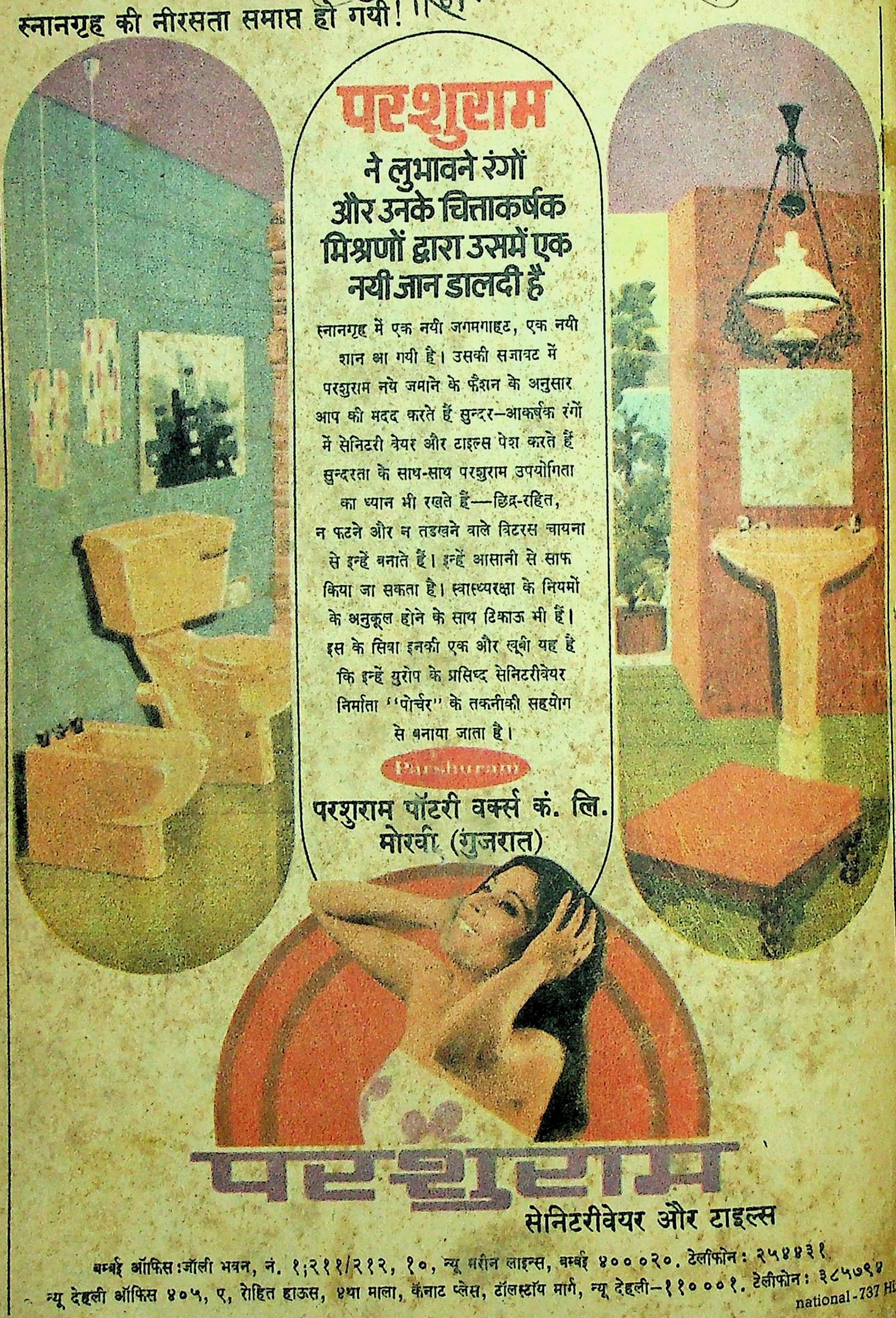
परिवार नियोजन राष्ट्रीय विकास की हमारी योजना का आवश्यक अंग है। हमने पूरी शक्ति से इस कार्यक्रम को सफल बनाने का निश्चय किया हुआ है।"



इन्दिरा गांधी

davp 75/596

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४००००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ ...


स्नानगृह की नीरसता समाप्त हो गयी!
परशुराम
ने लुभावने रंगों और उनके चित्ताकर्षक मिश्रणों द्वारा उसमें एक नयी जान डालदी है
स्नानगृह में एक नयी जगमगाहट, एक नयी शान आ गयी है। उसकी सजावट में परशुराम नये जमाने के फैशन के अनुसार आप की मदद करते हैं सुन्दर–आकर्षक रंगों में सेनिटरी वेयर और टाइल्स पेश करते हैं सुन्दरता के साथ-साथ परशुराम उपयोगिता का ध्यान भी रखते हैं—छिद्र-रहित, न फटने और न तड़खने वाले विटरस चायना से इन्हें बनाते हैं। इन्हें आसानी से साफ किया जा सकता है। स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के अनुकूल होने के साथ टिकाऊ भी हैं। इस के सिवा इनकी एक और खूबी यह है कि इन्हें युरोप के प्रसिध्द सेनिटरीवेयर निर्माता ''पोर्चर'' के तकनीकी सहयोग से बनाया जाता है।
Parshuram
परशुराम पॉटरी वर्क्स कं. लि.
मोरवी (गुजरात)
परशुराम
सेनिटरीवेयर और टाइल्स
बम्बई ऑफिस :जॉली भवन, नं. १;२११/२१२, १०, न्यू मरीन लाइन्स, बम्बई ४०००२०. टेलीफोन : २५४४३१
न्यू देहली ऑफिस ४०५, ए, रोहित हाउस, ४था माला, कॅनाट प्लेस, टॉलस्टॉय मार्ग, न्यू देहली–११०००१. टेलीफोन : ३८५७९४
national-737 Hin